विक्रमादित्य



रचयिता

गुरुभक्त सिंह 'भक्त',

'साहित्य-रत्न', बी० ए०, एल-एल० बी०,

सोल एजेंट्स—

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स,

चौक, बनारस।

प्रथम संस्करण १०००]   [मूल्य ५)

प्रकाशक—

गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

सिविल लाइन्स,

आज़मगढ़

मुद्रक—

पं० रामेश्वर पाठक,

तारा यन्त्रालय, काशी ।

स्वर्गीय पूज्य पिता

श्री कालिका प्रसाद जी

को

स्मृति में

—'भक्त'



श्री गुरुभक्त सिंह "भक्त"

परिचय

जिस 'शकारि' विक्रमादित्य ने मालवा तथा सौराष्ट्र से शकोंको निकाल, सप्तसिंधु पार कर, उनके उद्गम प्रवेश वाह्लीक तक उन विदेशी आततायियों का पीछा करके मूलोच्छेदन कर दिया, जिस दिग्विजयी ने भारत की सीमा को दक्षिण सागर से लेकर उत्तर में कामरूप वाह्लीक तक के प्रदेशों पर एकछत्र राज्य स्थापित कर सार्वभौम नरेश होने का डंका बजाया, जिस सिंह विक्रम ने शत्रुओं को परास्त कर निर्विघ्न लगभग ३२ वर्ष अटल राज्य किया, जिसकी भुजाओं पर तलवारसे यश लिखे गये, जिस विद्यानुरागी, ललितकला प्रेमी, गुण आश्रयदाता के वैभव संपन्न दरबार को कविकुल कमल दिवाकर महाकवि कालिदास तथा नीति निपुण कवि वीरसेन आदि 'नवरत्न' अलंकृत करते थे, जिस रसिक की प्रेरणा से कालिदास ने कुंतल नरेश ककुत्स्थ वर्मन् के यहाँ दौत्य कार्य किया तथा जिसका अम्रकार्दव ऐसा वीर और दानी सेनापति था, उसी परम भागवत भारत सम्राट विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय का यशोगान तथा उसके जीवन संबन्धी घटनाओं का वर्णन इस काव्य में निम्नलिखित क्रम से किया गया है :—

सम्राट रामगुप्त की पत्नी पट्ठ महादेवी ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त पर मोहित है। पहले, स्वयंवर में भा उसने चन्द्र. के ही गले में जय-माल डाली थी परन्तु सम्राट रामगुप्त ने उसके पिता पर अनुचित प्रभाव डाल ध्रुवदेवी को अपने साथ ब्याह देने पर बाध्य किया। चन्द्रगुप्त, रामगुप्त का अनुज तथा राष्ट्रीय सेना का बलाधिकृत है। सम्राज्ञी ने चन्द्रगुप्त को समझा कर अपनाने तथा उसका हृदय जीतने के लिये अनेक उपाय किए परंतु वह विफल रही। विनय और प्रलोभन के सारे उपकरण व्यर्थ हुए। चंद्रगुप्त ने प्रेम प्रदर्शन का उत्तर उदासीनता से दिया, वह अपने हठ पर अटल रहा, अपने धर्म पर अचल रहा। विवाहिता ध्रुवदेवी को वह अपना नहीं

सका। अपनी भ्रातृजाया को कामुक दृष्टि से देखने का साहस वह न कर सका। वेदना से विकल हो ध्रुवदेवी ने अपना मनोरथ स्पष्ट कह डाला और प्रेम की भीख मांगी। चंद्रगुप्त ने गर्व सहित उसका प्रेम प्रस्ताव ठुकरा दिया। उसकी दुःख भरी कहानी सुन कर उसने सहानुभूति नहीं दिखाई। शील संकोच को तिलाञ्जली दे उसने उसे सूखा उत्तर दे दिया। उसके तर्क वितर्क उसने हँसी में उड़ा दिये। अन्य उपायों से हार महारानी ने उसे धमकी दी। सम्राज्ञी की चुनौता की भी चिंता न कर चंद्र ने निर्भीकता से अपना मुँह फेर लिया। वह नदी के प्रवाह के साथ बहने पर राजी न हुआ, हठी तृण के समान, किनारा थामे घास से ही लिपटा रह गया।

महारानी को गहरी ठेस लगी। उसका दर्प चूर हो गया, हृदय टूट गया, स्वप्न भङ्ग हो गया, वह व्यथा से तिलमिला उठी, अपमान से जल उठी, तिरस्कार से क्षुब्ध हो गई। एक राजसेवक का, सर्वेसर्वा सम्राज्ञी के प्रति ऐसा व्यवहार! यह विचार रह रह कर उसका हृदय सालने लगा। क्रोध ने उसे कठोर बना दिया। कोमल भावों को पीछे ढकेल, वह प्रतिहिंसा के मार्ग पर दौड़ पड़ी। ध्रुवदेवी ने चंद्र को नीचा दिखाने की प्रतिज्ञा की।

षड़यन्त्र सफल हुआ। महाराज को विश्वास हो गया कि चंद्रगुप्त ने राज हड़पने के लिए विद्रोह की तैयारी की थी; ध्रुवदेवी की ओर भी उसने कुदृष्टि डाली थी। उपकारों के बदले ऐसी कृतघ्नता! भाई से ऐसा विश्वासघात! सम्राट के क्रोध की सीमा न रही। राजसभा में ऐसे अपराधी को दण्ड का प्रस्ताव रखा गया। सब ने एक स्वर से प्राणदण्ड ही उचित बताया। किंतु महारानी के संकेत पर रामगुप्त ने भाई को प्राणदण्ड न देकर देश-निकाला दे दिया। चंद्रगुप्त के पाँव के नीचे से धरती सरक गई, वह स्तब्ध रह गया और विवश हो उसे सब से नाता तोड़ देश छोड़ना पड़ा।

ध्रुवदेवी ने एक बार उसे फिर समझाया पर निठुर निर्मोही ने हठ न छोड़ा, वह किसी तरह नहीं माना।

घर से निकल चंद्रगुप्त देश-देश ठोकरें खाता फिरा, जङ्गल पहाड़ों में भटकता रहा, मरुस्थलों की धूल फाँकी, बन बीहड़ नदी नाले पार किये; काँटों से उसके पैर छलनी हो गए, भूख से पेट पीठ से सट गया। परदेश में उसने अनेकानेक कष्ट भोगे। वहाँ वही दीन कृषक उसके सहायक हुए जिन्हें वह उपेक्षा और घृणा से देखता रहा था। अकिंचनों का आतिथ्य ग्रहण कर उसने उनका दुःख समझा, उनकी सूखी रोटी का स्वाद जाना। उनकी उदारता का परिचय पा अपनी कठोरता पर लज्जित हुआ। उनके अकृत्रिम सरल व्यवहारों पर वह जी जान से बिक गया। प्रकृति सहचरी के नैसर्गिक आनन्द में वह राज के भोग विलास का सुख भूल गया। जीवन के इस नये अनुभव ने एक नीरस सैनिक को सहृदय मानव बना दिया।

चंद्रगुप्त को खो कर ध्रुवदेवी पछताई। उसने सोचा था नई विपत्ति उसको ठीक रास्ते पर ले आयेगी परन्तु उसका अनुमान मिथ्या निकला। चन्द्र नहीं लौटा। उसकी आशा निराशामें परिणत हो गई। हताश हो वह गुप्त वेदना से व्याकुल हो उठी। विवश हो अपने विश्वासपात्र कवि वीरसेन को उसने संदेशवाहक बना, चंद्रगुप्त का शोध लगा कर मना लाने के लिये भेजा।

वीरसेन ने चंद्र को ढूँढ़ निकाला और बातों बातों में ध्रुवदेवी की विरह-वेदना का समाचार भी सुना दिया। महारानी की विनय सुनाकर लौट चलने के लिए अनुरोध किया। अपनी कर्कशा धर्मपत्नी का रोना रोकर चंद्र के भव्य भाग्य से अपने दुर्भाग्य की तुलना करके वीरसेन ने उसे वहुत कुछ समझाया-बुझाया परंतु उसकी दाल न गली। उसकी युक्तियाँ चंद्र ने चुटकियों में उड़ा दीं। वीरसेन की एक न चली। वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो चुप हो रहा। उल्टा उस बेचारे को ही विवश साथ साथ नत्थी होकर जाना पड़ा।

सौराष्ट्र के महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसिंह ने मालवप्रदेश जीत कर शूरसेन राज्य पर चढ़ाई कर दी। शूरसेन, गुप्तसाम्राज्य का करद राज्य था अतः संधि के अनुसार शौरसेनाधीश्वर श्रीनाग ने,

गुप्त सम्राट से सहायता माँगी। सैनिक-सहायता यथा समय नहीं पहुँच सकी। इधर शौर-सेनापति भूधरनाथ ने, अपने राजा से विश्ववासघात कर, स्वार्थ वश, क्षत्रप से गुप्त संधि कर उसकी सेना को राजधानी मथुरा तक निर्विरोध बढ़ आने दिया। श्रीनाग ने वीरता पूर्वक शकों का पूरा प्रतिरोध कर ऐसा भीषण युद्ध किया कि उनके पाँव उखड़ चले, परंतु नीच भूधर ने स्वयं राजा पर पीछे से आघात कर उन्हें मार डाला और सेना को हथियार डाल देने पर विवश किया। क्षत्रप ने पुरस्कार स्वरूप उस प्रांत का शासन, भूधरनाथ को ही दे डाला। राज्य पाकर उसने राजकुमारी को भी अपनाने की सोची। परंतु कुमारी अपनी मर्यादा बचाने के लिए जान पर खेल कोट कारागार से नदी में कूद पड़ी।

विलासी रामगुप्त राजकाज से घबड़ा कर हिमगिरि के अंचल में अपने पहाड़ी कोट में विहार कर रहा है। विजयोन्मत्त क्षत्रप की लोलुपता यहाँ तक बढ़ी कि उसने मगध पर आक्रमण करने का विचार किया। इसी बीच उसे पता चला कि सम्राट निकट ही हिमगिरि की छावनी में स्वास्थ्यलाभ कर रहे हैं, विशेष सेना भी साथ नहीं है। अतः ऐसे शुअवसर को हाथ से न जाने दे। तुरंत ही पहाड़ी कोट पर धावा बोल दिया और वहाँ पहुँच कोट का घेरा डाल दिया।

क्षत्रपकुमारी वीणा भी अपने पिता के साथ गिरिवर की सघन वनमाला में सरिता के तीर सैन्य शिविर में उपस्थित है। आज उसकी वर्षगाँठ है। वह स्वर्गीया माता की सुधि करके कुछ उदास है। पिता ने उसे समझा बुझा बीती बातों को भुलाकर जी खोल उत्सव मनाने पर बाध्य किया। राजाज्ञा होते ही सारे जंगल में वितान तन गए, मंडप लग गए, एक मनोरम नगर सा बस गया। ध्वजा केतु बंदनवार फहराने लगे, तोरणादि पर मंगलवाद्य बजने लगे, आमोद-प्रमोद और नृत्य-नाट्य का संभार हुआ, सुरा सरिता में सभी डूबने उतराने लगे, गीत और वाद्य की ध्वनि से आकाश गूँज उठा, जंगल में मंगल होने लगा।

निर्वासित चंद्र भी कवि वीरसेन के साथ, घूमता-फिरता,

विपत्ति का मारा, इधर आ निकला। उस वन में अपूर्व उत्सव-समारोह देख कौतूहलवश दोनों शिविर के अंतःपुर के मंगल-मंडप में पहुँचे। परिचारिकाओं ने इन अपरिचितों को गुप्तचर समझ बंदी कर लिया और इन्हें कुमारी वीणा के सम्मुख उपस्थित किया। अभियोग लगाकर इन्हें सामरिक दंड सुनाया गया। दोनों ने अपनी सफ़ाई दी। कवि वीरसेन ने प्राण पर आ बनी देख अपना और कुमार का सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। वीणा ने दोनों को निर्दोष पाया अतः दोनों मुक्त कर दिये गए और वे वीणा के सम्मानित अतिथि बने। चंद्र के सौंदर्य पर वीणा मुग्ध हो गई। इस नये अतिथि ने उसके हृदय में घर कर लिया। उसने कुमार का बहुत सत्कार किया और इस उत्सव में योग देने तथा नाट्याभिनय में सम्मिलित होने के लिए उसे राजी कर लिया। उन्हें उत्सव तक के लिए रोक लिया।

ध्रुवदेवी चंद्रगुप्त के वियोग में व्याकुल है। दूत के न लौटने से तथा चंद्र का कोई समाचार न मिलने से चिंतित हो घबड़ा रही है। आमोद-प्रमोद उसे नहीं रुचता, संगीत उसे नहीं भाता, सितार के तारों को छेड़ते ही उसके तन में बिजली दौड़ जाती है, वीणा की झंकार सुन वह काँप उठती है, मृदंग के सम पर उसका हृदय बैठ जाता है, राग से उसे विराग हो गया है और पुरुषों से घृणा। डगमगाती नाव को दूत के आगमन की सूचना ने स्थिर कर दिया। चंद्र का समाचार जानने के लिए वह तड़फड़ा उठी, प्रिय के दर्शन को आतुर हो उठी। आशा पवन पाल में भर कर, नौका को वेग से निर्दिष्ट स्थान पर ले चलने के लिए, जोर मारने लगा। दूत की प्रगल्भता उसे असह्य हो उठी उसकी लंबी प्रस्तावना से वह खीझ गई। कुछ खरी खोटी सुनकर वीरसेन ने शनैः शनैः चंद्र का समाचार सुनाया, कुशलक्षेम बता कर उनके शकबाला के मोह जाल में फँसने का संवाद भी दिया। उसे आश्चर्य हुआ कि पत्थर पर दूब कैसे जमी। उसे विश्वास नहीं हुआ। वीरसेन ने दृढ़ता पूर्वक आँखों देखी प्रेमलीला का वर्णन किया। महारानी के कलेजे पर साँप लोट गया, उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया, चंद्र के उस भोलेपन को कोसने लगी

जिसने उसे शैल श्रृंग से गर्त में गिरा दिया। शकों की धृष्टता से जल उठी जिन्होंने देश पर आक्रमण करते करते उसके हृदय देश पर भी धावा बोल दिया। शकों के प्रति उसका वैरभाव जाग्रत हो उठा, उसने उनसे बदला लेने की ठानी और उन्हें देश से निकाल बाहर करने का प्रण किया। इतने में यह समाचार भी मिला कि सम्राट को क्षत्रप ने हिमगिरि के अंचल में स्थित कार्तिकेय नगर में घेर लिया है। इस समाचार से वह कातर हो उठी। उस पर मानो वज्र हो टूट पड़ा। विषाद का अवसर न देख उसने अपने को सँभाला और क्षत्रप को पीस देने की प्रतिज्ञा कर भारी सेना लेकर सम्राट की सहायता को चल पड़ी।

सेना लिए हुए ध्रुवदेवी यथा समय सम्राट की सहायता को पहुँच गई। घेरा डाले हुए सेनाओं को पराजित कर राजा को बंधन मुक्त कर दिया। वहाँ ध्रुवदेवी को पता चला कि क्षत्रप ने संधि का एक संदेश भेजा था जिसमें उसने रामगुप्त को जीवन दान के उपलक्ष में ध्रुवदेवी को समर्पित करने का संकेत किया था। तथा सम्राट ने उसकी यह बात मानकर अपनी स्वीकृति भेजी है। ध्रुवदेवी यह सुन रोष से जल उठी, लज्जा से गड़ गई। उसने रामगुप्त को उसकी कायरतापर बहुत फटकारा और स्वीकृतिपत्र क्षत्रपतक पहुँचने से पहिले ही मँगवाकर स्वयं पत्रवाहक बनने को उद्यत हुई। साथ ही रामगुप्त से क्षत्रप पर आक्रमण करने का भी अनुरोध किया। रामगुप्त ने अस्वस्थ होने का बहाना करके सेना संचालन करने से क्षमा मांगी। ध्रुवदेवी खीज कर स्वयं ही क्षत्रप का सर कुचलने को तत्पर हो सेना लेकर चल पड़ी।

उत्सव के प्रसंग में कुमारी वीणा ने एक नाटक खेलने का विचार किया अतः चंद्रगुप्त के साथ अभिनयाभ्यास करने लगी। पूर्वाभिनय हो ही रहा था कि ध्रुवदेवी दूत का वेष बनाये वीरसेन के साथ वहां पहुँची। कुछ देर उन दोनों का प्रेमालाप सुनती रही फिर अवसर देख उसने रामगुप्त का वही स्वीकृति-पत्र चंद्रगुप्त को दे दिया। चंद्रगुप्त पत्र पढ़कर अवाक रह गया। काटो तो बदन में खून नहीं। उसने पत्र को कई बार पढ़ा भाई के हस्ताक्षर आँख गड़ागड़ा देखे और पहिचाने। उसको फिर भी

विश्वास नहीं होता था कि यह मेरे भाई का पत्र है और वह इतना गिर सकता है। उसने पत्रवाहक को ठहरने की आज्ञा दी और स्वयं क्षत्रप से इस अपमान का बदला लेने की युक्ति सोचने लगा। सोचते सोचते उसने मन में यह नया नाटक खेलने का विचार ठाना :—राजा पद्मनाभ नायक है। वह दूसरे राजा पर विजय पा उसकी रानी पर मोहित हो जाता है। अंत में उसी रानी द्वारा वह मारा जाता है। 'मैं रानी का अभिनय करूँगा और क्षत्रप को पद्मनाभ बनना पड़ेगा।' अतः वीणा को उसने यह नवीन नाटक खेले जाने के लिए तथा अभिनेताओं को अपने आदेशानुसार पात्रों का स्वाँग भरने के लिए राजी कर लिया। अभ्यास होने लगा, पूर्वाभिनय सफल हुआ।

नाटक रंगमंच पर खेला गया जिसमें रानी के वेष में चंद्र ने पद्मनाभ (शकपति) को मार डाला। जब उसके हृदय से रुधिर की धारा निकली तब दूत रूपी ध्रुवदेवी ने शंख फूँका, शंखध्वनि सुनते ही गुप्तसेना, जो निकट ही जंगल में छिपी थी, शकों पर टूट पड़ी। विरोधी मारे गये शेष बंदी हो गए। ध्रुवदेवी जब अपने प्रकृत रूप में प्रकट हुई तो चंद्रगुप्त चकित रह गया। चंद्र ने उसके साहस की सराहना कर बड़ी कृतज्ञता व्यक्त की और भूलों की क्षमा मांगी। ध्रुवदेवी ने उससे घर लौट चलने और ह्रासोन्मुख साम्राज्य का पुनरुत्थान कर विदेशियों को देश-सीमा से बाहर निकालने का व्रत ले लेने का आग्रह किया। चंद्र बड़े असमंजस में पड़ गया। उसने विचारने के लिए रात भरका समय माँगा। चंद्र रातभर सोचता रहा। वह अपना मार्ग निर्धारित न कर सका। कभी उसका मन ध्रुवदेवी की ओर झुकता, कभी वह यहाँ से भाग जाना ही अपने लिए उचित समझता। इसी उधेड़ बुन में वह पड़ा हुआ था कि उसको संवाद मिला कि सम्राट स्वयं उससे मिलने वहाँ आ रहे हैं। इस परिस्थिति में वह भाई से भेंट करने का साहस न कर सका और ध्रुवदेवी को, उसके भाग्य पर, सोता हुआ छोड़, चुपके से खिसक गया। वह फिर देश विदेश की धूल फाँकने लगा।

ध्रुवदेवी जागी तो देखा कि उसका भाग्य सो गया, चंद्र का

पता नहीं है, उसका ध्रुवतारा डूब गया। उसने देखा कि रामगुप्त की सवारी इधर ही आ रही है। अतः वह अधिक विलंब न कर, राज्य की मोह ममता त्याग, बन में पैठ अंधकार में विलीन हो गई।

ध्रुवदेवी का व्याकुल हृदय उसको न जाने कहाँ कहाँ लिए फिरा। वह विक्षिप्त की भाँति घाट घाट भटकती रही। देश देश मारी फिरी। चारों धाम किये, सातों पुरी देखीं, कितने तीर्थ नहाये, कितने देवालयों में सर पटका पर उसको अपने देवता के दर्शन न मिले। तपस्वियों की भी सेवा की, पर उसका मनोरथ सिद्ध न हुआ, ऋषियों के उपदेश सुने पर उसके मनको शांति न मिली। संसार से विरक्त हो, अंततोगत्वा, वह एक निर्जन आश्रम में योगिनी बन भगवद्भजन करने लगी।

चंद्रगुप्त घूमता फिरता एक सरिता के तट पर पहुँचा तो देखा कि एक स्त्री बही जा रही है। तैर कर वह उस ललना को बचा लाया उपचार करने पर जब उसने संज्ञा लाभ की तो चंद्र ने उसका नाम पता पूछा और उस दुर्घटना का कारण जानने की उत्सुकता प्रकट की, परंतु रमणी ने न अपना रहस्य बताया और न उस घटना का कारण। वह अपना नाम वनदेवी बता अपने को अनाथा कह वन में विचरने के लिए विदा माँगने लगी क्योंकि संसार में न अब उसका कोई घर द्वार था और न कोई अपना। इतना संकेत दे वह चंद्रगुप्त से उसका परिचय पूछने लगी। चंद्रगुप्त ने भी अपने को अनाथ सैनिक बता दिया किंतु अपने जीवन की पोथी के पन्ने उलट कर उसे नहीं दिखाये। फिर भी अनाथ शब्द के संक्षिप्त परिचय ने उन दोनों के मन में समानता के भाव उत्पन्न कर दिए और दो विपद्ग्रस्त मानवों को निकटतम ला खड़ा कर दिया। दोनों के लिए संसार में कोई स्थान नहीं था जिसे वे अपना कह सकें; उन्हें कहाँ जाना है इसका भी पता न था। पहुँचने का प्रश्न ही क्या, जब न पथ था और न उसकी इति। पीछे अगाध सागर था, आगे उतंग गिरिशृंग, ऊपर अनंत आकाश। संकट में सहानुभूति आ गई, दीनता ने सद्भाव

उत्पन्न किया, अतः दोनों साहस संबल ले साथ साथ एक ही पथ से चल पड़े।

सौराष्ट्र देखा, दक्षिणपथ घूमा, अनेक वन-प्रांत देखे, नैसर्गिक छटा का आनंद लिया, प्राकृतिक रमणीयता का रसास्वादन किया देश का कोना कोना देख डाला, अंत में एक दिन वे दोनों एक निर्जन बन में पहुँचे और एक रमणीक स्थान देखकर वहीं रात में विश्राम करने लगे। अकस्मात् एक कापालिक ने आकर उनके विश्राम में बाधा डाली। वह उन्हें चंडी पर बलि चढ़ाने के लिए ले जाने को उतारू हुआ। चंद्र की वीरता और हथियार एक काम न आये। कापालिक तंत्र मन्त्र द्वारा उनको अपने पीछे ले चला और अपने आश्रम पर ले जाकर दोनों को अलग अलग दो कोष्ठों में बंद कर दिया। एक योगिनी को रात भर के लिए उनकी देख भाल का भार सौंप दिया। कापालिक के चले जाने पर योगिनी ने दोनों को भली भाँति देखा, उनमें से एक को उसने परिचित पाया। अतः वह वेष बदल कर रात ही में उससे मिलने चली। वस्त्राभूषण से सुसज्जित सोलहों शृंगार युक्त मोहनी रूप बन वह अपनी कोठरी से निकल कारागार की ओर चली, दैवात मार्ग में कापालिक मिल गया। यह रूप माधुरी देखकर कापालिक तो हो गया कामान्ध विवेक शून्य! योगिनी ने उसे समझाया, परंतु वह बढ़ता ही गया और बल पूर्वक ज्यों ही उसका सर्वनाश करने को उद्यत हुआ त्योंही योगिनी की कटार ने उसका हृदय चीर दिया। वह तड़पकर सदा के लिए सो गया।

रमणी चंद्र के कारागार में पहुँची। उसने देखा बाँह पर शीश रक्खे, चटाई के ऊपर, बंदी निश्चिंत सा निद्रा के स्रोत में आनंद की हिलोरें ले रहा है। नींद ही में भारत-विजय की बात उसके मुँह से निकल पड़ी। योगिनी के सम्बोधन पर वह जागा, दोनों में मनोरम संवाद हुए, दोनों परस्पर तर्क वितर्क करते रहे। रमणी ने चंद्र को बहुत ऊँचा नीचा दिखा कर समझाया कि अवसर तो जाता रहा फिर भी यदि वह उसका साथ दे और करवाल हाथ में लेकर देश को बचाने और साम्राज्य को बढ़ाने पर तैयार हो जाय तो वह उसे मुक्त कर सब कुछ संभव करके दिखा सकती है।

कोई राह न पाकर चंद्र रमणी की बात मानने को तैयार हो गया और रमणी को ध्रुवदेवी पा चकित रह गया। देवी ने उसे मुक्त कर दिया और कर्मपथ पर अग्रसर होने को वाध्य किया।

दबी आग भड़क उठा, दोनों एक रंग में रँग गये, दोनों ने देश का उद्धार करने का व्रत ले लिया।

फिर ध्रुवदेवी ने जाकर वंदिनी को मुक्त किया। उसके पति का परिचय पूछने पर उसको संदेह हुआ कि कहीं उसका पति वही तो नहीं है जिससे वह स्वयं प्रेम करती आई है। इसी आघात से वह अचेत हो गई। विशेष रहस्य उद्घटित न हो सका। अपने साथी को सकुशल स्वतंत्र पा तथा योगिनी और साथी को आपस में पूर्ण परिचित देख चंद्र की सहचरी विदा ले लुप्त हो गई।

सम्राट रामगुप्त की दशा शोचनीय है। विलास से उसको अपच हो गया है और राज्य से अरुचि! संसार के कटु अनुभव ने उसके हृदय में मानव जाति के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी और उसकी भयंकर भूलों ने उसको उदास और जगसे उदासीन बना दिया। उसे अपने किये पर पश्चात्ताप है, जीवन से निराश हो वह भाई से क्षमा मांगने के लिए उत्सुक है। राज्य चंद्रगुप्त को देने का निश्चय कर उसने भाई को बुला लाने के लिए दूत भेजा और उसी की प्रतीक्षा में जीवन की शेष घड़ियाँ गिनने लगा।

दूतने पहुँचकर चंद्रगुप्त को महाराज का संदेश दिया और उनकी रुग्णता का हाल सुनाया। समाचार पाते ही चंद्र तथा ध्रुवदेवी सम्राट के अंतिम दर्शन के लिए व्याकुल हो वन से राज-धानी की ओर चल पड़े।

महाराज प्रतीक्षा में विकल हैं। नाड़ी की गति क्षीण हो चली है। केवल औषधि के बल ही से शरीर-यंत्र चल रहा है। दीप बुझने के पहिले चंद्र आ पहुँचा। दोनों का प्रेम उमड़ पड़ा। दोनों गले मिल मिल खूब रोये। पश्चात्ताप प्रकट कर रामगुप्त ने राजमुकुट चंद्र को पहना दिया और सभा के सम्मुख राज्य भाई को अर्पण कर स्वयं शांतिपूर्वक चिरनिद्रा में वह सो गया।

साम्राज्य भर में राज्याभिषेक उत्सव मनाया गया। चंद्र सा वीर और अनुभवी सम्राट पाकर सारी प्रजा फूली न समायी। ध्रुवदेवी की मनोकामना पूर्ण हुई। चंद्र राजकाज सुचारु रूप से चलाने लगा।

चंद्र ने समुचित शासन सुधार किये। सेना का पुनः संघटन किया। समाज और जनता के हितार्थ विशेष नियम बनाये। राज्यमार्ग खुले। नहरें बनीं। शांति और देश की सुव्यवस्था से व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला। विदेशों से क्रय विक्रय होने लगा। जलयान बाहर से सोना भर भर लाने लगे। जल दस्युओं का आतंक मिटाने के लिए चंद्र ने जलयानों का विशाल बेड़ा बनवाया, इसी नौ सेना द्वारा उसने सागर मथ डाला, अरियों का दमन किया, जलमार्ग निष्कंटककर द्वीप-प्रद्वीप विजय कर वहाँ अपने गरुड़ध्वज स्थापित कर दिये। इन उपनिवेशों में भी हिंदू धर्म और आर्य संस्कृति की सत्ता स्थापित हो गई।

शकों का उत्पात् बढ़ता देख, उनको देश के बाहर निकाल देने के लिए, चंद्रगुप्त भारी सेना लेकर उन पर टूट पड़ा। महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसिंह से उज्जयिनी में घोर संग्राम हुआ। अंत में रुद्रसिंह मारा गया, चंद्र की विजय हुई, उज्जयिनी में शकारि विक्रमादित्य चंद्रगुप्त ने अपना झंडा गाड़ दिया। फिर सौराष्ट्र विजय कर वहां से भी शकों को निकाल, उनका पीछा करता, सप्तसिंधु तथा अन्य प्रदेशों को मार्ग में जीतता चंद्रगुप्त शकों के केन्द्रस्थान बाह्लीक तक जा पहुँचा। शकों को समूल नष्ट कर गुप्तराज्य की सीमा बलख (वालीक) तक बढ़ा, वंक्षुनदी के तट से होता हुआ, काश्मीर पहुँचा। सेना सहित कुछ दिन वहीं विहार कर वहाँ से चल दिग्विजय का स्मारक चिन्ह लौहस्तंभ भगवान् विष्णु के चरणों में स्थापित कर, मालवा उदयगिरि होता हुआ उज्जयिनी नगरी में लौट आया। वहां विजयोत्सव मना कर उसने महाकालेश्वर के चरणों में अपनी उपराजधानी बनायी।

परम भागवत, शकारि, विक्रमादित्य चंद्रगुप्त ने पावनपुरी अयोध्या को अपनी मुख्य राजधानी बनाया और वहीं से वह धर्मपूर्वक राजकाज करने लगा।

दिग्विजय के उपरांत जो महोत्सव हुआ उसमें कवि कालिदास ने सम्राट और सम्राज्ञी की जीवन घटनाओं के आधार पर काव्य रचकर पुस्तकें भेंट की। समुचित पुरस्कार पा कविकुल चूड़ामणि की उपाधि से विभूषित हो, राज्य के नवरत्नों में वे मुख्य रत्न गिने गये।

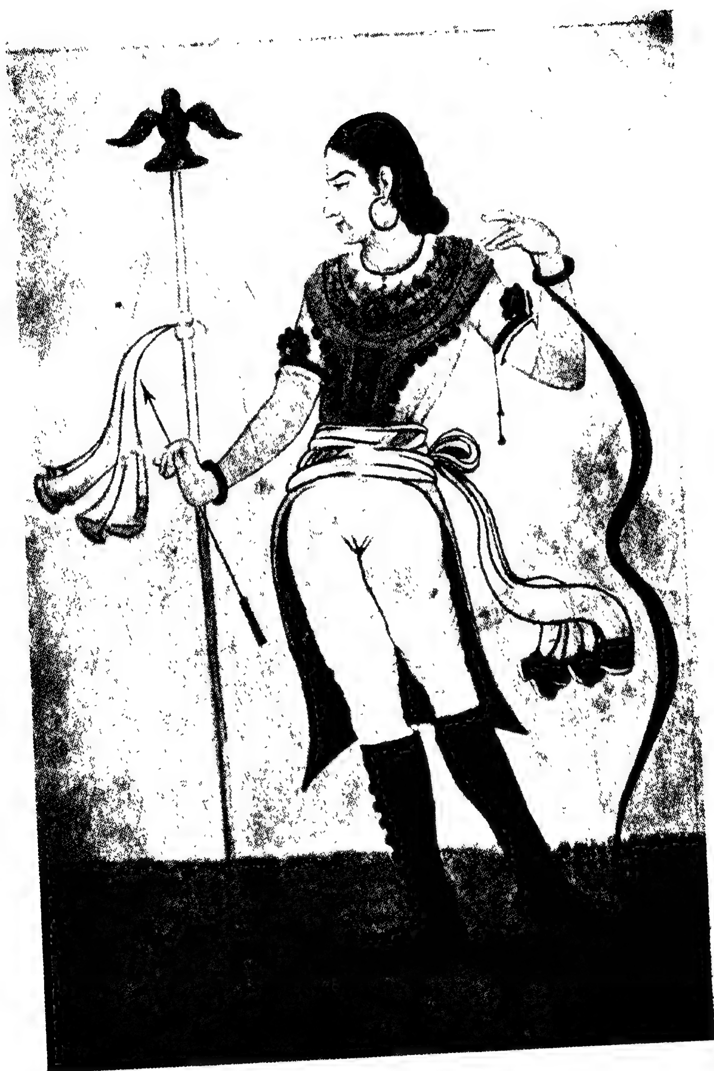
इस महोत्सव के पर्व पर चंद्र की सहचरी वनदेवी भी बधाई देने आई। उसने कापालिक संबंधी एक चित्र बना कर महाराज को भेंट किया। चित्रपट पर अपने जीवन का एक रहस्यमय अंश सफलतापूर्वक अंकित देख चंद्र गद्गद् हो उठा। ललना ने ध्रुवदेवी को भी अपनी एक ही बची निधि—कटार भेंट की। सम्राज्ञी, कटार पर चन्द्रकुमार का नाम अंकित देख चकित रह गई और कटार को भलीभाँति पहचान कर उस ललना का सारा रहस्य जान लिया। ध्रुवदेवी ने भी उपहार में अपनी सबसे प्यारी निधि सम्राट चंद्रगुप्त को उसे अर्पित कर अपने कक्ष में राजसिंहासन पर उसको भी बिठा लिया और चंद्र को कटार दिखा कर बताया कि यही तुम्हारी पत्नी कुबेरनागा शूरसेन की राजकुमारी है जिसका तुमने इसी कटार के द्वारा वरण किया था। युद्ध से अवकाश न न पा तुम स्वयं विवाह में नहीं जा सके और उसी समय शकों ने, उस राज्य पर आक्रमण कर, उस कुल का नाश कर दिया। यही कटार उस पावन संबंध की प्रतीक है। भगवान् का धन्यवाद है जिसने फिर यह जोड़ी मिला दी। कुबेरनागा ने अपना खोया पति पाया, चंद्र ने अपनी भूली हुई पत्नी।

दोनों के हृदय में उछाह का सागर तरंगें लेने लगा। परम पुलकित हो सब अपनी दशा भूल गए। साध्वी वीणा भी इस अवसर पर अपने हृदय देवता से मिलने आई। उसकी प्यासी आंखें प्रिय के दर्शन कर कुछ तृप्त हुई, परन्तु वह मन में बड़ी बड़ी आकांक्षायें लेकर आई थी। उसे विश्वास था कि अब अवसर आ गया है कि चंद्र उसकी मनोकामना पूर्ण करे। अब वह निर्वासित अनाथ सैनिक नहीं है, आज वह सम्राट है और उसकी एक मधुर मुसकान उसका मनोरथ सिद्ध कर सकती है। ये ही आशाएँ लेकर वह आई थी परंतु यहाँ की लीला देख उसे

निराश होना पड़ा। चंद्र विवाहित निकला। एक छोड़ उसके दो दो रानियाँ हैं। इन दो बेड़ियों में जकड़े हुए चंद्र पर अब अधिकार जमाने का उद्योग करना वीणा को व्यर्थ जँचा। उसने अपने लिए केवल सम्राट का दर्शन ही अलम समझा। अतः वह किसी बहाने उनके चरणों में रहने की युक्ति सोचने लगी। वीरसेन वीणा का प्रेमपात्र और स्नेह-भाजन था इधर दोनों का मन पाकर सम्राट ने दोनों का पाणिग्रहण करवा दिया। दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे।

विश्वविजयी सम्राट चंद्रगुप्त की सारे संसार में तूती बोलने लगी। उसकी छत्र छाया में देश समृद्धशाली एवम् धनधान्यपूर्ण हो गया। अधर्म मिट गया धर्म की जय हुई। सम्राट और प्रजा अपना कर्तव्य भली भाँति पालन करने लगे।

शिशिर के पतझाड़ के बाद बसंत आया। अपत नंगे वृक्ष जो भू पर केवल रेखाचित्र से दिखाई देते थे सुरंग में डूब गये, सूनी लताएँ हरी भरी हो लहलहाने लगीं, कलियाँ खिल उठीं, मधुप मँडराने लगे, रसाल-पल्लव में छिप कर मदन ने पंच बाण छोड़े। यौवन कुसुम रक्त वर्ण हो गया। चंद्र और उसकी प्रेयसी विमुग्ध हो आनंद विभोर हो गए।



चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

१

ध्रुवदेवी—देव ! दृश्य वह भूल गये, जब हुआ स्वयंवर मेरा था,
जब मेरे कौमार्य - विहग का छुटता रैन - बसेरा था;
प्रथम बार जब थी स्वतंत्र मैं रचने को अपना बंधन,
मन एकाकीपन से ऊबा, मचल, डालता था उलझन;
सौर - समूह नरेशों का था जगमग ज्योति पसार रहा,
युवराजों का दल, मन में था, विरच नवल संसार रहा;
देश-देश के रत्नों से देदीप्यमान थी सभा विराट
समाचार सुन स्वयं पधारे तव भ्राता भारत - सम्राट;
सार्वभौम वे महाराज, वैभव में अपने, थे फूले,
अपनी तड़क - भड़क के बल पर विजय - भावना में भूले;
पर मेरा मन माना तुमसे, पा निजत्व का आकर्षण—
जिसने मचा दिया मानस में मेरे अद्भुत संघर्षण;
मानस - सिंहासन पर निज सम्राट बिठा मैंने तत्काल,
श्रद्धायुत निज हृदयेश्वर को दी पहना मधूक की माल।

अनुचित कहकर सबने बरजा, पिता बहुत ही सकुचाये,
भूपों ने भी भवें सिकोड़ीं, डिगा नहीं मुझको पाये;
बोले बिगड़ तुम्हारे भाई, छोड़ धर्म - मर्यादा - ध्यान,
'कभी न हो पावेगा ऐसा, महाराज का यह अपमान!
दबा पिता नैपाल - नृपति को, थे उनके ही जो सामंत,
बरबस मुझे ब्याह लाये वे कर मेरे स्वप्नों का अंत।
देख दुर्दशा द्रुपद - सुता सी तब तुम पांडव बने रहे,
धर्म निभाना, तुम्हें चबाने क्या लोहे के चने रहे?
अपना धर्म भूलकर तुम अब मुझे धर्म सिखलाते हो,
सिर पर पड़ी, निबाह रही हूँ, पर तुम, नहीं लजाते हो;
सम्राज्ञी बन गयी भाग्यवश, नहीं प्रेम का तत्त्व मिला,
हाँ, इस हिलते गुप्तराज्य की रक्षा का, दायित्व मिला;
ऐसी विकट परिस्थिति में हूँ, कर लो पालन निज कर्तव्य,
मदनमूर्ति रचकर तुम सीखो, तीर चलाना, बन एकलव्य।
दुखसरिता को आश्रय दो अपने चरणों में सुखसागर,
एक बार मिल रास रचा दो, राधा के हे नटनागर!
नाविक! मुक्त बंधनों से कर, जीवन में तरणी दो छोड़,
पारावार पार करने को आओ मारुत से लें होड़;
चलो बहें धारा - प्रवाह में लहरों पर उठते - गिरते,
डाँड़ न छूटे, नेह न टूटे, भरे न जी फिरते - फिरते;
रस में संसृति डूब रही है, जीवन छलक रहा सब ओर,
हम दोनों भी इस नौका की तोड़ फेंक दें बंधन - डोर;
उल्लंघन कर निज मर्यादा, नदी, कूल की सीमा त्याग,
वन - प्रदेश के घन विटपों से मिल मिल खेल रही है फाग;
प्रकृति मात्र का पाठ यही है बनो स्वतंत्र बेड़ियाँ काट,
फिर विहार हम तुम न करें क्यों निज पिंजड़े का खोल कपाट?
खेलूँगी आवर्त्त - चाक पर मन - कुम्हार की पुतली बन,
पर निर्जीव नहीं सोऊँगी किसी घाट का रख बंधन;
चाट चाट मधु ऊब गयी हूँ अब माधवी करूँगी पान,
कोया काट, लगा पर अब मैं, पाट - कीट सम दूँगी प्राण;

केवल गति ही में जीवन है, यही लवण है, रस का सार,
उठे मूर्च्छनायुत सुंदर गत, रहो छेड़ते सोते तार;
भूख मर गयी है मीठे से, सुधा, नहीं, विष कर लूँ पान,
मन की इसी बहक पर हँसकर जग की झिझक करूँ बलिदान।
आओ गुप्त! आज हम दोनों जीवन का लूटें आनंद,
करें संधि, प्रतिबंध तोड़कर, मोद मनाएँ बन स्वच्छंद;
क्यों विरक्त हो जब से तुमने किया हृदय में मेरे घर,
तब से अब तक नहीं मिला इन आँखों से मेरा उत्तर;
सकुचातीं दृग मधुकर छूतीं अब पंकज पलकें झुककर,
सांध्य-अंक में छिपे सूर्य की आभा फैलातीं भू पर;
पहले मुझसे बोला करते हँसते हुए बिना संकोच,
अब क्यों इन भौंहों के ऊपर लहर मारता कोई सोच;
निधड़क निकट बैठ जाते तब करते परस कभी थे अंग,
अब कर धर कर बैठाने में क्यों उड़ जाता मुख का रंग;
पहले थी मुसकान मदभरी, हँसी बनी अब सेमल फूल,
संग बंधु के भी उपवन में नहीं कभी आते हो भूल;
क्या सम्भव है सुंदरता पर मन न रसिक मोहित हो जाय,
क्या सम्भव है खिले सुमन पर मधुप न झूम झूम मंडराय;
क्या सम्भव है लहरें उठकर तट को आलिंगन न करें,
लग जाने पर उठे पीर जब तब क्यों ये आँखें न भरें?
पुरुष-हृदय गंभीर बड़ा है, सहज न मिलती उसकी थाह,
कैसे लोग छिपा लेते हैं मन में चुटकी लेती चाह!
खुल कर आज कहे देती हूँ, अब तक तुम्हें परखती थी,
कभी कढ़ाते गीत स्वयं तुम, वही समय मैं लखती थी;
यदि मन्मथ, प्रिय मानस-तंत्री, देता छेड़, मार नाराच,
सारंगी के तार, विवश, झंकृत हो, स्वर में उठते नाच;
पर आश्रित है तार, ताँत का, उसके योग बिना वह मूक,
हा! नीरस की खुली न रसना, कठिन हृदय में उठी न हूक;
छेड़ा करती हू इससे ही हृत्तंत्री बज जाये तो,
भ्रम भय से उड़ गया कबूतर छतरी पर फिर आये तो;

घायल से कोई भी मानव समवेदना दिखाये तो,
भावहीन पशु से मानसधर अपने को बिलगाये तो;
सैनिक नहीं सीखते क्या हैं मयन - पताका के संकेत ?
शून्य-गर्त पर जीवन-पथ के सम्मेलन का रचना सेत ?
बिना युद्ध के ही मर जाना, हृदय जीतना, हार हृदय,
बलि हो जाना इंगित ही पर बंधु बांधवों का तज भय;
नियम, विधान, समाज भावना, लौकिक रीति, धर्म व्यवहार,
प्रेमी इन्हें बदल सकता है देश, काल, सुविधा, अनुसार।
क्या परिपाटी लीक पीटना ? अपना मार्ग बनाओ तुम,
कूद पड़ो सैनिक-से रण में, झूठी झिझक हटाओ तुम;
भाग्य विधाता बनो स्वयं तुम, रोड़े हटा, धैर्य के साथ,
इसी नाव को तुम भी खेओ, बहती गंगा में धो हाथ।

चंद्रगुप्त—पानी पर मत चित्र बनाओ, रचो अनिल में नहीं भवन,
भ्रमो नहीं भावना - भँवर में अपने वश में रक्खो मन;
है स्वतंत्रता की भी सीमा, नदी कूल के बाहर हो,
नागिन बन विनाश फैलाती पूर्व मान मर्यादा खो;
जल, परिमित हो, विविध कटोरों के बंधन में आता जब,
जलतरङ्ग - मीठी - स्वर - लहरी, छेड़छाड़ उपजाता तब;
यों ही तुम भी लो सुपंथ को उच्छृङ्खल विचार छोड़ो,
सीमा ही में रहो, उबल कर कुल का कूल नहीं तोड़ो;
मृगतृष्णा में तृप्ति न मिलती, नहीं विषय में सच्चा स्वाद,
नीच वासना भ्रष्टमार्ग पर ले जाती, उपजा उन्माद;
सम्राज्ञी जब बना लिया अग्रज ने तुमको अपना कर,
बड़ी क्षुद्रता है फिर मन को दौड़ाना इसपर उसपर;
यदि सुन्दरता परख प्रेम की, है भाई का दिव्य शरीर,
इक संसार खड़ा रहता है जिनके दर्शन हेतु अधीर;
मंडलेश वे महाराज हैं, मैं सैनिक हूं, उनका दास,
ऐसे राजा की रानी बन फिर क्यों कोई रहे उदास;
रूँधो मर्यादा फुलवारी लगा लगा काँटों की बाढ़,
हेठ जेठ को करो नहीं तुम, उसके पहले लगा असाढ़;

चंचल मन को नहीं बहक कर अनुचित पथ पर चलने दो,
मोहित हो प्रत्येक मूर्ति पर हठ कर नहीं मचलने दो;
उचित धर्म पथ पर चलना है, धारण करो समाज विधान,
धैर्य सहित मनको समझालो, इसमें ही होगा कल्याण।

भुवदेवी—धर्म अधर्म, उचित अनुचित, यह सब माया है, धोखा है,
जिसका स्वार्थ सिद्ध हो जिससे वही मार्ग बस चोखा है;
शासक को स्वतंत्रता सब है शासित नियमों में जकड़े,
जो अक्षम्य नारि जग को है पुरुष वही करके अकड़े;
नर जो करें धर्म सब कहते, नारीगण के लिये विधान,
उनका सब कुछ पाप क्षम्य है, रमणी हो पातकी महान!
है सौन्दर्य, रूप, सम्पति पर अवलम्बित यह प्रेम नहीं,
हृदय प्रेमरस का प्यासा है और मानता नेम नहीं;
जिससे मन की लगी लगन है वही एक उसका आराध्य,
फिर उसको अपनाने में वह नहीं किन्हीं नियमों से बाध्य;
कैसे किस पर मन चल जाता यह रहस्य कुछ है दैविक,
आँखों के काँटों पर तुल कर, हृदय, तुरत जाता है बिक;
इस ताले की कुंजी अब तक खोज खोज सब हार गये,
इस रहस्य को समझ न पाये कितने खो संसार गये;
प्रणय काम करता है अपना दोनों ओर, नहीं इक ओर,
इसकी सरिता बढ़ती है जब, देती डुबा तटों के छोर;
दो, विरक्त आसक्त शक्तियों में, झंझा, संघर्ष मचा,
सरस हृदय में जलद पटल के, रास रचाकर, तडित नचा—
रसमय सभी सृष्टि कर देता पत्थर को भी पानी कर,
कर अंकुरित सुप्त साधों को, जीवन से देता है भर;
उसी अतनु ने, रंगभूमि रच, नयन लड़ा, उपजायी पीर,
क्या विद्युत की आँच नहीं कर पायी तुमको तनिक अधीर?
यदि अबतक अनभिज्ञ रहे हो नहीं हृदय में उठी कसक,
यदि कुमार-होंठों ने प्रिय के छुआ नहीं है अधर-चषक;
महक, बहक, यदि छिपा रहा हो छक कर पीने वाला मद,
परख रहा हो मुझको, बद कर, चोर स्वयं, बन अंगद-पद,

तब मैं क्या समझा सकती हूँ, समझोगे तुम अवसर चूक,
लायेगी, अवश्य लायेगी, रंग, वेदना मेरी मूक।
पर विश्वास नहीं होता है लगी न हो कुछ भी यह आँच,
सम्भव है तुम कठिन हृदय बन, करते हो मेरी यों जाँच;
यदि ऐसा है तो मैं तुमसे तुरत मान लेती हूं हार,
तज संकोच कहे देती हूँ मैं तुमको करती हूँ प्यार;
लाज छोड़ मन की कह दी है तुम भी आगे आओ तो,
मैंने हाथ बढ़ा रक्खा है तुम भी हाथ बढ़ाओ तो;
कसना अधिक कसौटी पर हो, अथवा अधिक सताना हो,
अथवा मुझे प्रेम करने को नहीं हठी मन माना हो,
तब भी मानवता के नाते मिलते जुलते रहो सदा,
भूले भटके दर्शन मुझको, दिया करो तुम यदा कदा;
यदि तुमको कुछ लगन और है इधर नहीं झुकने की टेक,
तो मैं मार्ग नहीं रोकूँगी, ग्यारह बनें, मिलें दो एक;
तुल्यांतर दोनों रेखाएँ, बिलग रहें, पर साथ चलें,
दोनो मिलकर एक न हों, पर युगल मिलाये हाथ चलें।
मेरी नहीं वासना कोई, सुख, ऐश्वर्य, राज्य, सम्मान,
सारे ही विलास के साधन जिनका हो सकता अनुमान—
बाँधे हाथ खडे रहते हैं, राज्यसूत्र है मेरे हाथ,
सब कुछ है पर मन मोहन ने दिया नहीं हा मेरा साथ!
देश बड़े संकट में है अरियों का कैसे करूँ दमन,
किसका ले सहयोग करूँ भीतर बाहर विद्रोह शमन;
तुम्हें छोड़ कर और किसी में नहीं देखती साहस बल,
महाराज को नहीं निकलने देती है विलास - दलदल;
तुमपर इससे पड़ी आँख है, यदि देते मुझको सहयोग,
भारत के फिर दिन फिर जाते मिलता मुझे स्वर्ण-संयोग;
सोच समझ लो कर्त्तव्यों को पारस ठुकराना है भूल;
यों अपने उज्ज्वल भविष्य पर नहीं डालता कोई धूल;
किया तिरस्कृत यदि ठुकरा कर यह संयोग प्रणय उपहार,
अबला भी क्या कर सकती है फिर देखेगा सब संसार।

२

ध्रुवदेवी— अँगड़ाई लेती शतदल पर, अरुणा, नत शोभा के भार—
छक छक रस, मन में उमंग भर, निकल पड़ी करने अभिसार;
दबे पाँव चलने पर भी नूपुर कलिका - दल उठे चिटक,
दृग - तूली जिस ओर फेरती सप्तराग छवि गयी छिटक;
उसके पावन पद प्रहार से विहँस विटप होते मुकुलित,
रश्मि चित्रलेखा ने कर दी चित्रों से भूपट मुद्रित;
दोनों हाथों से चारों दिशि सोना बरसाती झरझर,
सुमन - अधर - मकरंद पान से मलयानिल गति है मंथर;
झलक देख हो मुग्ध, केलि कर, ऊषा-प्रियतम श्यामकुमार,
स्नेह-हीन-दीपक घर करता, हिम-हीरक प्रेयसि पर मार—
छिप था गया चुरा मन उसका, अंतरिक्ष में, घन के बीच,
कलिका - दीपक - शिखा बढ़ाता, नक्षत्रों की आँखें मीच,
मुँह खोला सुमनों ने ज्योंही कहने को रहस्य सुंदर,
बना दिया अवाक मुँह छूकर, भँवरों ने भाँवरियाँ भर;

बाल हंस ने नील-नीड़ से, जग कर तोले अपने पर,
हंसी प्रकृति, स्वागत में खगकुल नाच उठा मंगल गाकर;
अंतरिक्ष पट से दिग्वधुओं ने विनोद से लख उस ओर,
इंगित ही से बता दिया, था छिपा जहाँ अरुणा चितचोर।
पुलकित हो ऊषा मुसकायी किरण कमन्द तुरत ली धर,
ऊपर जा, रवि वातायन से, झाँक उधर, प्रियतम लखकर—
कूद पड़ी अनंत के उर में, लिपट गयी निज प्रियतम पा,
निज अस्तित्व मिला उसमें ही वह असीम में गयी समा;
उसने तो प्रणयी निज पाया, मैंने पाकर भी खोया,
निद्रा में थी अङ्क लगाये, जगी, भाग्य मेरा सोया;
प्रिय के सरस गूढ़ चुम्बन से भरे, तप्त हैं अधर मधुर,
मचल रहा उसास ले लेकर गाढ़ालिंगन से मम उर;
सचमुच ही क्या वे आये थे? बाँहों में है मीठी पीर,
धुँधली सी सुध है सपने की, मन मत बहक, तनिक धर धीर;
कैसी थी विभोर निद्रा में, सोयी थी मैं सुध बुध खो,
आये, उर में कसक छोड़कर लुप्त हो गये, अब क्या हो!
आये थे, विश्वास करूँ क्या? आते वे सकुचाते हैं,
बरबस कभी खींच लाती तब अंतःपुर में आते हैं;
राजकुमारों का इतना भोलापन भला नहीं लगता,
चुटकी से सोया जगता है जाग्रत-सुप्त नहीं जगता;
भ्रम उनका निर्मूल, भूल में भटक रहा है उनका मन,
नहीं इंगितों से वे समझे, विफल हुए सारे साधन;
अब मैं एक बार फिर मिलकर बातें करूँ हृदय को खोल,
सीले डफ पर कड़ी थाप ही उपजाती है मीठे बोल;
चित्त व्यग्र है चलूँ नदी तट, सेवन करने सरस समीर,
उर की ज्वाला शीतल कर लूँ डुबा लहर में उठती पीर;
पुलिन बाँह में भरी रसभरी तटिनी मोद मनाती है,
उठ उठ चुम्बन ले ले तट छू, विहँस सरक फिर जाती है;
रसवंती! तू सदा सुहागिन, मेरे हिय की ज्वाला हर,
कल्लोलिनी! केलि में भोरी, मेरी छाती शीतल कर;

नौका तट पर तड़प तड़प कर तोड़ रही है बंधन डोर,
होने को स्वतंत्र सरिता सी भरती जीवन संग हिलोर;
मिला अवनि से वह अम्बर है, अंतरिक्ष भी बाँह पसार—
बड़े प्रेम से गले लगाकर करता सतत रसा को प्यार;
तटनी ने निज अंबुधि पाया, सब ने पाया प्रेमाधार,
पता नहीं इस परिप्लावित को कभी मिल सकेगा वह पार;
नौका पर छाया सी क्या है ? बैठा है उसपर वह कौन !
अपलक दृग से देख रहा है जो लहरों का नर्तन मौन;
परछाईं उसकी लम्बी हो छू आती उस तट का छोर,
पर प्रिय की छाया छू पाता हाय न मेरा हृदय-हिलोर।
हिली मूर्ति, इस ओर फिरा मुख, अरे ! वही हैं चन्द्रकुमार,
अभी आठ आँसू रोयी हूँ फिर हो गये यहाँ दृग चार;
"मोहन ! कैसे यहाँ ? इस समय ? मन की तपन बुझाते हो ?
एक तड़पती छोड़ रेत पर, मछली और फँसाते हो ?
कब तक छिपते फिरा करोगे हे चितचोर उदासी बन,
यौवन के सावन भादों में ऐसा एकाकी जीवन।"

चन्द्रगुप्त—क्षमा कीजिये, मुझ सैनिक को इन क्रीड़ाओं से क्या काम,
राजनीति - काँटों में मैं उलझा हूं मुझे कहाँ विश्राम ?
अति कठोर जीवन है मेरा, लड़ना मरना आता है,
रानी आप, राज्य सेनानी मैं, सेवक का नाता है;
आज्ञा मिले अभी सेना ले देश किसी का करूँ विजय;
किन्तु कदापि राज्य लिप्सावश करूँ न आत्मा का विक्रय;
आप सुमन हैं देव शीश की शोभा का सुंदर उपहार,
मैं हूँ शिलाखंड सरिता में खाता रहता सतत प्रहार;
पर मेरी गति रोक न पाये मेरे मग के सुंदर फूल,
मैं निज धुन में बढ़ता जाता, लखता नहीं उधर मैं भूल;
कूल दुकूल भरे फूलों से तटिनी का आलिंगन पाश,
नहीं मुझे बंदी कर पाया, नहीं लुभा पाया अलि-रास,
नहीं मधुप सा सीखा मैंने सुमन सुमन से रस लेना,
तरु सा सरि का बदन परसकर सरस फूल बरसा देना;

अनिल गुदगुदी से पंकज कलिका मुसका कर मुझे निरख,
चाह भरी जब दृष्टि डालती कर कटाक्ष चंचल कर चख,
तब कितनों का कठिन उरस्थल पानी पानी हो जाता,
पर शंकर सा अचल रहा मैं उनके केसर-शर खाता;
सच है नारी कर सकती है विधि विधान के भी प्रतिकूल,
सच है प्रमदा भर सकती है सुमन राशि में अगणित शूल,
बिजली सी वह गिर सकती है घन के सजल हृदय को त्याग,
आग लगा सकती पानी में भर सकती जग में अनुराग,
हो सकती वह शक्ति सृष्टि की, हो सकती विनाश का मूल,
दृढ़व्रत कर बन अचल हिमाचल, हो सकती इसके प्रतिकूल,
ऊपर उठ आदर्श बने तो चूमे उसका पाँव, शिखर,
गिरे, पतित हो यदि तारा सी ज्योति न थम पावे क्षण भर;
आप सँभल सुपन्थ पर चलिये मेरा तो है अटल विचार,
सेवक हूँ सेवा कर सकता, प्रेम, आर्य का ही अधिकार।

ध्रुवदेवी—चन्द्रगुप्त! तुमको क्या मद है राजवंश में होने का,
है घमंड क्या तुमको अपनी चाँदी अपने सोने का,
सेना को वश में रखने का, सेनानी पद का अभिमान?
अथवा राजमात्र की डोरी निज कर में रखने की आन,
राजा का विश्वासपात्र बन है शासन करने का गर्व?
एक चाल ही में बस देखो गर्व किये देती हूँ खर्व;
डींग धर्म की हाँक रहे हो, मुझे सिखाने आये ज्ञान,
सम्राज्ञी की करे उपेक्षा सेवक का इतना अभिमान!
चेतावनी सुना दी पहले अब मैं दाँव लगाती हूँ,
बने शर्करा नहीं क्षीर में, मक्खी सा बिलगाती हूँ।

३

भोलेनाथ—प्रहरी का भी जीवन क्या है, कैसी रात कहाँ का दिन,
घड़ियाँ पूरी करता रहता, सूर्य देख, तारे गिन गिन;
जाड़े पाले शीत धूप से लेनी पडती है टक्कर,
वृत्ति हमारी है निशि वासरय ही घूम देना चक्कर;
इस जाड़े में विहग वृंद भी सोते हैं जोड़े से मिल,
यहाँ रात में पहरा देते दाँत हमारे जाते हिल;
गृहिणी रोती कोस भाग्य को, मैं ललाट हूँ ठोंक रहा,
चौथापन होने को आया यहीं भाड़ हूँ झोंक रहा;
इतना कष्ट उठाकर भी हम सूखी रोटी पाते हैं,
दूध और घी से कितने ही धनपति नित्य नहाते हैं;
बड़ी ठंढ है, अकड़ गया हूँ, प्रहरी अपर नहीं आया,
समय हो गया पहरा बदले, कहाँ मरा दासी - जाया;
डूब रहा हूँ नींद - सोत में, गया कटोरा भी वह डूब,
घंटा, चलूं ठोंक दूँ दो का, कटि दूँ खोल, गया जी ऊब,

धौंकल—नमो, नमो, भोले बाबा ! हम आ पहुँचे मत घबड़ाना,
चोट पड़ी घंटे पर देखो इधर हुआ मेरा आना;
बड़ा समय का सच्चा हूँ मैं, ठीक समय से करता काम,
जो विलम्ब करते हैं उनसे रहते रुष्ट हमारे राम;
मुझको दो हथियार, खोल दो कटि, जाकर विश्राम करो,
हाथ मारना हो यदि धन पर तो मुझ सा कुछ काम करो ।
भोलेनाथ—गोल गोल मत बात करो यों, कैसे हो बन रहे कुबेर,
भाग्य जगे बिल्ली के ! छींका टूटा ! तुमको मिली बटेर !

*

धौंकल—क्या नहीं सुना तुमने अबतक, है अंत:पुर का समाचार—
सेनानायक को ध्रुवदेवी थीं बहुत मानती हृदय हार,
दोनों में गहरी छनती थी अब मन में ऐसी लगी फाँस,
दोनों ही एक दूसरे का बैठे हैं करने सर्वनाश ।
भोलेनाथ—कुछ कारण है जो गाँठ पड़ी, पहले तो गाढ़ी छनती थी,
अब बिगड़ गयी है, क्यों खटकी? पहले तो पूरी बनती थी ।
धौंकल—अब हम लोगों की चाँदी है दोनों में इधर गयी है चल,
झट अपनी गोटी लाल करो यह अवसर नहीं मिलेगा कल;
साखी दे मुझे दिखाना है उस चन्द्रगुप्त को विद्रोही,
मरती हैं उनपर सम्राज्ञी पर नहीं पसीजा निर्मोही;
पा जाऊँगा मैं उन्नत पद यदि अपना पक्ष निबाह सका,
राजा के भाई हैं तो क्या, सीधा है करना मुझे टका;
जगती सब अपने गौं की है मैं चूकूँ क्यों अवसर पाकर,
अपना उल्लू सीधा कर लूँ बनकर आज्ञाकारी चाकर;
चट्टा बट्टा कर इसी रंग का, तुमको भी अपनाता हूँ,
सुर में सुर भरो हमारे तुम, गाओ जैसा मैं गाता हूँ ।
भोलेनाथ—पीटो तुम अपनी ही खँजड़ी, इकतारा स्वयं बजाओ तुम,
यह डेढ़ चावलों की अपनी खिचड़ी बस अलग पकाओ तुम;
मैं झूठ कदापि न बोलूँगा, विश्वासघात ! यह नीच काम,
मुद्रा के लिये पतन ऐसा ? कलियुग की महिमा ! राम ! राम !

मत रहे चाँद पर बाल एक ऐसा मत पाठ पढ़ाओ तुम,
मुट्ठी तुम गरम करो अपनी, चाँदी की जूती खाओ तुम;
तलवे में मेरे आग लगी बेसुरा राग ऐसा सुन सुन,
जिस धुन में तुम हो लगे हुए रूई-से कहीं न जाओ धुन;
क्यों आग लगाने को घर में हो व्यर्थ आग पर रहे लोट,
चुल्लू भर जल में डूब मरो जो यों जी में आ गया खोट;
तुमसे है यही विनय मेरी तुम चुपके बैठो अपने घर,
मत जलो मोह में बन पतंग, चींटे के मत यों निकलें पर;
सीखा है नहीं तुम्हारे - सा मैंने तलवा धोकर पीना,
सच्चाई पर मैं मरता हूँ, पानी खोकर कैसा जीना;
राजाज्ञा से भी नहीं करूँ ऐसा वैसा यह नीच काम,
यदि सैनिक का है यही मान तो ऐसे पद को राम राम;
यदि भंडा फोड़ हुआ सारा, खुल गया कहीं षडयंत्र जाल,
यदि चन्द्रगुप्त बच गया कहीं, पाँसे में उलटी पड़ी चाल,
तो समझो अपनी कुशल नहीं उतरोगे तुम करवाल-घाट,
किसको कुत्ते ने काटा है, है गया बुद्धि का उलट टाट,
जो बड़े बड़ों के झगड़े में घुन बनकर पिसने जाएगा,
वो आग, डालकर घी अपने ही घर में आग लगाएगा;
घर के न घाट के होओगे मत करो लोभ वश हेर फेर,
मत बनो काठ के उल्लू, कर, आधा तीतर आधा बटेर;
करनी निज आगे आएगी, जो बोओगे सो काटोगे,
गिर कर तुम धरती चूमोगे तलवे औरों के चाटोगे;
तुम निन्नानबे - फेर में रह, करने की सोचो पौ बारह,
इस तीन पाँच में कौन पड़े, मैं होता हूँ नौ दो ग्यारह।

४

नगर तोरणों पर बजती है बड़े धूम से शहनाई,
घंटों का रव गूँज रहा है शंखों की ध्वनि है छाई;
शयन-आरती हो चुकते ही राजमार्ग का रुका प्रवाह,
हुए बंद संगीत वाद्य सब, घर की सबने पकड़ी राह;
चौंसठ फाटक बंद हो गये 'पाटलिपुत्र' नगर के झट,
अब सुन पड़ती है प्रहरी गण के चक्कर की बस खटपट;
परकोटे से बना सुरक्षित, वन के बीच, जाह्नवी तीर,
राजभवन निर्मित विशाल है खाई चारों ओर गँभीर;
स्वर्ण-कलश अगणित शिखरों के विमल कौमुदी में चमचम,
झलका करते हैं कोसों से, छवि लख कर रवि जाता थम;
उसमें है सहस्र खम्भों का इक मंत्रणा-सदन रमणीक,
बना विश्वकर्मा की जो निपुनाई का है अमर प्रतीक;
शोभित है उसमें सिंहासन दिव्य मनोहर रत्न-जटित,
निकट सभासद औ मंत्रीगण जन बैठे हैं चुप, शीश नमित;

अगणित रजत प्रदीप स्वर्ण शृंखल में लटके जलते हैं,
अगर, सुगंधित द्रव्य चतुर्दिक, आधारों में बलते हैं;
राजद्वार पर आँख लगी थी सब थे दर्शन को उत्सुक,
उठ जाते सब स्वागत में यदि कोई आता आगंतुक;
फाटक खुला, दंडधर सरके, जयध्वनि हुई, बजे वादन,
सब सादर उठ खड़े हुए करने को उठकर अभिवादन;
करते हुए प्रकाश मार्ग में शत उल्काधारी आये,
मल्लिकाओं, प्रतिहारों के दल दो ओरर हे छाये;
छँटे केश पर कसे पुष्प - पट देह रक्षिणी यवनी - दल,
दृष्टि डालता हुआ चतुर्दिक आगे आगे गया निकल;
महाराज का उदय हुआ फिर, सिंहासन आसीन हुए,
एक बार सबको विलोक कर, किसी ध्यान में लीन हुए;
बोले फिर, हम यहाँ जुटे हैं करने को विचार मिलकर,
निज कठोर कर्तव्य निभाने में न डिगेंगे हम तिल भर;
देवें उचित दंड क्या उसको जिसे राज्य ने पाला हो,
जो चन्द्रमा सदृश उज्जवल हो पर जिसका मन काला हो;
समझ जिसे विश्वासपात्र, हो शासन का भी सौंपा भार,
जिसके संग अनेक ढंग से किये गये अगणित उपकार;
वही स्वयं विद्रोही बनकर, सेनाओं को बहकावे,
असंतोष की आग लगाकर, उसे फूँक दे लहकावे;
राज्य हड़प लेने की ठाने हत्या का रचकर षडयंत्र,
मेरे मग में काँटा बोवे जनता को दे अनुचित मंत्र;
सम्राज्ञी पर डोरे डाले मर्य्यादा उल्लंघन कर,
पता लगाकर भली भाँति से समाचार लाये हैं चर;
अन्वेषण कर लिया सभी विधि महादेवि ने साखी ले,
ऐसे आचरणों की आशा मुझे न थी विश्वासी से;
कहो दंड क्या उसे उचित है सूली पर चढ़वा देना,
अथवा मिट्टी में गड़वा कर कुत्ते से नुचवा देना;
कारागार जन्म भर का दे डाल काठ में उसके पग,
या चंडी के सम्मुख उसका करें खड्ग से शीश अलग ?

निर्भय हो, सम्मति अपनी दो, उचित दंड है महा कठोर,
प्राण दंड ही देने की क्या, है हो रही माँग सब ओर;
अच्छा तो अब नहीं पलटना सुनकर अभियोगी का नाम,
मेरे बंधु महाबलाधिकृत 'चन्द्रगुप्त' का है यह काम;
सोचा नहीं स्वप्न में भी था, वही असंभव, संभव आज,
ऐसी चाल सहोदर की हो कहते भी लगती है लाज;
मनसा जब आत्मीय जनों की स्वार्थ सिद्धि हित खोटी हो,
वही करे छल का साहस यों जिसके कर में चोटी हो;
जब अपनों की यही दशा है तब तो कुशल करे भगवान,
किस पर करे भरोसा कोई, इसका मुझे न था अनुमान।
हाँ सच है प्रत्येक मनुज में दुर्बलता कुछ होती है,
पा प्रतिकूल परिस्थिति मन में बीज रूप जो सोती है;
अवसर-सलिल सींचता उसको तब वह अंकुर ले लेती,
हैं इतिहास पुस्तकें सारी उदाहरण ऐसे देती;
एक भूल होती तो होती, हो सकता उसका उपचार,
पर क्या उसने किया सत्य ही प्रिया संग अनुचित व्यवहार!
गिर जाता आकाश नहीं क्यों, फट जाती क्यों नहीं धरा,
ऐसा करके भी जीवित है, इस क्षण तक वह नहीं मरा?
वह पापी निर्लज्ज कहाँ है उसे उपस्थित करो तुरन्त,
अच्छा तो बस इसी सभा में उसका भी हो जावे अन्त;
वह है यहीं दिखाने को मुख, बस उसका दो शीश उतार,
पूछो उससे क्या कहता है करे निवेदन अंतिम बार;

चन्द्रगुप्त—जो सर सदा राज्य अर्पित था है वह भेंट बिना संकोच,
मिथ्या मुझपर दोषारोपण, महाराज फिर से लें सोच;
छान बीन यदि आप करेंगे, न्यायतुला बन, तजकर रोष,
तो सर्वथा मुझे पावेंगे, सच्चा स्वामिभक्त निर्दोष;

ध्रुवदेवी—माँगो क्षमा भूल की अपनी प्रायश्चित्त करो स्वीकार,
जीवन-दान तुम्हें दिलवा दूँ पुनः करो हे वीर विचार;

चन्द्रगुप्त—केहरि घास नहीं खा सकता, 'हाँ' हो सकता 'नहीं' नहीं,
बेच आत्मा प्राण बचाने वाले होंगे और कहीं;

रामगुप्त—अच्छा जाओ, भ्रातृरक्त से नहीं करूँगा मैं कर लाल,
उचित तुम्हारे लिये यही है देश छोड़ दो तुम तत्काल;
चन्द्रगुप्त—जो आज्ञा हो, राज्य छोड़कर अभी चला मैं जाता हूँ,
महादेवि, श्री महाराज, मैं सादर शीश नवाता हूँ;
बिदा हो रहा नक्षत्रों से उनका आज योग-तारा,
छूट रहा है आज सदा को अपना यह स्वदेश प्यारा;
राज्यवृक्ष! अपना जीवन दे मैंने तुझको सींचा था,
मिटा नियति ने दिया आन में मानचित्र जो खींचा था;
झंडा गुप्तराष्ट्र का मैंने दिगदिगन्त में फहराया,
विजयकेतु जल थल पर मेरे पीछे पीछे लहराया;
रणचंडी की की उपासना लाखों शीश किए बलिदान,
शोणित सागर में लाली की यह करवाल बनी जलयान;
शंखनाद उपरान्त शांति का सिंहासन जम गया अटल,
खिलने लगी प्रजा फुलवारी फलने लगे मनोरथ फल;
सेना सञ्चालन करता था मैं विद्रोह दबाने को,
सोचा था विस्तार राज्य का आगे और बढ़ाने को;
पर जलता है हाथ होम में कीर्ति हुई मेरे प्रतिकूल,
जिनके मग में फूल बिछाये हुए हमारे पथ में शूल;
लासा लगा फँसा कुचक्र में प्रेम मुझे नीचे लाया,
अच्छा हुआ खुलीं तो आँखें जब मैंने धोखा खाया;
आयेगा फिर समय उठेगी कभी यवनिका भ्रम की जब,
सत्य असत्य भास जायेगा खुल रहस्य जायेगा सब;
बहती रहे मोद की गंगा कूल-वृक्ष आलिंगन कर,
अबला तुम तो महाशक्ति हो, किया तुम्हीं ने सब को सर;
पावन धरा! निहित कण-कण में तेरे है, जीवन इतिहास,
हिमकणयुत फूलों में अभिनय करता मेरा रोदन हास;
इसी सौध के पलने पर शैशवपन मेरा झूला था,
इसी नगर में मेरा यौवन-तरु भी बढ़ कर फूला था;
यह तरु जिसे लगाया मैंने जोहेगा माली का मुख,
नैसर्गिक इन सखा-वृन्द के तजने का है मुझको दुख;

सदा बहार बने फुलवारी मेरी अन्तिम है आशीश,
देख आँख भर लूँ, फिर दर्शन कभी न होंगे, हा, जगदीश !

५

ध्रुवदेवी—कहाँ चले तुम बने विरागी, परिजन पुरजन से तृण तोड़,
ओछा एक तीर खाते ही, पीठ दिखा, भागे रण छोड़;
चपल चंचला गरज, तड़प यों घन को भी डरपाती है,
फिर लखते ही लखते हिय में लिपट एक हो जाती है;
ऐसी अग्नि-परीक्षा कितनी प्रेमी जन नित लेते हैं,
एक दूसरे की भूलों को भूल क्षमा कर देते हैं;
रूठ गये तुम उस अभिनय पर—मेरे बायें कर का खेल,
पट दें गिरा पूर्व दृश्यों पर फिर हम तुम कर लेवें मेल;
कर्णधार फिर एक बार बन खेओ डगमग होती नाव,
भय संकोच छोड़ मिल जावें त्यागो अन्तर और दुराव;
क्यों फूले फूले मुँह फेरे, हम से यों कतराये हो ?
हवा बताते हो चम्पा को, मधुकर क्यों इतराये हो !
बोलो, मुँह में दही जमा क्यों, जी खट्टा मत होने दो,
फटे नहीं चित, रूको, प्रेम को मानस क्षीर विलोने दो;

आँख लाल कर गाल फुलाये जमा हथेली पर सरसों,
ऐसे अब बन गये अपरिचित रहकर संग साथ बरसों;
हँसो खिलखिला कर फिर हमसे, बोलो मुँह से फूल झड़ें,
आँखें लड़ती रहें निरन्तर हम दोनों मत भूल लड़ें;
नयन बाण ही चलें तुम्हारे हम दोनों में नहीं चले,
हाथ मिलाकर हम मिल जावें जगती जल जल हाथ मले;
हँसी कराओ मत यों मेरी बात हँसी में उड़ा-उड़ा,
छोड़ो नहीं साथ तुम मेरा, निठुर, हाथ यों छुड़ा-छुड़ा;

चन्द्रगुप्त—नहीं शक्ति कोई स्वतन्त्रता मेरी हर पावेगी अब,
स्वर्णश्रृङ्खला नहीं किसी विधि बन्दी कर पावेगी अब;
खिचड़ी कोई लाख पकावे दाल न गल पावेगी अब,
छलबल कोटि करे कोई भी एक न चल पावेगी अब;
मुँह की खा अपना सा मुँह ले, निकल कहीं को जाऊँगा,
किस मुँह से तुम रोक रही हो, मैं मुँह नहीं दिखाऊँगा;
देवि! पुनः हूँ क्षमा मांगता अब दो ध्यान हमारा छोड़,
पग अब पीछे नहीं पड़ेगा चलता हूँ सबसे मुँह मोड़;
स्वयं दूर होने जाता है देवि तुम्हारे पथ का शूल,
आज, आँख भर देख तुम्हें दूँ अन्तिम बार विदा, हे भूल!

माया ठोंक, हाय कर ललना, बैठ गई माथा पकड़े,
घूम गया सर, माथा ठनका, देख चन्द्र को यों अकड़े;
सूखी हँसी, टके सा उत्तर, बस रह गई विवश कट कर,
मुँह धूँआ हो गया, तिलमिला उठी, चोट खा गिर, लट कर;
बोल न फूटा कितना चाहा शब्द होंठ तक रहे अटक,
दर्शन की प्यासी आँसू पीं, तड़पी, तालू गया चटक;
देख किये पर पानी फिरता, उखड़ी, बहुत बनी बिगड़ी,
हलका किया, हुआ जी भारी, भरी हुई थी बरस पड़ी;
आँखें बरसीं, डूब गया जी क्षण भर यों पाया विश्राम,
मूर्च्छा और चेतना में फिर चलता रहा विकट संग्राम;

जागी, उठी टीस, चिन्ता से बैठ गया उसका जी फिर,
दाँत लग गये, पुनः जाग कर आपे में आई, हो थिर—
दौड़ी, चली राह में कुछ डग, डगमग पग मग में रखती,
प्रिय का कुछ भी पता नहीं था, उठती धूल रही लखती;
फिर मन मार हार फिर आई, प्रिय की दृग में झाँकी ला,
टूक टूक हो रहा हृदय है निष्ठुरता की टाँकी खा;
नहीं सहारा तरुवर का पा गिरी भूमि पर मंजु लता,
लहरों सी उठ-उठ लखती थी बनी उदधि की व्याकुलता।

ध्रुवदेवी—रही विठाये दृग पर जिसको उसने कर क्यों खींच लिये,
आँखों में जो घूम रहा था उसने चख क्यों मींच लिये;
मेरे मानस का अधिवासी चला गया यों आँख बदल,
बढ़ा स्नेह दीपक चुपके से, चुरा चला दृग का काजल;
लगी आँख लग नहीं सकी है, रात आँख में काटी है,
सो जब गया भाग्य ही मेरा सोने का घर माटी है;
जिस अनुपम मोती का पानी पाकर मन था हुआ हरा,
उसके रूखे व्यवहारों से सूख गई मैं, हृदय भरा;
हाथ न आया मेरे कुछ भी गया हाथ का पंछी उड़,
मेरे मग में अचल आपड़ा जीवनस्रोत गया हा! मुड़;
छाती पर पत्थर रख करके झेलूँगी जो आवेगी,
नियति देखिये कब तक चक्कर दे दे खेल खिलावेगी;
फँसा पाँव कीचड़ में मेरा, पाँव तले धरती सरकी,
कतर गये पर मेरे अब तो, रही उड़ाती बे पर की;
ऐसे उखड़े पाँव राह में गिर कर पड़ी चाटनी धूल,
उनके पथ में आँख बिछाई मग में वे बोगये बबूल;
रही रगड़ती ही एड़ी पर रगड़ भाग्य ने वह ठानी,
ढीली पसली करके छोड़ी, पीठ लगा, की मनमानी;
बंसी तो वह तोड़ लेगया अब मैं जाल बिछाऊँगी,
चारे पर झख परक न पाया फिर झखमार फँसाऊँगी;
ठोकर खा विदेश की, ईश्वर करे, आँख उनकी खुल जाय,
कई घाट का पानी पीकर मन का मैल कहीं धुल जाय;

पतला रंग हुए, गाढ़े में, याद करेंगे मलमल हाय,
छक्के पंजे में जग के पड़ झुक जायेगा गर्वित माथ;
उनका लूँगी पेट, भेज कर धावन थाह लगाने को,
कर दूँ एक पसीना एड़ी चोटी का लौटाने को;
आजाते तो दिन फिर जाता, रह जाती मुँह की लाली,
एक बार मेरे मधुवन में आजाते फिर बनमाली!
सधता काम, पूजती उनको, सभी पूजती मेरी साध,
परका कर अपने चकोर को चाँद दिखा रखती मैं बाँध;
वीरसेन! जाओ ले आओ उसको जिसने लिया विराग,
क्या कहता है? प्रिय आते हों तो तू उड़ जा, मेरे काग!

६

चन्द्रगुप्त—चलते चलते फूल गये पग, काँटों का पाकर सत्कार,
उठकर उलझ रोक लेते कुछ, कुछ पद लगते बारंबार;
खड़े, राह कुछ देख रहे थे, सोच यही, पग छूने को,
एक और पा दूने होते मिटा शुष्कता—सूने को;
खुजलाते तलवे जा लिपटे, जी दे, काँटे टूट मिले,
मनमें लिये कामना दोनों, बिलग न हों, सँग रहें सिले;
हुए मनोरथ सुफल युगल के पग मिल मिल उनसे रोया,
कंटक दल उसके उर में निष्कंटक पाँव तोड़ सोया;
मरुत-उसास, मरीचि-व्यथा ने मरु-मानस को सरस किया,
आपद-घन छागये, दृगों ने सावन भादों बरस दिया;
पीर-पयोधर की घनता घटती ही गई छीज, रो-रो,
उर्वर क्षेत्र बना, कठोर मन, अनुवेदना बीज बो-बो;
दुख के नूतन अनुभव ने उपजा दी विश्व-प्रेम खेती,
जब अपने पर आ बीती, तब आँख खुली चिंता चेती;

ध्वजा-चक्र-रेखाङ्कित तलवे भू पर चले न बिन पद-त्राण,
आज प्रथम पृथ्वी चुम्बन ने किये सजल उनके भी प्राण;
बसुंधरा पर सेज हमारी तरुओं की शीतल छाया,
सहज स्वतंत्र विचर सारंग सा लूट रहा सुख मन भाया;
कहाँ तूल का शुष्क बिछौना कहाँ फूलमय तृण की सेज,
जग-मग करता, मग, तारक-मणि, हिमकर कभी, कभी रवि तेज;
भाग्यचक्र सा धरा-हिंडोला ऊपर नीचे ले जाता,
काट रहा चक्कर हूँ छवि का अपने में चक्कर खाता;
चक्कर खा, उपवास किये हैं पेट भर गया रोने से,
है अवकाश नहीं आँखों को निशिदिन मोती बोने से;
इसी पेट की जली प्रजा भी रोती आई कितनी बार,
यह ज्वाला कितनी भीषण है जिससे संचालित संसार;
मुझको इसका पता नहीं था सबको हँस कर ठुकराता,
अपना पेट भरा था भूखों पर फिर कौन तरस खाता;
आज जलाकर इस ज्वाला ने मुझको खरा बनाया है,
तपा-तपा कर अहंकार ममता का मैल जलाया है;
मानव आज हुआ हूँ मैं तो—हरा भरा समतल मैदान,
पहले अपने को समझा था हिम आच्छादित शृंग महान,
बहती नहीं स्नेह सरिताएँ जहाँ न उगती करुणा घास,
जिसको पगतल की हरियाली निरखा करती खड़ी उदास;
अब देखा कृषकों का जीवन समझी उनकी मूक व्यथा,
अचल पसीज उठेगा सुनकर बेचारों की करुण कथा;
योंही चोटी का बन मैंने घृणा उपेक्षा की सन्तत,
मेरी छाँह न छू पाता था नीचे का पददलित जगत;
सरस मेघ उठ बड़े बेग से कटिप्रदेश तक जा पाते,
दुखिया की आहों के वारिद रो रो नीचे आ जाते;
कुहरे के रूई गाले में लिपटा पड़ा अभी संसार,
तुहिन-शाल ओढ़े सोते हैं सरिता पर्वत पारावार;
मार्तंड भी कँपते-कँपते प्राची वातायन से झाँक,
अग्निकोण में शीत मिटा है रहा, नहीं रथ आगे हाँक;

भींगी रात, ओस खा-खा कर पिछले में पयाल को त्याग,
कृश-शरीर वह कृषक लंगोटी ही पर चला खेलने फाग;
मोट चला, दुबले बैलों सँग, ठंढी साँस, आँख भर, खींच,
पानी, गरम, गरम आँसू से करके खेत रहा है सींच;
बच्चे उसके सी-सी करते विहगवृन्द सँग झीलों पर,
हाथ दबाये, धूप खा रहे अथवा, भूखे, टीलों पर;
अनावृष्टि उनके खेतों को सूखा डाल सुखा देती,
बाढ़ बेग से उपज बहाकर उनका हृदय दुखा देती;
कभी पड़े पाले के पाले कभी अनल पूजा लेता,
कोटि अड़चनों में से होकर बेचारा नौका खेता;
जल में उतर तैरना सीखा, जग में घुस समझा बूझा,
दीनों का जीवन कैसा है, आँखों देखा तब सूझा;
पानी सा यों रक्त बहाकर ले देकर जो शेष बचा,
उसने ही भोले गृहस्थ का छोटा सा संसार रचा;
वह अपनी आधी रोटी भी सदा अतिथि को करता भेंट,
आगत स्वागत कर तन मन से योंही सुख से रहता लेट;
रमा लोटती नहीं वहाँ पर उनके घर विराजते राम,
स्नेह-बूँद की वर्षा करने आया करते हैं घनश्याम;
वर दिनकर बद्ध जब करता है इन्द्रधनुष की माया भंग,
तब सीता का जनक बना वह देता विरच स्वयंवर रंग;
हलधर बन वह लौह-लेखनी से लिखता अनन्त गाथा,
एक-एक के लाख बना भी रहा ठोंकता ही माथा;
कृष्ण कभी बन गऊ चराता कम्बल ओढ़े कानन में,
शील आँख में, दया हृदय में, शान्ति झलकती आनन में;
मानवता की माप यही है, बढ़ना नीरस, घटना पाप,
इनकी सत्संगति ने, जीवन पर दे दी है अपनी छाप;

*

छिप, छींट छपा ने तारक कण, तमजाल चतुर्दिक फैलाया,
पर 'हंस' मोतियों को चुग कर तम फाड़ सगर्व निकल आया;

अब चक चकई की चाँदी है ऊषा ने सोना बरसाया,
हैं सुमन सितारे चमक रहे तृण पर आकाश उतर आया;
था विश्व लिपट जिससे सोया सोने की चिड़िया हुई हवा,
सरिता की छाती फड़क उठी चमका रेती का रवा-रवा;
कलिका-यौवन पर ओप चढ़ा मनमथ मादकता गहराई,
अरुणोदय की शोभा पी-पी लोचन में लाली लहराई;
अब कुमुद कुसुम की आँख लगी रजनीचर सारे सोते हैं,
उड़ गये आग पानी में लख मानो हाथों के तोते हैं;
शीतल अमराई में सुन्दर सुन्दर आमों का मेला है,
कंठी बाँधे कीरों का दल हो गया इन्हीं का चेला है;
इतना सा मुँह कलियों का था गुदगुदा अनिल ने विहँसाया,
मद भरे चषक फूलों के लख अलि मुँह में पानी भर आया;
रविकर है लतिका कुंजों में पट धूपछाँह का फैलाता,
इस रंगभूमि में अभिनय कर खगकुल है मधुर गीत गाता;
यह नीलगाय का झुंड पड़ा खेतों में है मुँह मार रहा,
सरपत पत्तों को नोच, 'बया'[1], है विरच नीड़-संसार रहा;
कोयल, कौवे को मूर्ख बना अपने अंडे उसके सर मढ़,
अपना उल्लू सीधा करके, है बोल रही कैसा बढ़-बढ़;
तिनके की क्षुद्र कटोरी में नन्ही सी सुघर 'बबूना'[2] है,
छोटे छोटे अँडे—जिनका पानी मोती से दूना है;
पत्तों का नीड तंतुओं से विरचा है 'दरजी'[3] ने सी-सी,
'जलकुक्कुटि'[4] निज चल-नीड लिये चक्कर देती है फिरकी सी;
मुँह मारा मछली निकल गई 'किलकिला'[5] बोल तिलमिला उठा,
फँस गई, भाग्य अपना अपना, बंसी वाला खिलखिला उठा;
उठ पुरवा का प्रकोप नभ में, फैला घन-तूल लगा धुनने,
'पी' 'पी' है कौन पुकार रहा चंचल हो 'चन्द्र' लगा सुनने;

चन्द्रगुप्त—हूं घर से अपने बहुत दूर पर सुघर दृश्य मन में घर कर,
मेरे मुरझाते मानस में इक रास उमंग रहा है भर;

१—५ पक्षी विशेष

चलना है आगे जहाँ धरा से अंतरिक्ष मिल एक हुआ,
है जहाँ सांध्य सिंहासन पर दिनकर महीप अभिषेक हुआ;
कुछ पता नहीं मुझको चलता किस ओर लिये पग जाते हैं,
बढ़ता ही जाता मार्ग सदा जितना हम पाँव बढ़ाते हैं;
दी है धारा में नाव डाल पड़ गये पवन के पाले हैं,
किन काले कोसों जाना है अब तो जीने के लाले हैं;
यदि भवँर कहीं मुँह बाती है अजगरी समान निगलने को,
तब लहरें उससे बचा, हटा, इंगित करतीं बढ़ चलने को;
बैठे हैं मग में इस जीवन तरणीं को हरने पर तत्पर—,
जलमग्न शिला के शिखर गुप्त, पानी की टट्टी में, छिपकर;
पर दर्पण बन कर स्वयं सलिल, आड़े आता, पतवार बदल,
क्या कहूं किसी का गुप्त हाथ, कर देता दुष्कर कार्य सरल;
आँधी आँखों में धूल डाल, काँटे ला मग में बोती है—,
पर शूल, फूल है हो जाता, सर धूल उड़ा तब रोती है;
जब मुड़कर पीछे दृष्टि डाल लखता हूं कितना आये हैं,
तब ऐसा ज्ञात मुझे होता, मैंने चक्कर ही खाये हैं;
आकाश वही सूना-सूना दिन में घेरे-घेरे रहता,
निशि में ध्रुव, धुरी धरा-गोले की इसी अंश फेरे रहता;
दिनकर, हिमकर सर पर से हो इक वृत्त बनाते हैं अब भी,
आलोक राशि तारक समूह नभ गंग नहाते हैं अब भी;
उलका फुलझरियाँ, केतु कभी छवि दिखलाते रहते अनुपम,
तारों को रजनी, छेड़, व्योमवीणा में उपजाती सरगम;
सिंदूर लगा संध्या फूली, दिग्वधू बधाई गाती है,
आरती उतारेगी रजनी दीपक ले छिपती आती है;
अंगड़ाई लेती कुमुदकली, दृग बंद कर रहे कंज सुमन,
लहरों की लोरी सुन-सुन कर झुक-झुक पड़ते हैं मातल बन;
है मुग्ध प्रकृति का वही साज जो मगध देश में सजता था,
लंका है यह विदेश, डंका, घर रामराज्य का बजता था;
मैं सेनानी युवराज वहाँ था पर दासत्व रहा बंधन,
अपनी इच्छा के भी विरुद्ध औरों का रखना पड़ता मन;

उस रमणी के इक ईगित ने कर दिया मुक्त सब बंधन से,
अनुभव का अवसर मिला मुझे, मन बढ़ा विश्व अभिनंदन से;
वह अपनी भूल सुधारेगी, उपकार न उसका भूलूँगा,
जिसने मुझको स्वच्छंद किया उसकी ठुड्ढी मैं छू लूँगा;
वीरसेन—छूना चिबुक अधररस लेना इत्यादिक व्यापार करो,
चलो देख लो नारी की गति रोगी का उपचार करो;
चन्द्रगुप्त—कौन? कौन? कवि वीरसेन तुम, कहाँ चले, कैसे आये?
शनि की दशा, कुदृष्टि राहु की—ये सब खींच कहाँ लाये!
वीरसेन—नमस्कार हे वीर विरागी! पल्ला झाड़ निकल आये,
तोड़ चुके आकाश कुसुम, चुन गूलर-फूल मित्र! लाये!
लाया हूँ श्रीमन् को बंदी कर ले चलने का शासन,
चलिये कृष्णागार सेइये मेरे संग उठा आसन;
चन्द्रगुप्त—अब हूँ मगध राज्य के बाहर, नहीं किसी का मैं अब दास,
नहीं यहाँ लागू है कोई राजविधान दंड का पाश;
वीरसेन—भौगोलिक सीमा तुम तज दो प्रेम परिधि के हो भीतर,
उसकी अपर दंडधारा है, धारा वही लगी तुम पर;
चन्द्रगुप्त—उलझन में मत मुझको डालो खोल रहस्य कहो सब बात,
क्यों मुझको छेड़ने यहाँ भी पहुँच गये तुम वीर हठात्!
वीरसेन—माला ले, मुँह पर अब मेरे नहीं लगाओ तुम ताला,
याद किया है उसी हृदय ने जिसपर डोरा है डाला;
चन्द्रगुप्त—मित्र अगर मंतव्य यही था यहाँ तुम्हारे आने का,
समाचार अपमानजनक यह लाकर मुझे सुनाने का;
सुप्त भावना जगा हमारी फिर नव जाल बिछाने का,
तब प्रयत्न यह व्यर्थ किया है गंगा उलट बहाने का;
इन प्रलोभनों के विचार को लाख बार ठुकराया है,
करने यह परिहास तुम्हें भाभी ने यहाँ पठाया है?
वीरसेन—नहीं गेहिनी ने भेजा है करने को आमोद प्रमोद,
उस प्रसून ने तो भरदी है काँटो ही से मेरी गोद;
उसके कारण भी आया हूँ तुमने कुछकुछ आँका है,
बन्द कर दिया उस चपला ने मेरा नाका-नाका है;

बीसों कूएँ झकवाएँ हैं, उस पर चढ़ा कहाँ का है,
लगा दिया बिधि ने रेशम में हाय टाट का टाँका है;
नहीं किसी से मैं कम सुन्दर हृष्ट पुष्ट हूँ कुलवाला,
मेरी रमणी यदि चपला है तो मैं सरस मेघमाला;
पर वह नाक फुलाए रहती, सीधे बात नहीं करती,
मैं उसपर मरता रहता हूँ, मुझे देखते वह मरती;
जाता उतर सभी मद मेरा उसके सिलबट्टे में पिस,
उसके पग पर शीश रगड़ते गया माथ अंगुल भर घिस;
चित्र खींचता था मैं क्या क्या उसका भरी जवानी में,
हरी हरी सूझा करती थी मुझको भंग भवानी में;
देखा करता स्वप्न बधू का पूर्ण चन्द्रमा सा मुखड़ा,
आँखें उसकी फाँक आम की या कालिन्दी का टुकड़ा;
दाँतों में दाड़िम के दाने छाती पर हिमगिरि के श्रृंग,
लज्जाशीला कमल कली-सी मैं उसका रसप्रेमी भृंग;
पर ज्योंही श्रीमती पधारीं, लगती चिड़िया सोने की,
कटु स्वभाव, विष लगी उगलने, मुझे पड़ गई रोने की;
जितना उसे मानता हूँ मैं मुझको मूर्ख समझती है,
है गुलाब पर काँटा बनकर मुझसे सदा उलझती है;
इक तुम हो कितनी सुन्दरियाँ प्राण दे रही हैं तुमपर,
तरसा करती हैं दर्शन को आहें भरती हैं मरमर;
पर तुम उदासींन रहते हो सब को हवा बताते हो,
कभी नहीं तुम ललनाओं के प्रेम पाश में आते हो;
उसका फल मैं देख रहा हूँ वे बिक गईं हृदय देकर,
पूजा करतीं हैं वे तुमको जपतीं सदा नाम लेकर;
इधर देखिये पत्नी ने धक्का दे मुझे निकाला है,
तुम निर्वासित, मैं निर्वासित अच्छा गड़बड़झाला है;
उलझ-उलझ कर बातबात में जीवन दुखद बनाया है,
यहाँ भाग कर जान बचाने मित्र तुम्हारा आया है;
चार दिवस में देखो उसकी अकड़ सभी छुट जावेगी,
इस विराम में मेरी टूटी हड्डी भी जुट जावेगी;

बची जान ले भाग चला हूँ संग तुम्हारा देने को,
सुकुमारी के दुखे हाथ को कुछ विराम ले लेने को;
दूर आँख से हो जाने पर विरह पीर उपजाने को,
उसके खुजलाते हाथों को सरकी याद दिलाने को;
आते देख न रोका मुझको खड़ी रह गई मुँह लटका,
पटका पैर, भवें मटका कर अंगुली को चटका चटका;
चलता बना वहाँ से फिर मैं, चुप अपना सा मुँह लेकर,
अबला पर क्या हाथ छोड़ता, पूजूँ उसे प्राण देकर;
अब तो कुछ दिन रह विदेश में राजकुमार तुम्हारे संग,
तुम्हें साथ लेकर लौटूँगा जिसमें करे न कोई तंग;
आते समय महादेवी ने प्रेमभरा सन्देश दिया,
कहते हुए छलकते चषकों को आँचल से पोंछ लिया;
ठंढी आह निकाल, मुझे लख, चिन्तित हो अनुनय करके,
कुछ कहती, फिर रुक रह जाती, सँभल पुनः आँस भर के;
टूटेफूटे ही शब्दों में व्याकुलता को घूँघट दे,
कह पाई सन्देश, 'प्राण मेरे दर्शन को हैं अटके';
यह कह आँख धरा पर गाड़े, हार पुष्प को इक-इक नोच,
बिदा किया मुझको उठ करके, डुबा रहा था उसको सोच;
दोनों में कितना अन्तर है छबि में तो दोनों अनुपम,
इक जीवन की सरस धार है, सरसी अपर, गई जो जम;
सरितस्रोत में उपवन, मरु, गिरि, पत्थर तक सिंच जाते हैं,
बहुत किनारा करने वाले साथ चले खिंच आते हैं;
पाला पड़ा हिमानी से है डाला आशा पर पाला,
रंग जमाना उसका लख कर जम जाता पानी वाला;
जी पर बनी, एक जी लेती, जी देती है तुम पर एक,
ईश्वर करे द्रवे वह रमणी, छूट हो जाय तुम्हारी टेक;
तुम तो आँधी सा चलते हो बिजली को करते हो मात,
मैं उड़ता ही सा आता हूँ करता हुआ हवा से बात;
शोध लगाते हुए तुम्हारा कितने पथ को नापा है,
टापे हैं ऐसे नद नाले जिन्हें देख जी काँपा है;

खीची नहीं लगाम कहीं भी कमर यहीं पर खोली है,
बोल गया हूँ चलते चलते सब गत मेरी होली है;
करो प्रबन्ध पेट पूजा का चूहे घट में कूद रहे,
चटकी प्यास, कुआँ पी डालूँ, शेष न उसमें बूँद रहे;
यदि घर चलना सोच रहे हो, आज नहीं करना प्रस्थान,
तनिक अस्थियां जुट जावें, इस अन्तर का भी रखना ध्यान;

*

चन्द्रगुप्त—दमतोड़ चुका अनुराग राग, मैं तृष्णा से तृण तोड़ चुका,
लावण्यमयी उस ललना की झांकी से भी मुँह मोड़ चुका;
अब जोड़तोड़ का क्या फल है ? सारा लेखा जब छोड़ चुका,
हरताल लगा उन चित्रों पर जब हाथ किसी से जोड़ चुका;

*

७

त्रप—हाँ, तो मुझको क्या कहते हो, है प्रस्ताव तुम्हें स्वीकार,
यदि हाँ है तो मुँह माँगा दूँ जीवन भर मानूँ आभार;
गुप्त रूप से दे सहायता निज भूपति का करो विनाश,
हूँ विशेष उत्सुक सुनने को कहो पूर्ण जीवन इतिहास;
भूधर—अपनी जड़ या वंशवृक्ष का मुझको हुआ न अब तक ज्ञान,
है रहस्य के परदे में मेरा उद्भव जानें भगवान;
एक साधु ने इस अनाथ को रोते पाया सरिता तट,
स्नेह सहित आश्रम पर ले जा पाल पोष काटा संकट;
राम भरोसे रहने वाले इस बिरवा को लख इक बार,
एक अपरिचित देवी के नयनों से बही अश्रु की धार;
मेरा मुख लख कई बार वह बोली, साँचा और गढ़न,
वैसा ही है जैसा बढ़ कर पाता मम नवजात सुमन;
पर छाती पर पत्थर रखकर अपनी भ्रष्ट भूल का फल,
आई छोड़ नदी तट पर, छिप, रोक न पाया मोह प्रबल;

पूछा बच्चे कह सकते हो किस सौभाग्यवती के लाल?
योगिराज ने तब बतलाया नालसहित पाने का हाल;
समय और इतिहास मिल गया, देख कलेजे का टुकड़ा,
लिपटा लिया हृदय में माँ ने, रोई चूमचूम मुखड़ा;
फूल अमूल्य नवल उपवन के देख भाल में कुम्हलाते,
हवा-बयार, राहु कितने ही शशि-शिशु को ग्रसने आते;
पर मन्दार बीज सा उड़ कर, पवन संग, पृथ्वी पर गिर,
पत्थर सा जम गया, पूछने वाला रहा न कोई फिर;
माँ-मालिन ने दूध पिलाकर मुझे न पाला प्रेम सहित,
दण्ड-सहारा, पिता नियंत्रण काट छाँट से, रहा रहित;
जीवन की घड़ियों में लड़ता कठिनाई से मरमर जी,
कभी घोर जलवृष्टि कभी सूखे में खे नौका अपनी;
संहारक गण की पूजा की पत्र पुष्प फल दे दे कर,
अज की कृपा रही अनुकम्पा हरि की भी सन्तत मुझपर;
रूँधा गया न काँटों से मैं, शिक्षा से मैं रहा स्वतन्त्र,
सुनता था समाज की फुसफुस, लिया न मैंने धार्मिक मंत्र;
बन स्वाधीन स्वतन्त्र वायुजल में मैं बढ़कर हुआ बड़ा,
कड़िया इतनी झेलीं मैंने हृदय शिला से हुआ कड़ा;
नहीं प्राण का मोह मुझे था मेरा रंग निराला था,
था निश्चिन्त न आगे पीछे कोई रोने वाला था;
इक सैनिक बन 'शूरसेन'-सेना में कर प्रवेश इक बार,
बढ़ा किया, समराग्नि ताप खा, चढ़ा किया, खा घन की मार;
जीवन ममता त्याग, समर में दिखलाये ऐसे कौशल,
लोहा मेरा मान गये सब लख मेरा साहस औ बल;
उन्नति-सीढ़ी के डंडे बन, आया किये सतत संग्राम,
चढ़ता गया निरंतर ऊपर, रहा कमाता धन श्री नाम;
आज सुशोभित करता हूं सेनानी का सम्मानित पद,
पर मेरा मन धीर न धर कर चंचल है जैसे पारद;
तृष्णा मेरी शांति नहीं है है अपूर्ण सी अभिलाषा;
क्षितिज छोर सी बढ़ती जाती मेरी उन्नति-परिभाषा;

पद-पद-पर बढ़ती-आकांक्षा, पद दे, उन्नत-शिखर दिखा--
करती प्रज्वलित रही, पवन दे, संतत स्वार्थ-कृशानु-शिखा;
आलबाल के लघु घेरे में कहाँ समाये, तरु-विस्तार,
जिनकी छाँह बढ़ा, उनको ही बढ़, विट-विटप, डालता मार;
वाञ्छनीय है सिद्धि स्वयं की साधन जो बन बड़े अनूप,
अवसर दुष्प्रयोग से निर्धन सदुपयोग से होते भूप;
राजनीति में नियम कहाँ है राजा करे वही तो न्याय,
सिंहासन आरुढ़ हुए जो उनके थे क्या वैध उपाय;
पिता, स्वजन, भ्राता विरुद्ध ही ले लेता कोई तलवार,
राज्यश्री के अपनाने को देता उसके घाट उतार;
अनुचित जिसे लोग कहते थे, उसको उचित, व्यवस्था दे,
ले, विजयी, करवाल हाथ में जिसको चाहे अपना ले;
विविध श्रेणियों की अधीनता और दासता-दुर्घटना—
होती नहीं, न करता यदि वह कुंभकार घट की रचना;
विविध रूप उसने गढ़ डाले लोक-चाक संचालन कर,
एक समान नहीं क्यों उसने सृजन किए चर और अचर;
यदि समानता सब में होती, नहीं पेट से पड़ता काम,
तो प्रपंच में देख न पड़ता चारों ओर सतत संग्राम;
उचित किया विधि ने या अनुचित पूछे कौन ? किसे अधिकार;
उसने दाने छींट दिये हैं उगते बढ़ते बिविध प्रकार;
बीज सभी समान ही डाले, कुछ ऊसर का भरते पेट,
कुछ उर्वरा भूमि पर पनपे, खगकुल ने कुछ लिया समेट;
शक्तिमान ऊपर उठ निकले, निर्बल पौधे नीचे दाब,
बाधक बन, चूँ किया किसी ने दो उसको मुँह तोड़ जवाब;
कुंजी यही सफलता की—अड़चन से मत हो भयभीत,
मर जाओ या मार गिराओ विघ्न और बाधाएँ जीत;
यदि हम पूरे बली नहीं हैं और संग छोटा ही दल,
और किसी निर्बल धनपति पर छापा मार दिखा के बल—
उसकी सारी सम्पति पूँजी लूट हड़प ले जायँ बटोर;
तो कुछ लोग उपेक्षा से लख हमें कहेंगे डाकू चोर;

पर यदि होकर और प्रबलतम इक विशाल सेना लेकर,
लेवें छीन देश औरों का धरा रक्त से देवें भर;
तो वह लूट विजय कहलाती, डाकू राजा कहलाता,
उसका सब जग स्वागत करता गुण उसका गाया जाता;
मानव कृत विधान में मानव को परिवर्तन का अधिकार,
वह अपने करवाल-ढाल से सकता बदल नियति की धार;
जगती में बल की सत्ता है निर्बल बने पंथ की धूल,
बना परिस्थिति हम सकते हैं अपनी क्षमता के अनुकूल;
मैं भी उसी अतीत मार्ग पर चलकर जीतूँगा संग्राम,
नहीं पेड़ से मुझे प्रयोजन खाने हैं बस मीठे आम;
यही जीवनी है 'भूधर' की, इस सैनिक की आत्मकथा,
स्वार्थसिद्धि है ध्येय हमारा जैसे भी हो यथा तथा;
यह ही मेरा मूल मंत्र है यह मेरे जीवन का लक्ष,
छत्रपती ! हां ले सकता है यह सैनिक भी क्षत्रप-पक्ष;
यदि त्रिवाच दे, मुझे बिठा दो, जीत, इसी सिंहासन पर,
मेरा स्वप्न करो तुम पूरा, मैं दूं तव अनुशासन कर;

क्षत्रप—मारो हाथ, बचन देता हूं शूरसेन-पति किया तुम्हें,
अब तुम मेरा काम बनाना, जो मांगा सो दिया तुम्हें;

८

सौराष्ट्रमहाक्षत्रप—

विजित हो कितने ही गणतंत्र, गरुडमुद्रित ले ले अधिकार,
परिधि में गुप्तराज्य के समा, प्रथक सत्ताएँ बैठे हार;
नीति यह है मेरे अनुकूल, हुआ इन सब का बल यों क्षीण,
नागराजाओं के भी संघ, इसी जलनिधि में हुए विलीन;
होगया जब समुद्र निर्वाण, गुप्तबल घटने लगा नितांत,
पूर्ण स्वाधीन हुए सामंत, हाथ से लगे निकलने प्रांत;
विलासी रामगुप्त सम्राट, विषय में है अपने लवलीन,
संघटित सेना करता कौन, शक्ति जब हुई राज्य की क्षीण;
परिस्थिति है मेरे उपयुक्त, मिलगया मुझे स्वर्ण संयोग,
समय पा अंग अंग को काट, मिटा दूंगा मैं जड़ से रोग;
सफल अभिशेषण करके अभी, किया है मालवगण का अंत,
जीतना है मुझको तत्काल, नागकुल शूरसेन-सामंत;

सुंदरी विदुषी शोभागार, कुमारी है जिसकी विख्यात,
कामना अपनाने की उसे, उठाये है मन में उत्पात;
कोप से मेरे चाहे मुक्ति, भूप, तो है बस यही उपाय,
रहे होकर मेरा सामंत, भेंट में निज कन्या दे जाय;
सुना है नियत सुता का ब्याह, किया सम्राट गुप्त के साथ,
परिस्थिति हो जावेगी विकट, युगल दल का मिलते ही हाथ;
परस्पर यह विवाह सम्बंध, करेगा प्रबल शक्ति निर्माण,
युगल सागर का तीव्र प्रहार, कौन रोकेगा देकर प्राण;
पूर्व इसके यह घटना घटे, सचिवगण सोचो कोई युक्ति,
हराकर, पाऊं बालारत्न, मिले उस आशंका से मुक्ति;
आक्रमण 'रामगुप्त' पर करूँ, अत: निजकार्य साधना हेतु,
जीत उसका समस्त साम्राज्य, लिये ललना फहराऊँ केतु;
एक था चन्द्रगुप्त ही सुभट, बड़ा नीतिज्ञ, साहसी, वीर,
वही कर सकता था प्रतिरोध, सहज थी उसको टेढी खीर;
देश-निर्वासन उसका हुआ, हो गया वह भी कण्टक दूर,
चढाई दोनों पर कर साथ, करूँगा दोनों का मदचूर;
नागसेनापति 'भूधरसेन', छली कपटी है लोलुप नीच,
दिखाकर चारा उसको फाँस, मिलाऊँगा अपने में खींच;
गया मिल सहज सहज यदि आप, कठिन यह सध जाएगा काम,
नहीं तो वृहद् रूप से मुझे छेड़ना ही होगा संग्राम;
वायु परिवर्त्तन हित सम्राट, ले रहे हैं गिरि पर विश्राम,
अल्प सेना ही होगी संग, समय है साधें अपना काम;
हाथ से निकल न चिड़िया जाय, चलूँ सीधी करने को गोट,
कुमुक संघों की जबतक बने, पूर्व ही करदूँ उसपर चोट।

भूधर—है अवसर अनुकूल बड़ाही, सेना लेकर जाना है,
एक बार अपना कौशल फिर, रण में मुझे दिखाना है;
कूटनीति की विजय हुई तो, फिर मेरी पौबारा है,
बिना रक्त कीं बूँद गिराये, बनता खेल हमारा है;

यदि मैं विजय करा दूँ मिलकर, महाराज का पूर्ण प्रदेश,
तो क्षत्रप ने बचन दिया है, कर देने का मुझे नरेश;
भाग्य पलटते क्या लगता है, आज एक अनुचर केवल,
सारा राज्य हमारा होगा, शीश झुकायेगा जग कल;
सिंहासन पर मुझे देख, यह प्रजा करेगी कुछ खल बल,
उसपर भी मैं जय पाऊंगा दिखलाकर अपना छल बल;
नेताओं को डाल गर्त में, मिट्टी से दूँगा पटवा,
दुष्टों के मुख बंद करूँगा, कंचन-मुद्राएँ चटवा;
सेना अपनी पहले से है, तब भी होगी पा कुछ चाट,
मिला और सामंतों को भी, मैं बन बैठूँगा सम्राट;
हाँ है एक समस्या टेढ़ी, राजकुमारी का अधिकार--
राज्यमात्र के हृदय हृदय पर जमा हुआ है भली प्रकार;
उसको कैसे करूँ निवारण, हत्या होगी भीषण आग,
जनता में जब सुलग जायगी, तब मैं नहीं सकूँगा भाग;
इससे मेरा दृढ़ विचार है, उसे प्रलोभन दे दे कर,
प्रेम दिखा, डरवा धमका कर, किसी भांति से लूंगा वर;
यदि वह कहीं हाथ आजाती तो होती पाँचों घी में,
मैं राजा वह रानी होती, मैल न रह जाता जी में;
पर स्वभाव से वह स्वतंत्र है भावुक, धीर, बड़ी ही वीर,
मेरी रक्तिम आँखें देखें उपजा सकें प्रणय की पीर;
मेरा हृदय शुष्क पाहन है उसपर दूब जमाऊँगा,
दृग-छेनी प्रिय की खा खा कर जीवन स्रोत बहाऊँगा;
ऊँचा नीचा दिखा दिखा कर समझाऊँ बहलाऊँगा,
और नहीं तो किसी युक्ति से अपना उसे बनाऊँगा;
बहुत दूर तक सोच गया मैं सबसे अभी निपटना है,
अब तो बीड़ा उठा लिया है रण में जाकर डटना है;
नींद कहाँ अब इन आँखों में कल सबका निपटारा है,
या सोऊँगा समर सेज पर या यह राज्य हमारा है।

क्षत्रप ने जा शूरसेन पर करदी विकट चढ़ाई,
अभिग्रहण की धार रोकने, नृप ने चमू पठाई;
मगध-सहायक-सैन न आई रहा भरोसा जिसपर,
पड़ा उठाना उन्हें अकेले ही पहाड़ अपने सर;
राजाने अपने ऊपर ले भार नगर रक्षा का,
सैन्य सजाई, सुदृढ़ बनाया सैनिक नाका नाका;
अपने सेनापतिको भेजा संग विपुल सेना दे,
आज्ञा दी सीमा पर जा अरियों से लोहा ले;
हुआ प्रसन्न बहुत सेनापति अवसर पा मनमाना,
उसका ही था काम, चाल से अरिको इधर बुलाना;
अतः वृहद् सेना ले सँग में डाल मार्ग में डेरा,
लेता रहा विराम, अंततः रिपुदल ने जब घेरा;
स्वाँग रचा कर कुछ विरोध का, बढ़ने दी शक सेना,
स्वयं डुबाने पर नाविक था, तरनी कैसा खेना;
झंडा झुकवा अस्त्र रखाए निज दल के पीछे पड़,
स्वामिभक्त सेना क्या करती, विवश नहीं पाई लड़;
अपनी मृत-मर्यादा का कर जाति-रक्तसे तर्पण,
दाँत दिखा शक संग हो लिया, करके आत्मसमर्पण;
राजनगर के मुख्य कोट की ओर काटता कावा,
जाकर निर्विरोध क्षत्रप ने दिया बोल ही धावा;
हुआ तुमुल संग्राम कई दिन बही नदी शोणित की,
युगल पक्ष के नामी योधा जूझ गये अगणित ही;
पीछे हटता गया निरंतर अरि खा मार करारी,
नहीं रोक पाया धक्के को लगा शक्तियाँ सारी;
भागे सुभट, पैर सर पर रख, मान न वचन किसीका,
क्षत्रप को भी याद आगया रण में दूध छटी का;
देख चाल पाँसे की उलटी, और रंग लख फीका,
राजतिलक तो नहीं, देख, लगते कलंक का टीका,
भाग्य परीक्षा करने भूधर अंत जान पर खेला,
पा सुयोग राजा के दल में घुस ही गया अकेला;

छिपकर पीछे से आकरके, घातक एक कटारी—
लड़ते भूपति की छाती में ऐसी गहरी मारी;
लोट गए भूपति पृथ्वी पर पुन: नहीं उठ पाये,
पाई विमल वीर गति, सबने आँसू चार बहाये;
लड़ती रही प्राण दे सेना रण-कौशल दिखलाती,
खेत रही, पर रही अंत तक अपना धर्म निभाती;
घोर हताहत, धन जन क्षति उपरांत पराजय से बच,
क्षत्रप ने भूधर द्वारा षडयंत्र कुटिल चालें रच;
रखली अपनी नाक, प्रांत में निज अधिकार जमाकर,
किया पुरस्कृत 'भूधर' को भौगिक सामंत बनाकर;

क्षत्रप रुद्रसिंह—

महँगी पड़ी जीत 'मधुरा' की, निर्विरोध ही गिरि पर चढ़,
फँसा लिया है राम गुप्त को घेर लिया है उसका गढ़;
मगध देश की यात्रा में तो मुझको होता कष्ट बड़ा,
निकट शैल पर रामगुप्त है, सुनते ही मैं टूट पड़ा;
थोड़ी सेना जो बाहर थी बीन बीन कर उसको मार,
महाराज को घेर लिया है गढ़ में मैंने भले प्रकार;
गुप्तवंश के बने हुए हैं जो विजयी भारत सम्राट,
मेरा केवल लक्ष यही है धूल मिलाना उनका ठाट;
देकर उनको निज कुमारियाँ, विजित बने कितने सामंत,
इसी चक्रवर्त्ती पदवी का कर देना है मुझको अंत;
कन्या नहीं 'राम' के कोई, अभी मिली है बाम ललाम,
फैल रहा जिस सुमन अलौकिक का जग में परिमल अभिराम;
भेंट वही लेनी है मुझको सीधे टेढ़े पाना है,
अपनी धाक जमाने को सम्राज्ञी को अपनाना है;
यदि सहायता मिली न उसको यदि घट गया कोट में खाद्य,
होना होगा रामगुप्त को आत्मसमर्पण पर तब बाध्य;
संधि अत: चाहे करना तो ध्रुवदेवी देनी होगी,
राज्य न लूँ, पर शक-अधीनता मान उसे लेनी होगी;

यदि उसने हठ किया, मार कर कर दूँगा मैं बारहबाट,
सारे भारत का निष्कंटक बन जाऊँगा मैं सम्राट;
अभी नहीं सेना है पूरी थके हुए हैं सैनिक गण,
अतः संधि की चर्चा करके चुपके से लेना है मन;
सम्राज्ञी को दे यदि वह मैत्री का हाथ बढ़ाता है,
तब तो अपने मगध देश को जीवित वह जा पाता है;
और नहीं तो इस घेरे से नहीं निकल वह पायेगा,
पंजे में आकर अब मेरे कैसे वह बच जायेगा।

१

रामगुप्त—भव के तांडव की लय पर होजाती लय विधिसृष्टि अखिल,
प्रकृति पुरुष से, शक्ति ब्रह्म से, माया हर से, जाती मिल;
बन अनादि-स्वर पर, नभसरि के फिर अनंत बुदबुदे-पतंग,
थिरक थिरक कर उपजाते हैं, शून्य हृदय में सरस तरङ्ग;
जीवन अणु अणु में नचता है होता माया का अभिनय,
सुमन रास करता मधुकर सँग दो हो एक अङ्क में लय;
घन-सौरभ-पल्लव में छिप सुर-चाप चढाता है जब मार,
चपला-सुंदरियों संग देता है जब छेड़ रश्मि के तार;
सप्त-स्वरों का रूप खड़ा कर देता है नभ बरसा रङ्ग,
तब मानस में किस मानव के उठती नहीं अनंग-तरङ्ग;
उसी रूप से, उसी रङ्ग से, लंक बंक सुशरासन कर,
स्वर से चपले! रस बरसाकर, दृग से छोड़ भाव के शर;
एक नया जग ही उपजा दे, रच दे प्रेम भरा संसार,
जिसमें केवल हम तुम होवें, रस में डूबें करके प्यार;

सारंगी के स्वर में लय हो, हो मृदंग-सम महा प्रलय,
मिल जावे यह बूँद धार में, हो निर्वाण, न पुनः उदय;

राज काज से मन ऊबा है इधर लड़ाई उधर कलह,
है अशांति, विद्रोह कहीं पर, पवन विरुद्ध रहा है बह;
सचिव सभासद राज्य संभालें, करें प्रबंध समय देकर,
देवी वंशी बजा रही है झंझट थोप हमारे सर;
नहीं पालने का यह पचड़ा, मुझको इतना कहां समय,
किन किन कामों में उलझाऊँ अपना केवल एक हृदय;
भाग मगध से हिमगिरि के अंचल में इससे लिया विराम,
राजकाज का नहीं यहाँ पर हम सुनना चाहेंगे नाम;
सौंप मंत्रिमंडल महिषा को, सहज राज्य संचालन भार,
ले अवकाश हिमाचल पर, अब करता हूं आनंद विहार;
'कार्तिकेय' यह नगर मनोरम सुंदर सुदृढ़ यहाँ का कोट;
क्रीडाक्षेत्र यहीं अब मेरा, कुंजों में गुल्मों की ओट;

हरियाली से भरी हुई है घाटी की गहराई,
जिसमें खग-कूजन की धारा फिरती है लहराई;
शिलाखंड में मूर्ति बनाती, धार वारि-छेनी से,
मग में रुक कुछ कह लेती है, भोली मृगनयनी से;
गिरती पड़ती चक्कर खाती, नाच भँवर में, गाती,
सुमन राशि अंचल में भरती, मदमाती, इठलाती;
कानन-श्री छबि, सलिल-सूत्र में, चुन चुन, विहँस पिरोती,
परिरंभन कर चुम्बन देती न्योछावर हँस होती,
गूंथ गूंथ, सरि ने शृंगों को बनमाला पहनाई,
सुर-वधुएँ देखा करती हैं यह शोभा ललचाई;

लिपटे हैं आकाश अंक में शृंग श्रेणियों के शिशुगण,
मचल मचल, उन्नत पयोधरों में, लुक छिप, कर ताप शमन;
संध्या से, रवि-कंदुक, क्रीड़ा में, जो, छीन छिपाते हैं,
चमक चमक कर, रँग में भर भर, अद्भुत रूप दिखाते हैं;

१०

सत्रप—बेटी ! तू चिंतित सी क्यों है शैलखंड यह महा अनूप,
प्रकृति-नटी इस रङ्ग-मंच पर भरती रहती नाना रूप;
कभी लता में लहराती है कभी मुकुल में मुसकाती,
कभी विहग बन उड़ती फिरती गीत मनोहर है गाती;
धनु में डाल, जलद का झूला, किरण-डोर धर, पेंग बढ़ा,
झूला करती है उमंग में रङ्ग भरी, वारुणी चढा;
नयनों के तारों में अपने अखिल सृष्टि की झाँकी भर,
खिल जाओ अलियो कलियों में सुरत नही माता की कर;
तुमको छोड़ सिधार गई वह इसमें नहीं किसी का बस,
याद मुझे भी दुखी बनाती आँख तरसती बरस बरस;
बीती बात भुलाकर, फिर हम सबको मन बहलाना है,
छोड़ शोक, आनंद मनाओ, शांति इसी से पाना है;
वर्षगाँठ तेरी कल होगी उत्सव विहँस मनाओ तुम,
जो चाहो सो करो खोल मन मणि दीनार लुटाओ तुम;

उस दिन तुमने दुख माना था कभी नहीं अब रोकूँगा,
जिससे चाहो मिलो मिलाओ कभी नहीं अब टोकूँगा;

कुमारी वीणा—

इस सैन्य-शिविर की सीमा में इन गुप्तचरों का घुस आना,
कुछ मीठी मीठी बातों से प्रहरीगण को आ फुसलाना;
बस प्राणदंड ही गुप्तचरों का, दंड, बताता है विधान,
निर्दोष सिद्ध कर दें यदि ये तब सम्भव है बच सकें प्राण;

वीरसेन—कविजी कुछ कँपते ही बोले, मैं तो परदेसी हूँ देवी,

सेना से मुझको अर्थ नहीं मैं तो वाणी का हूँ सेवी;
हो चुकी मरम्मत थी घर पर, सर मुड़ते ही ओले बरसे,
तज आग, कड़ाही में कूदा, किस कुघड़ी में निकला घरसे;
सौगंध राम की खाता हूँ मैं नहीं गुप्तचर, हूँ चारण,
घर, मना युवक को, ले जाना, था मेरे आने का कारण;
रमणी से भागे फिरते ये, सौंदर्य प्रेम से खींझे हैं,
बन बन फिरते प्रिय से अनबन कर प्रकृति नदी पर रीझे हैं;
आये हैं मिलता राज्य छोड़ इक प्रेम-छलकता हृदय तोड़;
मैं दो प्रेमी के झगड़े में चल पड़ा मिलाने जोड़ तोड़,
घर से चलते ही छींक हुई, पत्नी ने मुझको कोसा था;
बस आज लौट कर प्रिय से मिल जाने का मुझे भरोसा था,
पर कहें मूर्खता क्या अपनी चल पड़े इधर सुनने गाना,
था पता नहीं इन रागों पर दो मृग को होगा फँस जाना;
निर्दोष किन्तु मैं हूँ देवी निज पत्नी का पति एक मात्र,
पत पत्नी की रखलो सुन्दरि, हे चन्द्रवदनि ! हे कमलगात्र;
मैं उस बिन किसी भांति जी दूँ, वह तो वियोग में देगी चल,
इक रमणी और प्राण देगी इस प्राण दड का होगा फल;
मैं ब्याहा हूँ दो हत्याओं का पाप तुम्हें लेना होगा,
प्रभु के संमुख निर्दोषी के वध का उत्तर देना होगा;

वीणा—यह किस रमणी का है रहस्य, वह कौन सुकेशी बाला है,
जिसने निर्मोही युवक वीर को अपना मन दे डाला है;
कुछ बोलो सुंदर युवक ! तुम्हें भी जो कुछ कहना है बोलो,
यह चारण महाराज क्या कहते हैं इसका रहस्य खोलो;
तुम मंद मंद मुसकाते हो जीवन का तुमको छोह नहीं,
तुम प्रणय पंथ को छोड़ चले माया का कुछ भी मोह नहीं;
संदेह दूर सब हो जाये यदि सत्य कथा कह दो सारी,
कैसे चल पड़े सुमन तजकर लखने नित नूतन फुलवारी;

चन्दगुप्त—पर्यटन हेतु मैं निकला था मानव जीवन लखने जग में,
हम भटक इधर भी आ निकले, पड़ गया शिविर मेरे मग में;
है भेद भाव सब छूट गया, अब प्रगट गुप्त सब एक मुझे,
क्यों बनूं किसी का दास, 'सदा स्वाधीन रहूँ' की टेक मुझे;
मुझको निज पथ पर जाने दो कुछ भूल हुई तो क्षमा करो,
तुम इस गिरिवर के अंचल में निर्विघ्न रमा बन रमा करो;
यदि प्राणदंड देना ही कहती हो सैनिक-विधान-धारा,
तो शीघ्र शीश मेरा उतार दे दो झंझट से छुटकारा;
चिंता अपनी है मुझे नहीं, इस साथी को निर्दोष जान,
मैं विनय करूँगा हे देवी ! दो छोड़ इसे, दे प्राणदान;
वह मेरे कारण फंसता है, मैं ही उसको ले आया हूँ,
भाभी को क्या उत्तर दूँगा मैं यही सोच घबड़ाया हूँ;

वीणा—सैनिक सीमा के भीतर जो घुसने की भूल दिखाता है,
उसका है केवल एक दंड, वह मारा तत्क्षण जाता है;
पर घबड़ाओ मत, मैं विचार पूरा करके, दूँगी निर्णय,
तुम क्वांरे हो या ब्याहे हो, दो उत्तर जो पूछूँ निर्भय;

वीरसेन—ये क्वांरे हैं मैं ब्याहा हूँ, कुछ कोमलता दिखलाओ तो,
हम दोनो हैं निर्दोष, मुक्तकर, न्याय तुला बन जाओ तो;
फिर भूल न इधर धरूँगा पग मैं सीधा घर को जाऊँगा,
मैं कान पकड़ता हूँ अपना यह भूल न फिर दुहराऊँगा;

वीणा—अच्छा अब प्राण नहीं लूँगी जीवित बन बंदी बने रहो,
आसक्त विरक्त बने तिय से दोनों प्रतिद्वंद्वी बने रहो;

वीरसेन—इससे है अच्छा प्राण दंड ऐसा जीना क्या मरमर कर,
उपकार तुम्हारा मानूँगा हे देवी ले उतार अब सर;

*

वीणा—अच्छा मुक्त किया दोनों को अतिथि हमारे बनिए आज,
मेरा जन्मदिवस उत्सव है यह सब है उसका ही साज;
नाच रङ्ग आनंद हो रहा मची हुई है उत्सव धूम,
बही नदी है सरस सुरा की उसमें डूब रहे सब झूम;
दोनों का स्वागत मैं करती मेरे शिविर पधारें आप,
देकर योग महान् कार्य में सारी बात सँवारें आप;
प्रिय पाहुने! क्षमा कर कहिये, भूषित करते कौन प्रदेश?
आकर्षक इस रूपरङ्ग पर छबि देता है अद्भुत वेश;
है ललाट उन्नत हिमगिरि सा केशकलाप कजलि-कानन,
भल्ल लिये आजानु बाहु में किधर चले थे दिव्यानन;

चन्द्र—सम्बोधन क्या किया मुझे ही! कहो देवि क्या है आदेश,
क्षमा कीजिये, यदि अनजाने वर्जित पथ में किया प्रवेश;
यों ही भूल, भटकता फिरता मैं आ निकला था इस ओर,
कानन के इस शिविर-व्यूह में घुस आया सुन उत्सव-रोर;
परिचय मेरा व्यर्थ पूछना मैं अब एक भिखारी हूँ,
हम पर इतनी दया दिखाई इसका अति आभारी हूँ;

वीणा—हाँ हे युवक मुकुटमणि सुंदर! यदि उत्सव लखने की साध,
इधर खींच लाई थी तुमको किया नहीं कोई अपराध;
अच्छा हुआ मुझे दर्शन दे इसी बहाने किया कृतार्थ,
तज संकोच यहाँ अब रहिये सेवा करूँ छोड़ सब स्वार्थ;

वीरसेन—धन्यवाद देवी है तुमको मुक्त किया जो न्यायी बन,
खिली रहो तुम सदा सुमन सी फूला रहे सदा उपवन;
किया बड़ा उपकार बचाकर मम पत्नी का परम सुहाग,
हल्दी लगे शीघ्र हाथों में भरे मोतियों से तव माँग;
रुकने का कुछ काम न भाई! चलो तुरत लें घर की राह,
इस विपत्ति से प्राण बचे हैं भोजन की अब छोड़ो चाह;

आगे पैर नहीं क्यों उठते किस माया पर अटके हो,
आपत्तियाँ मोल लेनी हैं, जो ठहरे बे खटके हो;
रुकना हो तो तुम रुक जाओ मैं आपदा न लूँगा मोल,
मैं चलता हूँ, रङ्गमहल में रँगरलियाँ करले जी खोल;

वीणा—जाने की तुम बात न छेड़ो कविजी अधिक न बनो अधीर,
हारे थके चले आते हो कुछ विश्राम करो युग वीर;
आनन के रजपूर्ण-जलज पर सजल मोतियों का यह खेत,
दीर्घ-मार्ग-विश्रान्त-देह को, रमने का करता संकेत;
किया कृतार्थ मुझे दर्शन दे, दिखलाया इतना अनुराग,
मेरे परिजन संग पाहुने! तुम भी लो उत्सव में भाग;

चन्द्रगुप्त—पर अनुनय फिर भी मेरा है इस पक्षी को जाने दो,
दिन ढलने पर तरु छाया में दम लेकर फल खाने दो;

वीणा—विनय और संकोच व्यर्थ है आज छोड़िये शिष्टाचार,
आज सुरा की नदी बहाकर डूब, भुला दें सब संसार;
श्रम से भारी शिथिल देह है, विजन मार्ग में, काली रात,
पाहुन कोई इस अवसर पर कहता है जाने की बात!
पावन यह थल किया भाग्य से ठहरो वीर जोड़ती हाथ,
इस उत्सव को सफल बनाने में प्रियवर दो तुम भी साथ;
अच्छा नाटक नहीं मिला है अभिनय भी तो होना है,
कविजी स्वयं यहाँ आ पहुँचे तब क्या इसका रोना है;
चारणजी नाटक बतलाते तो अभिनय भी हो जाता,
मेरे जीवन की माला में यह भी पुष्प पिरो जाता;

चन्द्र—अच्छा शिरोधार्य आज्ञा है उत्सव में मैं दूँगा योग,
जाल तोड़ कर मैं भागा था फिर फँस गया, यही संयोग!
कवि जी विकल न हो वियोग में, नाटक खेल, चले जाना,
नाट्यकथानक सुंदर सा हो, अभिनय कर है दिखलाना;

वीरसेन—नाटक और बताऊँ क्या, यह अभिनय क्या है कम सुंदर,
इसी कथानक पर इक नाटक रच डालूँगा पा अवसर।

११

ध्रुवदेवी—इसे पटक दो राग बेसुरा वीन लगी यह उपजाने,
मनतंत्री से मिला नहीं 'सुर' 'बोल' मधुर, जड़ क्या जाने;
मिलता नहीं ताल गानों का, झूठे पड़े वाद्य के तार,
गला नहीं है, जमे रंग क्या ? नहीं हृदय में सरस उभार;
हृदय भरा है, उमड़ रहे दृग, जाने कौन रुलाता है,
मीठी पीर उठा करती है, हृदय बैठता जाता है;
रह रह हिचकी क्यों आती है, कौन छेड़ता मानस-तार,
याद करेगा अब क्या कोई, सब मेरा उजाड़ संसार;
सौम्य मूर्ति उस वीर आर्य की मन से नहीं उतरती है,
उस बिन सूना जग लगता है आँख याद में भरती है;
था कठोर व्यवहार हमारा हमसे हुआ बड़ा अन्याय,
पर कृत्रिम था रोष हमारा अपनाने के लिए उपाय;
तीर लक्ष से चूक गया चिड़िया पंजे से गई निकल,
अब मोहनी मूर्ति लखने को तरस रही हूं बनी विकल;

जब से गये नहीं सुध पाई, छोड़ी नहीं उन्होंने टेक,
धावन कितने भेज चुकी हूँ लौटा अब तक हाय न एक;
क्या सारे मर गये राह में, कहीं धरा में समा गये,
कुलिश गिरा या साँप छू गया, या सब धूनी रमा गये;
आवे कोई सौंटों ही से उसकी खाल उड़ाऊँगी,
किसी काम पर सो जाने की बान तुरंत छुड़ाऊँगी;
समाचार जो नहीं ला सका कुत्तों से नुचवा दूँगी,
समय नष्ट करने का उनको पूरा स्वाद चखा दूँगी;
अरुन्धती ! क्या टपक पड़ी तू, हाथ जोड़ कहती है क्या?
बोल बोल क्यों हकलाती है घटना कुछ महती है क्या?
मुँह ही में क्या बोल रही है सर पर कौन चढा है भूत,
पूजा कर उतार देती हूं, क्या कहती है लौटा दूत;
आये हैं कुमार भी क्या ? तो चल, उनका पग धो पी लूँ;
और अपर कोई आया हो तो अपनी आँखें सी लूँ;
राजदूत नयनिपुण स्यात् हो, खावे महाराज का सर,
मुझे किसी भी और व्यक्ति से नहीं वार्ता का अवसर;
यदि कोई हो धावन मेरा लाया हो प्रिय का संदेस,
तो जा अभी उसे तुरंत ला करूँ पुरस्कृत तुझे विशेष;
नहीं बोलती, नहीं डोलती, लख मेरी नंगी तलवार,
'क्षमा कीजिये, चारण आये, दर्शन हित बैठे हैं द्वार';
सच कह सच, कवि जी आये हैं, हैं प्रसन्न या बने उदास?
परिचारिका ! दौड़ कर उनको, शीघ्र बुला ला मेरे पास;
नमस्कार हे दूत महोदय ! कहाँ आप विचरे चिर काल,
शोध लगा पाये यदि हो तो समाचार कह मेटो साल;

वीरसेन—महादेवि ! अङ्गनाशिरोमणि ! सेवक का शत बार प्रणाम,
नमस्कार है कोटिकोटि हे दिव्यानना ! अलौकिक बाम;
छवि-सागर की अनुपम कमला ! बीणा की आकर्षक तान,
यौवन की मदभरी तरंगिनि, ऊषा की मोहक मुसकान;
मधुऋतु की श्री, दृग की पुतली, सुखद दृश्य की हरियाली;
कसक प्रणय की मसक हृदय की, यौवन किशलय की लाली;

ध्रुवदेवी—चुप, चुप, चुप, मैं नहीं सुनूँगी व्यर्थ व्यंजना की भरमार,
भेंट हुई या नहीं, कहो 'हां', 'ना', में समाचार का सार;

वीरसेन—अच्छा, कथा सुनाता हूँ अब बहुत राह में फाँकी धूल,
वन बीहड़, गिरि अंचल गह्वर, नगर, ग्राम, सरिता, उपकूल;
सभी छानता फिरा खोज में मारा फिरा देश परदेश,
नहीं शब्द मिलते वर्णन को भोगे मैंने जो जो क्लेश;
पैर हुआ है छलनी मेरा काँटे निकले अभी नहीं,
कभी पड़ रहा पेड़ छाँह में, पड़ा भूमि पर कभी कहीं;
पता लगाता ठोकर खाता, गिरता-पड़ता भटक भटक,
कभी पहाड़ों से टकराता मरुस्थलों में अटक अटक;
भालू, बाघ, तेंदुआ, अजगर, हाथी बनमानुष से बच,
क्यों क्रोधित हो देख रही हो, झूठ नहीं, कहता हूँ सच;
हो विश्वास नहीं तो लखिये यहाँ लगा बराह का दाँत,
नहीं ढाल से पेट बचाता तो निकाल ही लेता आँत;
तब मेरे अनुपम शरीरका अंत वहीं पर हो जाता,
मेरा जीवन-स्रोत उसी मरुभूमि-रेत में खो जाता;
यह कंचन-काया मेरी उस समर-सेज पर सो जाती,
गृद्ध शृगालों के भोजन की सामग्री वह हो जाती;
कौन बताता समाचार जग से मेरे उठ जाने का,
इस दुखमय संसृति को तजकर अमरलोक अपनाने का;
जगन्नियन्ता परम पिता परमेश्वर को मैं बारम्बार,
शीश नवाता हूँ, जिसने करुणा कर अपनी बाँह पसार;
कालगाल से बचा लिया है, नया जन्म ही पाया है,
किसी भांति से मरते जीते दास तुम्हारा आया है;

ध्रुवदेवी—मूर्ख! वितंडावाद बढ़ाता, गुत्थी उलझाता जाता,
एक शब्द में 'भेंट हुई या नहीं' नहीं कहने आता;
द्रुपदसुता का चीर बनाया बातों के लच्छे का तार,
शिष्टाचार विनय का धीरज भी अब मान गया है हार;

सुर भर, रव करने में काटे, विहग 'बसंता'[1] के भी कान,
चेतावनी दिये देती हूँ, फिर है दंड और अपमान,
वीरसेन—अच्छा मेरी राम कहानी का बस यही समझिये अंत,
'शकुन्तला के सँग कानन में हैं विहार करते दुष्यंत';
यही सार है समाचार का, जै हो खिला रहे दरबार!
अपने राम विदा होते हैं, तन पर बचा शीश का भार;
ध्रुवदेवी—बरसों में बतलाया कविजी उनके दर्शन का पाना,
अनुनय है अब रुक जाओ, कुछ व्यर्थ बुरा तुमने माना;
अब मैं नहीं तुम्हें रोकूँगी अपने मन की कहे चलो,
जैसी उठे तरंग हृदय में वैसे ही तुम बहे चलो;
पर मेरी उत्सुकता का भी तनिक कृपा कर रखना ध्यान,
कूट सुना उलझन उपजाकर, चक्कर में मत डालो प्राण;
मेरे मन में क्रांति उठी है कह डालो सम्पूर्ण वृतांत,
बैठ जाइये इस आसन पर कवि चूड़ामणि होकर शांत;
पता चल रहा है, उस प्रिय से मिल ही कर तुम आते हो,
हैं प्रसन्न तो, शकुन्तला की कथा कौन सी गाते हो?
वीरसेन—सुनिये देवी! चन्द्रगुप्त को इक शकबाला नाच नचा,
बस कर चुकी, कन्हैया ने है राधे के संग रास रचा;
सदा दून की ही लेते थे छाँटा करते थे जो ज्ञान,
प्रेम सुरसरी अवगाहन था जिस पांडित को पाप महान;
एक विजाती ललना से वह पढ़ हैं रहे प्रणयका पाठ,
उनकी दशा देखकर ऐसी मुझको मार गया है काठ;
ध्रुवदेवी—किसने चारा फेंक उन्हे अपनी बंसी में फाँसा है?
किसने उस भोले सैनिक को दिया लुभाकर झाँसा है?
परकाया है मीन किसीने, मुँह मारा है चारा लख,
झख मारेगा खेलेगा इंगित पर मेरे भी वह झख;
कौन सुंदरी पर रीझे हैं भली भांति यदि हो देखा,
अंगों का अनुपात बताओ चित्रित करो रूप रेखा;

[1] पक्षी विशेष

कौन वर्ण है? दृग कैसे हैं? कैसा मुख? कैसे हैं केश?
कितनी वयस? ठवन है कैसी? मुद्रा क्या? कैसा है वेश?
उसमें होगी कुछ विशेषता, कोई अनुपम आकर्षण,
जिसका लोहा मान गया है एक हठी सैनिक का मन;

वीरसेन—मेरे तो कुछ समझ न आया, सुंदरता की क्या है माप,
हृष्ट पुष्ट सुंदर होना ही बन है गया मुझे अभिशाप;
मेरा अनुपम रूप—इसे लख 'चपला' की चढ़ती भौं नाक,
इस मृदंग पर ताल तोड़ती, मैं मुख लखता खड़ा अवाक;
पर शकबाला का निज मति से सच्चा चित्र बनाऊँगा,
अंकन सरल नहीं है फिर भी झाँकी कुछ दिखलाऊँगा;
संध्या की लाली में धुलकर रञ्जित होता ज्यों हिमकूट,
गोरे तन से रक्त लालिमा वैसी ही आई है फूट;
भूरी भूरी कंजी आँखें, कज्जल हीन झुकीं मदभार,
उन्हें देख निज मारजार की याद मुझे आई सौ बार;
मेरे भाला सी लम्बी है पहने है आभूषण-जाल,
काले नहीं केश हैं उसके, पिंगवर्ण हैं उसके बाल;
है चंचला, चपलता उसके अंग अंग बतलाते हैं,
उष्ट्रगामिनी के प्रति अवयव चलने में बल खाते हैं;
पूर्ण यौवना शकबाला क्षत्रप की राजकुमारी है,
भोला चन्द्रगुप्त उस देवी ही का बना पुजारी है;

ध्रुवदेवी—बस रहने दो, समझ गई सब, इस स्वरूप पर यों गिरना,
उनका मन यदि फिरा नहीं, फिर तो समझो माथा फिरना;
कसक प्रेम की उठी हृदय में, पीर पराई जानें तो,
योंही पत्थर चुनते चुनते पारस को पहचानें तो;
उन्हीं खिलौनों से क्रीड़ा को छोड़ चले हैं अपना देस,
आये नहीं! तुम्हें लौटाया बिना दिये ही कुछ संदेस;

वीरसेन—हाँ! तुम से बस क्षमा मांगते हुए सुनाकर विनय विशेष,
इक क्षण हो निमग्न चिंता में, चुप रहकर बस एक निमेष;
कहने चले और कुछ ज्योंही, ललना वह, त्योंही कर थाम,
[illegible]आगार दिखा कर बोली, चलिये अब कीजे विश्राम;

मदमाती के सँग चुपके से, साँस खींच कर हुए विदा,
अपना सा मुँह ले मैं लौटा आया हूँ सहता विपदा;

ध्रुवदेवी—अच्छा मैं उसको देखूँगी, यहाँ शकों का है क्या काम,
जीती रही, मिटा छोड़ूँगी, पूर्ण देश से इनका नाम;

वीरसेन—जो आज्ञा हो, पर मेरी सम्मति में ऐसा मिले निदेश,
प्राणवल्लभा और महादेवी को छोड़ नारियाँ शेष;
सब की सब इक बड़े गर्त में ले जाकर गड़वा दी जायँ,
अथवा हाथी के पैरों में बाँध बाँध दबवा दी जाँय;
एक बार कंटक हट जाता फिर झगड़ा मिट जाता सब,
सोचा होता यदि पहले ही तो यह समय न आता अब;
कम से कम शकबालाएँ तो कर दी जायँ देश बाहर,
रहे न बाँस, न बजे बाँसुरी नित का मिट जाये यह डर;
अड़चन इसमें किंतु एक है, भारत में हैं राज विभिन्न,
विलग विलग होने से सबकी हो हैं रहीं शक्तियाँ खिन्न;
पता नहीं वे भी सब के सब यह आज्ञा प्रतिपालेंगे,
हम से मिल भारत के बाहर यह शक जाति निकालेंगे;

ध्रुवदेवी—जीवन की यह ही आकाँक्षा मुझे किये है महा विकल,
एक छत्र छाया में होता मेरा प्यारा देश सबल;
खंड खंड साम्राज्य न होता, नहीं विभाजित होता देश,
इस अखंड भारत पर करता शासन मेरा गुप्त नरेश;
तब तो भारत के आयुध का छा जाता जग पर आतंक,
थर थर विश्व काँप उठता यदि हो जाता भारत भ्रूबंक;
करते खड्ग छाँह में निर्भय हम वाणिज्य और व्यवसाय,
फिर तो हम भी कर दिखलाते प्रजा हितों के विपुल उपाय;
ललित कला वर लता पनपती, भू, होती सोने की खान,
क्रयविक्रय का सागर मथ कर लक्ष्मी ले आते जलयान;
नौकाओं का सेतु बाँध कर जल थल सभी मिला देते,
सागर के द्वीपों को, अपनी सत्ता जमा, खिला देते;
देशद्रोहियों का, अरियों का देती कुचल शक्ति से सर,
शांतिपताका फिर फहराती पूर्ण देश में फहर फहर;

ऐसा कौन शक्तिशाली है जो भारत को कर के एक,
एकछत्र भारत-पति बन कर रख लेता जो मेरी टेक;
चन्द्रगुप्त यह कर सकता था, उसमें ही था जीवट बल,
इसी हेतु उसको अपनाने हित थी मैं इतनी विह्वल;
पर वह पहुँच न पाया जड़ तक आँक न पाया मेरा मन,
सारे भारत की रानी बन, बनी रहूँगी अब निर्धन;
वह विरक्त हो भाग गया है, छोड़ देश को संकट में,
अब किससे सहायता माँगू पड़ी बड़े ही झंझट में;
महाराज से करूँ निवेदन देखें साहस करते हैं,
महायज्ञ पूरा करने को देखें हामी भरते हैं;
दलदल से विलासिता के देखें वे आते हैं बाहर,
भारत को स्वतंत्र करने को, कटि कस बनते हैं नाहर;
मेरे सँग रण में चलने को, देखें होते हैं तत्पर,
होने को बलिदान देश पर वह सहर्ष 'हाँ' देते कर,
तो मैं दिखा विश्व को देती जलनिधि-सीमित सारा देश,
देती बाँध एक शृंखल में रामगुप्त को बना सुरेश;
चंडी उनमें साहस देती, उनके कर में आता बल,
तो फिर एक बार भारत में देती मचा सफल हलचल;
देखें चलें प्यार से पूछें अपना नाम हँसाते हैं,
अथवा भारत की मर्यादा अपने हाथ बचाते हैं;

*

ध्रुवदेवी—विनयसूर! क्या 'कार्तिकेयपुर' से है हुआ दूत आगम?
'घिर हैं गये शैल पर भूपति' यह सब क्या सुनते हैं हम;
बज्रपात होगया अभी मैं सोच रही थी क्या बातें,
दूत कहो पूरा विवरण तुम किसकी हैं यह सब घातें;

दूत—शकसेना कुछ घेर पड़ी है शैल कोट के इधर उधर,
बाहर की सहायता जिसमें पहुँच नहीं पावे भीतर;
विकट नियंत्रण कर क्षत्रप ने निकट शिवर में बास लिया,
साँस लिया है आकर रण से, समझ भूपको फाँस लिया;

ध्रुवदेवी—दुखदायी यह समाचार है बड़ी अमंगलकर घटना,
रण प्रचार वह स्वयं भिड़ा है तब कैसा पीछे हटना;
सचिव 'शिखरस्वामी' मैं तुमको सौंप यहाँ का सारा भार,
जा हूँ रही बचाने लड़कर जीवन का उजड़ा संसार;
अक्षौहिणी 'अम्रकार्दव' ले सीमापर नित रहे सतर्क,
क्षत सेना की पूर्ति करेंगे समय पड़े पर कर सम्पर्क;
चल दे संग युगल अनीकनी, पाँच वाहिनी, पृतना चार,
चमू एक सब अस्त्र शस्त्र से सज्जित हो कर भली प्रकार;
जा उद्धार हमें करना है घिरा हुआ भारत सम्राट,
मिला चन्द्र को, डग-मग-होती-नाव लगानी है यह घाट;
सर्वाभिसार भली विधि करके अभिषेणन का कर संभार,
वर्म, सारसन, शिरस्त्राण से हो आमुक्त पदाति सवार;
स्वयं सैन्य संचालन करके अभिक्रम अरि पर करना है,
अब तुरंत ही चल देना है पैर न पीछे धरना है;
काट काट कर इक इक शक को मनकी तपन बुझाऊँगी,
कुछ सूझी हो महाराज को तो उनको समझाऊँगी;
एक बार फिर चढ़ कर लड़कर जीत शकों का राज्य, नगर,
बाह्लीकवालों को कर दें भारतसीमा के बाहर;
वीरसेन तुम संग चलोगे मंत्रीगण, देखेंगे काम,
महाराज की दुर्बलता का महा भयंकर है परिणाम;
चन्द्रगुप्त, हा! नहीं इस समय, रिपुको वही समझ लेता,
मन मेरा इस समय भटकता फिरता है चक्कर देता;
विकट परिस्थिति! कठिन समय है, डूबा भाग्य हमारा है,
जलनिधि में गोता खाती हूँ, भगवन् कहाँ किनारा है?

*

१२

ध्रुवदेवी—उलकाएँ सब तुरत बुझा दो अरिगण कहीं न पावें टोह,
शैल शिखर ऊपर चढ़ना है पत्थर पकड़ पकड़ ज्यों गोह[1];
घाटी में क्षत्रप का डेरा, ऊपर सेना घेरे कोट,
पथ को छोड़, चढ़े पीछे से, करें अचानक उनपर चोट;
यह चट्टान खड़ी है फिर भी हमको मार्ग बनाना है,
मग में सेना पड़ी हुई है छिप छिप कर चढ़ जाना है;
शत्रुसैन्य में अग्नि जल रही, है आलोकित बैरीदल,
हमें अंधेरे में चलना है, चुपके से हाथों के बल;
पाँच सहस्र विपक्षी होंगे ध्वजिनी बीस सहस्र चले,
शेष सैन्य, गज, रथ, हय, पैदल, छिपी बनों में रहे तले;

मैं सबसे आगे बढ़ती हूँ घासों के जूटों को थाम,
उभरे शिलाखंड धर धर कर ऊपर चढ़ना बिना बिराम;

१—जन्तु विशेष

एक पहर बस रात और है भोर न हो बढ़ते जाओ,
सँभल सँभल के चढ़ो, गिरो मत, चुपके से चढ़ते जाओ;
चढ़ते जाओ बढ़ते जाओ योंही चढ़ते बढ़े चलो,
मार लिया है वह चोटी है पैर जमाये चढ़े चलो;
लो ऊपर सब पहुँच गये अब, दो दल में विभक्त होकर,
शकसेना वह लख पड़ती है उसको चल कर दें ठोकर;
देवदारु के वृक्ष यहाँ हैं इसी ओट में हों एकत्र,
निद्रा के गोते में झुकझुक गिरते जाते वे नक्षत्र—
क्षितिज अंक में सोने को व्याकुल हैं, अब है समय नहीं,
इससे पहले ही, ऊषा की लाली का हो उदय कहीं;
गढ़ में हमें पहुँच जाना है, क्षत्रप करे नहीं कुछ छल,
महाराज संकट में होंगे, है विलम्ब में नहीं कुशल;

महाराज मैं क्या सुनती हूँ शकपति का अनुचित अनुरोध,
स्वीकृत देकर मान लिया है सुनकर आया तनिक न क्रोध;
यह है विषय बड़ी लज्जा का, यह है बड़े दुःख की बात,
कर विश्वासघात पावन बंधन पर कर डाला आघात;
चुप क्यों हो यदि सच है यह, तो गुप्तवंश का पतन समीप,
विजयी गुप्तवंश के वैभव का बुझने वाला है दीप;
सुने हुए जिस इक लांछन पर भाई चन्द्रगुप्त का सर,
क्षमा न देकर कटवा लेने पर थे बने हुए तत्पर;
मेरी पत लेने की, पति से शकपति करे धृष्टता फिर,
पृथ्वी नहीं फटी क्यों भगवन्! अंबर नहीं गया क्यों गिर;
इति कर दी निज कुल के यश की नहीं मूँछ पर आया ताव,
सम्राज्ञी के देने का क्षत्रप ने जब भेजा प्रस्ताव;
मुझे, दूसरे को देने का नहीं किसी को है अधिकार,
यदि 'हाँ' कर दी कायरता से; तो भेजो यह शीश उतार;
छू न सकेगा मुझको कोई लाखों सर गिर जावेंगे,
जब इस तन पर शीश न होगा तब वे मुझको पावेंगे;

लेने को प्रतिकार प्रतिज्ञा करती हूँ मैं छू करवाल,
पत्नी रण में जूझेगी बैठें पति पतित चूड़ियाँ डाल;
रामगुप्त—शांत, शांत, प्रिय शांत तनिक हो, सोच राजनैतिक कुछ चाल,
उलटा सीधा उत्तर देकर मैंने दिया उपद्रव टाल;
बैरी सर पर, सेना भूखी, अन्त विवश मुझको झखमार,
समय किसी विधि पा लेने को करना पड़ा पत्रव्यवहार;
शांति अभीष्ट मुझे है केवल बहुत हो लिया है उत्पात,
संग्रामों से, रक्तपात से, पहुँचा है मुझको आघात;
मुझे अहिंसा ही भाती है बुद्धदेव का सद्उपदेश,
हृदयंगम वह ही शिक्षा है वही हमारा ध्येय विशेष;
स्थापित हो फिर शान्ति धरा पर, धर्म यही फैलाना है,
विग्रह मिटा, लड़ाई तजकर, सतयुग फिर से लाना है;
ध्रुवदेवी—झुकना यहाँ गर्त में गिरकर मर्यादा को खोना है,
यह तो झपटे हुए बाघ के सम्मुख गिरकर रोना है;
हिंसक को यों साधु समझना भक्षक को रक्षक करना,
विश्वप्रकृति प्रतिकूल सदा है ऐसे उद्यम में मरना;
अच्छी बुरी भावनाएँ हैं मानव प्रकृति मात्र का गुण,
अच्छे बुरे लोग इस जग में रक्खेंगे अपनी ही धुन;
नीच नहीं उपदेश सुनेंगे उन्हें दंड ही उपकारी,
सज्जन ही होते हैं अच्छे उपदेशों के अधिकारी;
रामगुप्त—माना मैंने भ्रम हो मेरा, आशा मेरी धूल हुई,
बिना बिचारे, बूझे तुमसे, पत्र लिखा सो भूल हुई;
क्षमा करो, जो कहो करूँ मैं, मुझे किये का दुःख अपार,
पत्र दूसरा लिख देता हूँ जैसा कहो उसी अनुसार;
ध्रुवदेवी—रोको प्रथम पत्रवाहक को, जहाँ राह में मिले वहीं,
और उसे आदेश तुरत दो—पत्र मुझे दे उसे नहीं;
उत्तर नहीं लिखाती कुछ मैं दो लोहे से तुम उत्तर,
होगा तब संतोष देख लूँ कटा हुआ पापी का सर;
चलो अभी तुम करो चढ़ाई दो पामर का शीश कुचल,
अपने ही हाथों से उसे चखा दो किये हुए का फल;

रामगुप्त—नहीं देखतीं, मैं अस्वस्थ हूं, मुझमें नहीं परिश्रम बल,
ज्वर से पीड़ित पड़ा हुआ हूँ, हृदय-पीर से महा विकल;
चाहो तो सेनानायक सँग सेनाएँ सब ले जाओ,
रोक पत्रवाहक हूँ देता इच्छित उत्तर लिखवाओ;

ध्रुवदेवी—अच्छा तब तो विवश मुझे ही जाना पड़ा सैन्य के संग,
शीघ्र दुष्ट को उचित दंड दे उसका दर्प करूँगी भंग;
तुरत कूच का शंख बजा दो क्षत्रप का मैं काटूँ सर,
यहीं तलैटी में गिरि के है पड़ा शिविर में निपट निडर;
यह प्रणाम है अंतिम मेरा, भूल चूक जाना सब भूल,
जल तुम भी दृग से दे देना मेरा देख निकलता फूल;

वीरसेन—पाँव बढ़ाता ही सैनिक दल उमड़ मेघ सा बढ़ा चले,
करता पार नदी गिरि कानन पवन वाजि पर चढ़ा चले;
कुचलो सर इन शक अरियों का भगवन ! इन पर गाज गिरे,
टूट पड़ो, दबोच लो वीरो ! ज्यों बटेर पर बाज मिरे;
मुट्ठी भर ये कुटिल विदेशी कोटि-कोटि हम भारत वीर,
यदि हो एक, समझ लें इनको, साहस दिखा बने गंभीर;
तो भूए सा एक फूँक ही में ये तुरत हवा हो जायँ,
पानी के दो कण क्षण में सागर के जीवन में खो जायँ;
कर्क-चिमटियों[1] सी फैला कर, बल-बाहों में लें रिपु घेर,
चट कर जायें उसे चाटकर, मारो हाथ, करो मत देर;
बल-विन्यास धनुष सा रच लें, चाप-कोटि में हो गजदल,
प्रत्यञ्चा पादात-सुभट हों, चतुर, धीर, संग्राम-कुशल;
सादिन होवे पार्श्व भाग में धारे शल्य, कुंत, असि, चाप,
लस्तक में स्यंदन सेना हो रही विपक्षी गर्दन नाप;
निडर कावचिक हों उतारते इन अरियों को असि के घाट,
हो पुरोग सेना बढ़बढ़ कर आगे काट बनाती बाट;

१—बिच्छू की चिमटियां या पंजे

अद्भुत अभिक्रम आयोजन की भली भांति करके रचना,
हतूँ उसे जो छिप बैठा है सैन्य-पृष्ठ में केन्द्र बना;
नहीं प्रेम है मुझे समर से पर आज्ञा का कर पालन,
देखो' देवी ! कर सकता हूँ सेना का भी संचालन;
पर विनती है मुझे छोड़ दो यहीं चैन से रहने दो,
अपनी ही विचारधारा में मुझे मोद से बहने दो;
विजयकारिणी वाणी मेरी, गिरा करे अमरत्व प्रदान,
ऋद्धि सिद्धि मुट्ठी में मेरी, फलदायक मेरा वरदान;
माया कोर लेखनी की देती है सिरज विश्ववैभव,
मेरे इक हुंकार मात्र से हो जाता जग में विप्लव;
मेरे ही उत्साह-गीत सैनिक के पैर बढ़ाते हैं,
मेरे ही मारू-गाने पर वीर अमरगति पाते हैं;
मैं जिसका यशविरद सुना दूँ कीर्ति अमर उसकी हो जाय,
जिसके मैं प्रतिकूल बोल दूँ नाम धाम उसका खो जाय;
इक छींटे में मेरे मसि के विभव पराभव बनते हैं,
मेरे इक संकेतमात्र से समर चतुर्दिक ठनते हैं;
एक टिप्पणी भूतकाल को काला कर दे या अभिराम,
किसी जीव को उठा गिराना मेरे बायें कर का काम;
आँख बंद कर सकल विश्व की झाँकी मैं कर लेता हूँ,
तीनों कालों के रहस्य को मैं अंकित कर देता हूँ;
वीणा तनिक छेड़ देता हूँ पृथ्वी थिरक थिरक नचती,
आँखें, जग की आँख आँकती, आँखों से सब के बचती;
अपनी ही धारा में डूबे मुझको हँसने गाने दो,
मार काट के रण के रक्तिम दृश्य न संमुख आने दो;
इससे समर न भेजो, रमणी का चन्द्रानन लखकर नित,
भाव ज्वार भाटे में मुझको होते रहने दो दोलित;
अश्वारोही भी आ पहुँचा फेर पत्रवाहक को संग,
लीजे यही पत्र है जिसने किया रंग है सारा भंग;

ध्रुवदेवी—पत्र दूत लौटा ले आया, बन अब स्वयं पत्रवाहक—
भेंट, मुझे ही माँगा जिसने, चलकर तो देखूँ वह शक;

मिल जाता यदि चन्द्र वहाँ पर सभी काम तब जाता सध,
उसे मनाकर फिर ले आती किसी भाँति उस अरि को बध;
उस बन के उस पार पड़ा है डेरा शकसैनिक दल का,
गुप्त रूप से मुझे भेद लेना है उसके दल बल का;
इससे वन-अंचल में सेना रहे छिपी ही निकट निकट,
मेरा शंखनाद सुनते ही टूट पड़े अरिगण पर झट;
यह सब गुप्त रूप से होवे रिपु इसकी मत पावे गंध,
उत्सव में विभोर पी पी कर हुए विपक्षी हैं मदअंध;
अवसर यह अति ही उत्तम है मैं देती हूँ जो आदेश,
सेनानायक हो सतर्क तुम करना पालन पूर्ण निदेश;
हम तुम भी चारण जी देखो बनें दूत अब भेष बदल,
मूँछ मुड़ा रमणी बन जाओ, पुरुष रूप मैं भरूँ सफल;

वीरसेन—पोंछो नहीं बदन-छवि मेरी, मुंडन मुझे नहीं स्वीकार,
नहीं उतारो पानी मेरा, निज श्रेणी में मुझे उतार;
मुझको कवि ही बन चलने दो, नाटक रच दूँ खेलो खेल,
मैं पूरा उद्योग करूँगा दोनों में हो जाये मेल;

ध्रुवदेवी—कवि जी क्या तुम सच कहते थे या करते थे तुम परिहास,
एक यवनकन्या के बस हैं होता नहीं मुझे विश्वास;
किसने फँसा चन्द्र को मेरे कानन में दी आग लगा,
कंजाती चिंगारी किसने फूँक जिला दी जगा जगा;
अच्छा चलो, देख लूँ आँखों, बिगड़ी बात बनानी है,
अपने मन की किसे सुनाऊँ, लम्बी बड़ी कहानी है;

*

ध्रुवदेवा—दीपज्योतियाँ आवरणों में नाना रङ्ग दिखाती हैं,
उल्काएँ अगणित प्रकाश से रजनी दिवस बनाती हैं;
पृथक पृथक दल के दल सैनिक, पी पी कर, मदमाते हैं,
अपने अपने वाद्यों पर वे झूमझूम कर गाते हैं;
शकपति के मंडप में है प्रमोद का पूरा ठाठ सजा,
यवननर्तकी नाच रही है घुँघरु कटि के बजा बजा;

विविध व्यंजनों की सुगन्ध है फैल फैल उपजाती रुचि,
जन क्रीड़ाओं में निमग्न हैं, ललनाओं में नहीं सकुचि;
जो प्रहरी हैं खड़े द्वार पर उनकी भी हैं आँखें बन्द,
हाथियारों को डाल भूमि पर सैनिक सोते हैं स्वच्छन्द;
इसी नाट्यशाला में जीवन की प्रतिछाया पाते हैं,
यहीं स्वाँग रच नटी और नट हाव भाव दर्साते हैं;
इन पात्रों में कुँवर नहीं हैं और न है वह शकबाला,
आओ देखें उस उपवन में उनकी होवे रँगशाला;
छिपकर इस झाड़ी से देखें, हाँ, ललना इक सरिता तीर,
अपने घट में पानी भर कर तरुओं को देती है नीर;
आ चुपके से चन्द्रगुप्त कलश। कर से ले लेता है,
चमक न प्रियकटि में आजावे, बरज, स्वयं जल देता है;
कुसुम तोड़ने चली लली वह, काँटा लगा, आह इक खींच,
बैठ गयी शाद्वल पर, थामे पाँव, पीर से आँखें मीच;
लख यह चन्द्रकुमार आ गया, उसने उसे गोद में ले,
धीरे से कंटक निकाल, आँसू पोंछे, आश्वासन दे;
प्रेमालाप लगा करने वह, आँखें मिला, अंक में भर,
वीरसेन! बस चलो यहाँ से, गयीं आज आशाएँ मर;

बीरसेन—व्यग्र और चंचल क्यों इतनी हुई देख यह दृश्य अनूप,
रूप भरा है दोनों ने जो है सब उसके ही अनुरूप;
यह तो नाटक का अभिनय है इसमें नहीं सत्य का मेल,
थिर हो कथा सुनो दोनों की रसिकजनों का देखो खेल;

*

अभिनेता कुमार—नगमाला में नगमाला बन, लहरें लेती, चक्कर दे दे,
गिरती चढ़ती आगे बढ़ती, पाषाणों से टक्कर ले ले;
कानन होती, आनन धोती, रेती को नीरसता खोती,
बाटों से हो, घाटों से हो, पद्मानन पर मोती बोती,
खेतों में सोना बरसाती, बेतों के बन को लहराती,
हो सेतु-अलङ्कारो से भूषित, सरि, मिलने किससे जाती?

अभिनेत्री कुमारी—निश्वास दीर्घ है छोड़ रहा, ज्वर से कंपित सा गातगात,
आकाश-सुमन के छूने को, कर बढ़ा, न पाकर, गिर हठात;
निज सरस हृदय के दर्पण में—शतखंड, व्यथा से टूक टूक,
प्रत्येक अंश प्रतिबिम्ब धरे, कर चीत्कार जब उठी हूक;
कितना अथाह कितना गँभीर, जीवन में कितनी लिये प्यास,
इंगित पर कौन मोहिनी के, नीरध अधीर, रच रहा रास!

अ० कुमार—क्यों रसा सरस हो पुलक उठी, क्यों उभरे तनरुह तृनदल के!
क्यों सौरभ प्याली छलक उठी वल्लरी लता के अंचल से?
हिलमिल लतिकाएँ बुला रहीं, किसको खिल खिलकर लोट लोट?
हैं लगा दिये किसने सुन्दर सरिता दुकूल में ललित गोट?
कोयल जो सुरमा खाये थी उसको किसने फिर राग दिया?
छककर पी, किस रस में विभोर, चातकी बोलती पिया पिया?

अ० कुमारी—यह प्रेमभरी सरिता जाती है सागर के पग धोने को,
उसके संगम में जीवन के इस द्वैत भाव के खोने को;
निज प्रिय मयंक को भरे अंक निज धुन में सागर है विभोर,
जीवन पतंग बन उड़ता है, जब चन्द्र खींचता किरण-डोर;
मधु-चित्रकार, पृथ्वी-पट पर भरता आता है रूप रङ्ग,
खग जग के मन्द धमनियों में नव जीवन भरता है अनङ्ग,
सब मिलने प्रियतम से जाते, आओ हम तुम भी मिल जायें,
दो धाराओं को एक बना, मधु-ऋतु सा हम भी खिल जायें;

सखियाँ आईं, नटी पूर्ववत देने लगी फूल में जल,
छवि अवलोक कुमार ओट से करते थे निज नेत्र सफल;
देवी सहित निकल निकुंज से कवि ने यो सम्बाद किया,
'रहे फली फूली यह जोड़ी, जै हो' आशीर्वाद दिया;

चन्द्रगुप्त—कविजी तुम आ गये समय से नाटक का अब करो सँभार,
पात्रों को अभिनय बतलाओ सिखलाओ अपना व्यवहार;
अभिनेताओं की त्रुटियाँ सुन संवादों को शुद्ध करो,
कर अभ्यास पूर्व-अभिनय में यथायोग्य सब रूप भरो;

हाँ यह साथ तुम्हारे जो हैं, उन्हें न मैंने पहिचाना,
संग हुआ इनका कैसे ? है कैसे हुआ यहाँ आना ?

वीरसेन—नव नियुक्त इक राजदूत है राजपत्र इक लाया है,
महाराज, ध्रुवदेवी ही ने इसको यहाँ पठाया है;

चन्द्रगुप्त—समझ गया संदेश वही फिर पत्र रूप में आया है,
क्या ध्रुवदेवी ने सचमुच ही मुझको नहीं भुलाया है ?
कहो दूतवर कैसे आये ? है क्या समाचार ? दो पत्र,
ऐसा कुछ नक्षत्र चढ़ा है मुझे घेरता है सर्वत्र;
हस्ताक्षर हैं महाराज के, गरुडाङ्कित मुद्रा की छाप,
पर इसमें क्या लिखा हुआ है, पढ़कर हृदय उठा है काँप;
महाराज से, शकपति ने, ध्रुवदेवी की माँगी है भेंट !
साहस इतना कभी न होगा केवल लेता होगा पेट;
किस बूते पर, क्या खा करके, चला डालने हम पर हाथ !
घेरा डाल, फँसा भाई को, किया मोल है उनके साथ ?
उस उद्दंड नीच क्षत्रप को दंड यथोचित देना था,
लोहे से जवाब उसका दे, लोहा उससे लेना था;
मति भाई की भ्रष्ट हो गयी, नहीं बाँह में उनके बल ?
जो शक की गीदड़ भभकी पर पथ से अपने गये विचल;
देवी देने की स्वीकृति दी ! उन्हें डूब मर जाना था,
मर्यादा यों खो, निजकुल में नहीं कलङ्क लगाना था;
ध्रुवदेवी की क्या गति होगी, दिया कूप में जिसे ढकेल,
अपनी भार्या के जीवन से यों कोई करता है खेल;
करती क्या, यह पत्र भेजकर शरण हमारे आई है,
हार मानकर, लाज बचाने को दी यहाँ दुहाई है;
घबड़ा मत, धीरज धर मन में, कोई मेरे जीते जी,
परस न तेरा कर पावेगा, छू न सकेगा तुझे कभी;
मिला मुझे अवसर है अनुपम चल कर कोई गहरी चाल,
अरि का अन्त करूँगा, मिलकर; करके अपनी गोटी लाल;
खेलूँगा दुखांत-नाटक अब, युक्ति सोच ली मैंने झट,
करके अन्त उसी में शक का, काटूँगा सारा संकट;

नाटक है—थी पद्मनाभ राजा के इक कन्या सन्तान,
मांडलीक बनने की उसके मन में थी लालसा महान;
पुष्पनगर पर अभिक्रम करके किया बहुत ही नरसंहार,
आया काम नृपति उस रण में बची सैन्य ने खाई हार;
राजकुमार, महारानी को, राजा ने दे कारागार,
विजित महारानी से चाहा करना कुछ अनुचित व्यवहार;
पद्मनाभ की कन्या ने मोहित हो दें कुमार का साथ,
रोका हाथ पिता का अपने, अपने प्रिय का पकड़ा हाथ;
अभिनय करके छद्मभेष में वर कुमार ने पा अवसर,
पद्मनाभ का खेलखेल में, डाला काट, सत्य ही सर;
उस कुमार ने युक्ति सोच यह लाज बचाली रानी की,
इस नाटक में भी लीला खेलूँगा इसी कहानी की;
पद्मनाभ का अभिनय शकपति से अवश्य करवाऊँगा,
उसकी कन्या को अपनाकर अपना काम बनाऊँगा;

चन्द्र—जिन ललनाओं ने लखी न हो मानव शोणित की विपुल धार,
जिन पुंगवजन ने चखा न हो फल जो उपजाती है कटार;
जिनका हो हृदय बड़ा दुर्बल धक्के से रुकने का डर हो,
जिन तिलकधारियों को नरहत्या लखने में आता ज्वर हो;
वे कृपया चले जायँ चुपके यों अपनी लेवें जान बचा,
जब हत्याकाण्ड खेल में हो वे आपद देवें नहीं मचा;
इस नाटक में निष्ठुरता से छाती में खड्ग भोंकनी है,
प्रतिक्रिया-अग्नि में निर्बलता, कायरता, हमें झोंकनी है;
है पद्मनाभ जो पात्र बना वह बड़ा धीर गंभीर रहे,
उसके सीने में छिपी हुई थैली में घुली अबीर रहे;
जब धार रंग की फूट चले खा विकट खड्ग का एक वार,
वेदनासहित वह तड़प-तड़प लोटे चिल्लाकर, हाथ मार;
फिर स्वर धीमा होता जाये फिर तड़प-तड़प कर तोड़े दम,
फिर अंत शांत काया होवे, अभिनय हो अब; देखें तो हम;

यों सो जाओ, सीने पर चढ़, लो भोंकी मैंने यह कटार,
यह लालरंग भी फैल चला फूटी मानो यह रक्त धार;
यह आह बड़ी ही मीठी है इसमें कराह की नहीं टीस,
इस तड़पन में है प्राण नहीं, उन्नीस न हो बस रहे बीस;
बस इतना ही, हैं साधुवाद, यों ही मरते हैं खा कटार,
रुक गया न हृदय किसी का हो, लो देख भली विधि दृग उघार;
अभिनयविधि और कथोपकथन प्रत्येक पात्र को याद रहे,
स्वाभाविक भासित हो नितांत ऐसा सबका संवाद रहे;
अभ्यास हो चुका, अभिनय को अब रंगमंच पर जाना है,
पट अब खुलने ही वाला है सचमुच का खेल दिखाना है;

पट खुला, सौध के एक कोष्ट में पद्मनाभ है लेट रहा,
वह पलक बंद कर स्वप्नचित्र है बना-बना कर मेट रहा;
उस विजित पुष्पपुर की रानी की दीर्घ प्रतीक्षा में थक कर,
गहरी निद्रा में डूब गया, कादम्ब सुरा में छक-छक कर;
'रम्भारानी' बनकर कुमार संकेत शब्द दे पहरे पर,
उस 'पद्मनाभ' के सिरहाने झट पहुँचा वह कटार लेकर;
बदला अपना ले लेने को उसने यह शुभ अवसर पाया,
इक क्षण में उसके मानस में भावों का सागर उठ आया;

रानी-भेष में चन्द्र—

'सुन पड़ी चाप किसके पग की ? किसकी परछाईं पड़ी वहाँ ?
पगध्वनि है मेरी मूर्तिमान, प्रतिछाया मेरी खड़ी वहाँ;
दीपक को मैं ठंढा कर दूँ, पर वार चूकने का है डर,
कुछ ज्योति मंद कर दूँ केवल, है समय कहाँ, केवल क्षण भर;
उस सुखद सेज पर लोट-लोट निश्चिन्त म्लेक्ष वह सोता है,
पापी के अत्याचारों से संसार बिलखता रोता है;
अब साँसें गहरी लेता है उठ जाय नहीं कुछ बदन हिला,
मन दृढ़ बन, बहुत न कर विचार, मत चूक जाय यह दाँव मिला';

तानी कटार नंगी ऊपर, फिर साध लक्ष को कई बार,
पूरे बल से इक दिया हाथ, कर दी कटार को आर पार;
इक गहरा चीत्कार गूँजा, छाती से शोणित-धार कढ़ी,
हिल नहीं सकी सोई काया उसपर नट-युवती रही चढ़ी;
थी शककन्या जो कुँवर बनी वह गिरी धरा पर मुर्छा खा,
सब दर्शकगण रह गये अचंभित नट-शकपति को देख मरा;
'राजा का उत्तम अभिनय है, हैं स्वर्णपदक के अधिकारी,'
दर्शकगण ने कर्तल ध्वनि की, सब चकित रहे, कह बलिहारी;
झट किया दूत ने शंखनाद, अगणित सेना पिल पड़ी वहाँ,
शकसेना रही नशे में जो विस्मित हो थोड़ा लड़ी वहाँ;
लड़, अस्त्र रख दिये सबने फिर गरुड़ोध्वज फहराया ऊपर,
फूली न समाई गुप्त सैन्य, थे पैर नहीं पड़ते भूपर;
बंदी शकसैनिक हुए सभी, सब कसे गये जंजीरों से,
भर गया शिविरमंडप कानन सब मगधदेश के वीरों से;
करवालों से छू शिरस्त्राण, कर चन्द्रगुप्त को अभिवादन,
सैनिक लौटे उल्लास भरे, करके आज्ञा का प्रतिपालन;
देखी जब शककन्या मूर्छित, आई कुमार को बड़ी दया,
जब संज्ञालाभ किया उसने, दृग खोले, देखा दृश्य नया;
शव सचमुच ही देखा आगे निज पितृदेव का पड़ा हुआ,
स्वजनों को देखा बन्दी थे, मगधी सेनापति खड़ा हुआ;
क्षण भर में यह सब काण्ड हुआ, कुछ समझ न पाई घबड़ाई,
पितुशव से जा फिर लिपट गयी सर पटक-पटक, रो चिल्लाई;
थे निकट चन्द्र भी खड़े हुए पृथ्वी पर अपनी आँख दिये,
उठ सजल नयन ने तरुणी के उनसे कितने ही प्रश्न किये;

चन्द्र--आघात तुम्हें पहुँचा देवी! हा, मेरी इस निष्ठुरता से,
है समवेदना बड़ी मेरी, लज्जित हूं निज बर्बरता से;
इसमें कुछ दोष नहीं मेरा हम केवल साधनमात्र बने,
है घटक और इस नाटक का हम केवल उसके पात्र बने;
वह अपनी करनी भर पाया, तुम बनीं स्नेहभाजन मेरी,
सच मुझको भी है क्लेश बड़ा लखि दुखित आत्मा यों तेरी;

तुम क्षमा करो हत्या पितु की प्रायश्चित जो कुछ कहो करूँ,
मैं चुका न पाऊँगा कदापि तेरा ऋण जो आजन्म मरूँ;

वीणा—एक ठंढी साँस खींच बाला, आँखों में आँसू भर बोली,
सूना संसार हुआ मेरा, होनी थी जो कुछ सो होली;
अब तक स्वच्छन्द विहगी सी मैं निश्चित बालिका बनी रही,
चिन्ता की रेखा पड़ी नहीं चाहे भव की भँव तनी रही;
पर आज पंख कट गये शोक! अब कौन मुझे बेटी पुकार,
मेरे गालों पर धौल मार बरसा देगा वह अमर प्यार;
उत्पात मचाकर भी कितना जिस गोद-कोट में छिप जाती,
उस जनक देव की ममता को जीवन भर तरसेगी छाती;
वह दण्ड सहारा टूट गया यह लतिका अब है निराधार,
था भार और के सर अब तक अब जीवन का आ पड़ा भार;
जो हाथ सँभाले था मुझको, छुटते ही उसके डूब चली,
क्षण ही भर में नारी बनकर मैं इस जीवन से ऊब चली;

चन्द्र—है घाव सत्य ही गहरा पर है इस पड़ाव का जगत नाम,
आना जाना ही जीवों का, थोड़ा विराम कर यहाँ, काम;
हमको तुमको भी नहीं यहाँ पर बहुत समय तक रुकना है,
शाश्वत उस कालचक्र-शासन के संमुख सब को झुकना है;
गत घटनाओं का चिंतन करना इससे है अज्ञान बड़ा,
है धर्म यही बस जीवन का जो पड़े, सहो, कर हृदय कड़ा;
है दंड सहारा रहा नहीं मैं तरु सा तुम्हें संभालूँगा,
तुम पर कुछ आँच नहीं आये अपने पर भार उठा लूँगा;
इक राजकुमारी की सहाय क्या एक अकिंचन सकता कर,
अपना ही समझ कहो जो तन मन से करने को हूँ तत्पर;
जो आज्ञा हो मैं प्रतिपालूँ, जो इच्छा हो मैं पूर्ण करूँ,
जो हो उपाय वह बतलाओ जिससे चिन्ता को चूर्ण करूँ;

वीणा—खो स्नेह, प्रेम पाया मैंने तुमने मेरा दुख बाँट लिया,
उस बढ़ते चिन्ता बिरवा को माली ने जड़ से छाँट दिया;
उस भूत भयानक को दृढता से वर्तमान ने डाँट दिया,
जीवन पोथी-पन्ना भविष्य-कर ने है उलट विराट किया;

यदि है अनाथ कर दिया मुझे, तो बनो नाथ, अपनी कर लो,
अब विलग नहीं करके मुझको, अपनी सेवा का अवसर दो;

चन्द्र—तुम राजकुमारी हो सुराष्ट्र की, कहाँ तुच्छ सेवक इक हम,
फिर ब्याह वैर औ प्रीति सदा सम से ही करना है उत्तम;
मत करो भूल तुम जीवन की यों जोड़ अकिंचन से नाता,
अनजाने जो जी देता है वह अन्त बहुत है पछताता;

वीणा—यदि हृदय-यंत्र है माप प्रेम का तो है नहीं भूल का डर,
मुझको अनाथ मत छोड़ो यों अपनी कर लो, तुम अपनाकर;

चन्द्र—मैं तो इस समय बटोही हूँ मेरी गति है जैसे पारद,
अभिशाप किसी ने दे करके, है बना दिया मुझको नारद;
मत फाँसो मुझे मोह में तुम, जो फन्दे हैं वे हैं क्या कम,
अब अपना राज्य तुम्हीं देखो फिर सौंप तुम्हें जाते हैं हम;
है कारण कुछ, मैं क्षण भर भी अब अधिक नहीं सकता हूँ रुक,
प्रस्ताव तुम्हारा अवसर पा सोचूँगा, नहीं बनो उत्सुक;

वीणा—यह चिन्ह मुद्रिका मेरी ले अपना उपहार मुझे देकर,
दो बचन पुनः फिर मिलने का जब समय तुम्हें लावेगा घर;

चन्द्र—होगा ऐसा ही, धैर्य धरो, मानूँगा मैं उपकार सतत,
उपहार हार यह भेंट तुम्हें, गत बातें मनमें लाना मत;
ढल चली रात, है शिविरक्षेत्र निस्तब्ध, घोर है सन्नाटा,
लिख रहा पत्र है चन्द्रगुप्त लिख-लिख के कई बार काटा;
ले दीर्घ स्वाँस, फिर बन्द किया, निज मुद्रा दे कर हस्ताक्षर,
हो गया उपस्थित राजदूत संकेत दंडधर का पाकर;
दे देना मेरा पत्रोत्तर उस देवी को हे चर, लेजा,
कह देना सम्भव भेंट नहीं केवल है समाचार भेजा;
हाँ, शक क्षत्रप के शोणित से यह खड्ग हमारी लाल लाल,
देकर रमणी से कह देना ब्योरे से सारा हाल चाल;
जिसने थी बुरी आँख डाली, मर्यादा लेनी थी चाही,
कर दिया सदा के लिये उसे है इस पृथ्वीतल से राही;
नारी बन कर धर छद्म भेष उस आपद को मैंने टाला,
अब यह नाटक मैं खेल चुका, नारी का भेष बदल डाला;

दूतरूपी ध्रुवदेवी—रानी का भेष बदल, राजा तुम बने, बनी मैं रानी हूँ,
कहते कहते रुक गये जिसे मैं वहीं अपूर्ण कहानी हूँ;
अपनी आँखों मैंने देखा वह प्रणय-बीज अंकुर लेता,
जो की भविष्यबानी मैंने वह उतरी सच हे अभिनेता;
अन्तर केवल इतना ही है मुझसे इक अधिक भाग्यशीला,
उन आँखों में घर कर पाई दिखलाई नई प्रेमलीला;
मैं घर की खेती बनी रही निष्ठुर ने मुझको ठुकराया,
इक बार भूलकर भी मुझको हे वीर न तुमने दुलराया;
यदि मैंने चूक कहीं पर की, तुम भी चिकने पर फिसल पड़े,
मुझमें दुर्बलता थी थोड़ी पर तुम थे ज्ञानी अचल बड़े;
पर ठीक हुआ समझे तो तुम क्या पीर हृदय की होती है,
रमणी बन कर कुछ समझ सके कि रमणी कैसे रोती है;
मैं त्याज्य हुई पति से अपने यह पावन नाता भी टूटा,
जो इक आश्रय था दुखिया का, वह आशा का धोखा छूटा;
बस और न अधिक रुलाओ तुम चरणों की पूजा करने दो,
मिलकर दोनों अब करें कार्य अब आहें अधिक न भरने दो;
हे वीर ! एक इच्छा मेरी है यही पुनः भारत का सर,
कर दो ऊँचा कस एक सूत्र में पूर्ण देश को अपनाकर;
जो चूक हुई हो क्षमा करो, फिर चलो पुनः लो बागडोर,
सब बिगड़ी बात बना लेवो अब तो कर मुझपर कृपाकोर;
हूँ सब सेवाओं को तत्पर, भारत स्वतंत्रता रन में चढ़,
पा योग आपका, देशद्रोहियों के जीतूँगी मैं सब गढ़;
यह अंतिम मेरी भिक्षा है यदि द्रवे नहीं तो फिर कुमार,
मुझको संसार न पायेगा, पछताओगे तुम लाख बार;
चन्द्र—हे देवि क्षमा करना मुझको, पहचान न मैं तुमको पाया,
हो धन्य, बधाई, नाटक में क्या जीवट तुमने दिखलाया;
सचमुच भारत की श्री तुम हो अतुलित साहस का काम किया,
अपनी मर्यादा रखने हित सब आर्यजाति का नाम किया;
यह प्रेम प्रदर्शन था केवल, अभिनय, नाटक का खेल मात्र,
तुम समझ नहीं अब भी पाई, सेवक अपना विश्वासपात्र;

सम्बंध मुझे क्या बाला से, साधन हित साँचे में ढाला,
दे दंड, नीच को कलबल से देवी का शासन प्रतिपाला;
मैं पड़ा हुआ हूँ चक्कर में जीवन मेरा है भँवर-जाल,
मत संकट में यों पड़ो देवि ! इस जल-चकोह में नाव डाल;

ध्रुवदेवी—क्यों मुझसे आँख चुराते हो, हा ! किसने कान दिया है भर,
लड़गया भाग्य किस रमणी का, लड़गई आँख किससे मिलकर;
जो छाँह न छूने देता था, थी नहीं मार सकती मैं पर,
जो छटे छटे ही फिरता था, जो फटे फटे फिरता कटकर;
वह डोरी पर है खेल रहा, खा गया किसी का चारा है,
जो यों बाला को चढ़ा आँखपर, जी से मुझे उतारा है;
पलकों से तिनके चुनते हो, किसके रँग में हो गये डूब,
किसकी छाया हो बने हुए, निष्ठुर ! दाँतों में दाब दूब;
मुझसे हो खिंचे-खिंचे फिरते, मन लेकर, कर है लिया खींच,
हो तड़पा-तड़पा मार रहे, डाबर से भी जीवन उलीच;
संकोच तुम्हारा मिटा, धन्य है तरुणी, जो पथ पर लाई,
वह स्नेह-स्रोत की क्षीण-धार बढ़ प्रेम-नदी हो लहराई;
कटि में आजाय न हूक कहीं, सींचो बिरवा उस बालाका,
सुन लिया योग-संदेश पुनः ब्रजबाला ने नँदलाला का;
पर जमे, लगे उड़ने मुझसे, अब तो पर-बाल निकाला है,
बे पर की लगे उड़ाने यों, है बात, दाल में काला है;
पुट्ठे पर हाथ न धरने दे, मुँह-जोर, थान का टर्रा हय,
घूँघट कर ज़मना भूल गया, यवनी के चाबुक का खा भय;
वह पीठ ठोंककर ले चलती है साथ साथ पुचकारे पर,
यों हरी घास पर टूट पड़े, लपके हो ऐसे चारे पर;
मुझसे यों लाग, राग उससे, क्यों उलझ रहे हो, फूले हो,
है लगन लगी, तुम लगी बुझाते, पर औरों में भूले हो;
सफरी ने बुज्जा छोड़ा जब, दृग तीर मार कर लिया नाथ,
वह हाथ दिखाती है अपना, कर हाथ, शीश पर फेर हाथ;

चन्द्र—फेरेगा मुझपर कौन हाथ, मैं नहीं किसी के हाथ चढ़ा,
उस नाटक-घटना के तिल को, कर दो पहाड़ मत बढ़ा बढ़ा;

मैं नहीं किसी के पंजे में, छक्का पंजा है पढ़ा नहीं,
जो कोमल भाव तुम्हारे प्रति था देवी अबतक कढ़ा नहीं;
मैं पूजा करता रहा सदा कर सका न पर कोई अनीत,
दिखला चरित्र बल कौशल तुमने आज मुझे भी लिया जीत;

ध्रुवदेवी—तो समझूँ मैं, पा लिया तुम्हें, तुम लौट चलोगे अपने घर,
सहयोग मुझे दे, देशकाल की माँग पूर्ति का व्रत लेकर;

चन्द्र—मन में है द्वंद मचा मेरे, है इधर झिझक है उधर बहक,
अब भींग चली है रात, सो रहें, निद्रा से झुक रही पलक;
क्यों आँखों से आँसू छलके मत हो निराश सोचूँगा फिर,
प्रात: इसका उत्तर दूँगा, इस समय नहीं मेरा मन थिर;

*

रे मन तेरी दुर्बलता है जो यों तिनके चुनवाती है,
नारी मन में नारा भरकर, ताना बाना बुनवाती है;
अंतस्तल ही में रीस रीस, खा टीस, उबल जाता, सोता,
फिर तार धार का तोड़ निराशा-सैकत में जीवन खोता;
आ, छेड़, जगादेता बरबस, घन, बरस बरस, पीड़ा सोती,
फिर सकुचाती रेखा लपेट, ले चलीं बहा, आँखे रोती;

१५

चन्द्रगुप्त—इसीको कहते हैं क्या प्रेम, हृदय होता जाता उद्भ्रांत,
बहुत समझाता जाता किन्तु, नहीं होता फिर भी है शांत;
सँभाले रहा अभी तक जिसे, बना विद्रोही पा संयोग,
एक सैनिक का साथी करे, भंग अनुशासन का उद्योग;
वियोगी रोगी ने दे दिया, मुझे भी यह संक्रामक रोग,
मसल मानस है मेरा रहा, किसी का चिरपरिचित अभियोग;
खींचती पग पीछे है बुद्धि, लोकमत मल देता है कान,
किन्तु मन अपने हठ पर अटल, किसी की नहीं रहा है मान;
कौन पुतली दृग-पुतली बनी, किये है लोचन में आवास,
प्रकृति-छवि में प्रतिबिम्बित हुआ, बिखर जिसका सौंदर्य विलास;
मिलन हित रसवंती उद्दाम, बढ़ी आती है प्रेम विभोर,
उदधि सा सकुचा खोया खड़ा, नहीं बढ़ पाता है चितचोर;
चाँदनी सकुच, कर रही खेत, रही भव सहज सुधा से सींच,
झुका ही दिया रसा ने आज, शून्य अम्बर को उर में खींच;

टेक मैंने हैं घुटने दिये, अन्त खा मानवता की मार,
हुआ पानी-पानी पाषाण, शक्ति की महिमा देख अपार;
उसे अब तजना है अन्याय, छोड़ना, वीर-प्रथा-प्रतिकूल,
विषमता रंदा करके, प्रेम, बनाता सम है मेरी भूल;
कौन अंतर में चुटकी काट, कान में चुपके कहता 'पाप',
पापकी व्याख्या है क्या स्वयं, इसे भी निर्णय करलें आप;
उछालेगा कीचड़ मन-मैल, पापका जहाँ रहेगा हाथ,
भावना-सरि में प्रेम-प्रसूत, बहेगा अविरल पावन पाथ;
किसी अबला को दुख में देख, चुरा आँखें है लेना पाप,
खींच लेना प्लावित से हाथ, डुबकिया लेने देना पाप;
मानसिक या शारीरिक क्लेश, किसी को भी देना है पाप,
आत्मा के विरुद्ध कर काम, व्यर्थ जीवन खेना है पाप;
पाप है अपयश, रार, कलंक, पाप है अपकीरति की छाप,
पाप है तज मर्यादा धर्म, पतन पर करें नहीं परिताप;
किन्तु है नहीं किसी विधि पाप, प्रेम कर अपनाना संसार,
लगा लेना छाती से दौड़, किसी दुखिया को बाँह पसार;
किसी प्राणी को कंदुक मान, खेलना चाहे जग चौगान,
धर्म क्या नहीं हमारा आज, बचाना उसका पत दे त्राण;
श्रेष्ठ है सरल स्नेह-संयोग, प्रेमपथ है यदि पूज्य पुनीत,
उसे अपनाने में मन मूर्ख, हो रहा है क्यों यों भयभीत;
वही मर्यादा का वस मोह, पंथ में देता रोड़े डाल,
भाव में ऊँचा नीचा कौन, संतुलन कर, लें मोल निकाल;
लौट चलना देवी के संग, आर्य की आज्ञा के प्रतिकूल,
खींच आदर्श-शिखर से पाँव, मान को चटवा देगा धूल;
किन्तु वाराहरूप ही धार, विष्णु ने किया धरा उद्धार,
मनीषी देख ध्येय परिणाम, हेतु पर करते नहीं विचार;
अतः जब देश राज्य रक्षार्थ, हथेली पर ले अपने प्राण,
दुहाई मेरी देती हुई, वीर रमणी ने चाहा त्राण;
नहीं सम्भव है मैं 'ना' करूँ, त्याज्या को मैं दूँगा योग,
निभाऊँगा अपना कर्तव्य, कहें जो चाहे मुझको लोग;

निशा-अवगुंठन में मुँह ढाँप, सो रही है चकई उस पार,
अभी तक हम दोनों के बीच, बह रही है विरक्ति की धार;
ढील पा जहाँ भागने चला, डोर-सा, चकई मुझे समेट,
खींच लेती है अपनी ओर, नाच, निज उर में मुझे लपेट;
न जानें, उन्हें हुआ क्या राग, लग रही हैं मुझसे कर लाग,
लगी आँखें ये, लगती नहीं, नींद सो गयी, रहा मैं जाग;

चन्द्रगुप्त—गिर ही पड़ा एक धक्के में कहाँ गर्व वह तेरा,
फिसल पड़ा चिकनी मिट्टीपर किया भविष्य अँधेरा;
क्या मुँह लेकर लौटेगा तू भाई के संमुख फिर,
अपने उच्चादर्श, त्याग यों, अकस्मात नीचे गिर;
बड़े दर्प से उस दिन अपने को निर्दोष दिखाया,
जब भाई ने तुझपर था अनुचित अभियोग लगाया;
डंके की ही चोट आज प्रमदा अपनाने जाता,
अपने ही प्रतिकूल ज्वलंत प्रमाण बनाने जाता;
उस घटना तक जिस भाई ने तुझको सदा दुलारा,
उसके प्रति कर्तव्य यही है? तू ने तनिक विचारा;
दुर्व्यवहार किया भाई ने ध्रुवदेवी से सत्वर,
मानवता को गिरा दिया है नारी को यों तजकर;
इस कारण यदि ध्रुवदेवी भी उनसे घृणा दिखावे,
देख नपुंसकता ऐसी यदि उसका मन फट जावे;
तो कोई आश्चर्य न होगा, यदि वह उन्हें न चाहे,
धर्म मान से रहित संग वह कैसे धर्म निबाहे?
धर्म परंतु नहीं है मेरा वर्जित-पथ चलने का,
एक सहोदर की छातीपर तथा मूँग दलने का;
मोह प्रबल है पर माया यह तजना ही है उत्तम,
वृत्त छोड़, बढ़ने वाला था, तो क्या अब जाऊँ थम?
कैसे उसे निराश करूँ मैं, क्या दूँ उसको उत्तर?
क्या उमंग क्या क्या आशाएँ, मन में उसके उठकर,

मेरे मुँह को जोह रही हैं हँस अपना लेने को,
मूक प्रश्न के उत्तर में दृग से 'हाँ' कह देने को;
फिर कैसे संचित आशाघट ठोकर देकर फोड़ूँ,
नारी के उस प्रेम भरे मानस को कैसे तोड़ूँ;
उच्च भावनाओं से प्रेरित हो वह मुझपर मोही,
बंधन तोड़, छोड़ सारे सुख, लिये हृदय विद्रोही;
सारी अभिलाषाएँ हतकर, आरत को आहत कर,
शरणागत तजने का साहस, भीरु हृदय तू मत कर;
क्षत्रप का विनाश करने को, वह प्राणों पर खेली,
सुख ऐश्वर्य, त्यागकर उसने व्यर्थ यातना झेली;
उसकी दृढ़ता ने मेरे निश्चय की लाली ले ली,
और समस्या गूढ़ बना दी, बन कर कठिन पहेली;
मीन-उड़ाकू, मेरा मन बन, डैनों को तर करके,
प्रेम-पंथ के बाधक नाशक जीव-जंतु से डरके,
भाग, उड़ान गगन की भरता, कर विराग का निश्चय,
कर संकल्प न नीचे उतरें, ऊपर विचरें निर्भय,
रहा विचरता सुख से, क्षणभर शांति कामना लेकर,
छोटे बादल के बच्चों-सा, अपनी नौका खेकर,
उठता गया, गगन मंडल में, नभ का अंचल छूने,
किंतु विहग अगणित आ झपटे, मिले दूत-यम दूने;
स्नेह-नीर ने उसे सँभाला, उड़ता फिरा अकेला,
स्वप्नों की संसृति में उसने, पाया अधिक झमेला;
रहा न पानी, पानी खोकर, डैनों ने दम तोड़ा,
पंखों का सूखा उत्तर पा, मन ने, साहस छोड़ा;
योग-गगन से, कर्म-सिंधु में गिर फिर गोता मारा,
डूब गया था अनिल-उदधि में, जल में मिला किनारा;
अब मत मन उड़ फिर विराग में, रस में कर अवगाहन,
उर में धारण कर उस मणि को, बीन न मग में पाहन;

चन्द्रगुप्त—आते हैं सम्राट यहाँ पर किसने बात सुनाई ?
चरवर ! ठीक बताओ, क्या सचमुच आते हैं भाई ?
हाँ, उत्तर से घनमाला सी इधर बढ़ी है आती,
जिसमें उल्का की श्रेणी चपला सी चमक दिखाती;
दावानल, तम-कानन में है कौन लगाता आता,
जिसका है आलोक मार्ग में मेरे तम फैलाता;
अपने एकाकी जीवन के अंधकारमय पथ में,
लगा, दूसरा पहिया भी, जानेवाला था रथ में;
पर गिर पड़ी गाज इस रथ पर नहीं चल सकी गाड़ी,
भाई के संमुख रुक जायेगी साहस की नाड़ी;
जीते जी अपकार न कर पाऊँगा मैं भाई का,
अपनावें, अपना यह टेढ़ा सीधा लड्डू घी का;
नहीं हरण कर पाऊँगा मैं वामभाग भ्राता का,
बैठावेंगे जोड़, वहीं दोनों, अपने खाता का;
हाथ पाँव अब फूल गये हैं, हो न सकी मन मानी,
निबहेगी कैसे दोनों की, जानें राजा रानी;
मेरी कायरता की, हाँ, ललनाएँ, चुटकी लेंगी,
अस्थिर मन की दुर्बलता का व्यङ्ग चित्र खीचेंगी;
लज्जा से मुँह कहाँ छिपाऊँ क्षितिज भागती जाती,
'दूर' 'दूर' कह पीछे हटकर, मुझसे घृणा दिखाती;
माया मिली नहीं दुविधा में, नहीं राम मिल पाया,
मैंने अपना जीवन अबतक मानों व्यर्थ गँवाया;
किन्तु मिटा सकता है कोई नहीं भाग्य का लेखा,
नियति मिटाती जाती है, खींचे चित्रों की रेखा;
एक वार फिर उसे देखलूँ, छवि थक कर सोई है,
हैं कपोल उसके क्यों गीले, क्या अबतक रोई है;

खोई है सैकत में मानों मानस सरसी की सरित विमल,
सोई है चित्रित सागर पर यह स्नेहभरी तरणी निश्चल;

यौवन अँगडाई ले ले कर, उठ, मलमल कर दृग खोल रहा,
रह गयी बरजती ही लज्जा, पर अंग अंग है बोल रहा;
भावना-तड़ित की मारी छबि, सोई है पड़ी अचेत मौन,
अधरों को छू मुस्कान मंद, कर रही गुप्त संकेत कौन ?
इन आनन ओप लहरियों में डूबा है मुक्ता का पानी,
अंचल चंचल हो उठता है लखकर मारुत की मनमानी;
हिमगिरि शृंगों पर कस्तूरी मृगमाला है करती विलास,
उर शैल-तलैटी-कानन में खोई फिरती मृगमद सुवास;
मनसिज की मानस में मरोर मीठी मीठी सी उठा पीर,
आलिंगन बंधन में स्वतंत्र छवि, आने को करती अधीर;
आनन पर रँग आकर जाकर, कर मनोविकारों का अभिनय,
है दृश्य अनूपम दिखा रहा, उठता गिरता पट समय समय;
आकुंचित अर्कालिङ्गन से है, छुई मुई हो रही, रात,
कुंकुम गुलाल के मारो से हो गये अरुण अब श्यामगात;
यामिनी यवनिका उठती है, अब है प्रभात का गिरता पट,
अब देह तोड़, जम्हाई ले, ललना ने भी बदली करवट;
जग की करुणा थे जगा रहे सोते दृग-सोते छलक छलक,
अब जाग उठी सोयी पीड़ा, थपकी देते ही रहे पलक;
छवि पीने में विभोर मेरे दृग प्यासे, नहीं अघाते हैं,
अब कुशल नहीं रुकने में है, भाई वह देखो आते हैं;
हे अगम दुकूलिनि ! व्यथा भरी, तेरा मैं कूल न पाऊँगा,
तू भूली है मैं भूला हूं, तुमको मैं भूल न पाऊँगा;
छू गयी, आँख तू मूँदे रह, छिप जाता हूं, तू दाँव चुका,
वह ढूँढ न पाये, भाग 'चन्द्र' फिर चोर बना यदि और रुका;

१६

ध्रुवदेवी—यहाँ भी मिली न मुझको शांति, यही है रामराज्य का माप,
जहाँ पर दैहिक दैविक ताप सके थे नहीं किसी को व्याप;
राम की श्यामलता में डूब बह रहा कल कल सरयू नीर,
नहीं कल मुझे दे सका किन्तु, बढ़ाता रहा हृदय की पीर;
निवारण नहीं कर सके ताप गगन-चुम्बी अद्भुत प्रासाद,
शंखध्वनि, घन घंटों की गूँज, दूर कर सकी न हृदय विषाद;
इसी को कहते हैं साकेत! यही भवसेतु, धर्म का केतु?
भूपमणि रामचन्द्र ने यहीं, प्रजा रंजन, स्वधर्म के हेतु,
दूध-धोई, वनिता आदर्श, सती सीता सी का, निर्दोष,
किया निष्कासन, दे वनवास, मिला पुरजन को तब संतोष;
धरा सह सकी नहीं अन्याय, हुआ अबला-मानस दो टूक,
हृदय में करुणा हुई विलीन हो गयी मानवता फिर मूक;
मूर्ति सा तब से मानस हीन, मनुज ने माना निज अवतार,
तभी से पत्थर ऐसे देव, पूजता आता है संसार;

विरह की यह है अमर समाधि, तुझे मैं करती लाख प्रणाम,
पड़ूँ मैं, पुरजन के भी पाँव, मना थे जिन्हें न पाये राम;
चलूँ अब तपोभूमि, उसपार, आठ योजन पर तमसा तीर,
वहाँ बसते हैं ऋषि समुदाय, कदाचित दर्शन, दे कुछ धीर;
वहाँ जाकर रमकर कुछ काल, दबाऊँगी मन का विद्रोह,
करूँगी याग योग अभ्यास, भुला पाई यदि माया मोह;

*

मिला कानन सुरम्य, तप धाम, कुंज, द्रुम, खग, मृग, सरसी बेलि
मौन ही करते हैं संकेत—प्रकृति करती है इसथल केलि;
यहीं 'दुर्वासा' का है धाम, कह रही 'तमसा' 'इन से दूर',
क्रोध ने इनके बन अभिशाप, धो दिया कितनों का सिंदूर;
दया से इनके ही 'दुष्यंत', न पाया 'शकुन्तला' को, जान,
किसी ने दिया मुझे भी श्राप, मुझे ऐसा होता है भान;
लिख रहा भूर्जपत्र पर मौन, कौन यह दुर्वासा का शिष्य,
ऋचाएँ रुचिर सूत्र में बाँध, कौन मुनि कह है रहा भविष्य;
तपस्वी वाल्मीकि-से कौन विकट निर्जन अरण्य के बीच,
रच रहे कौन देव-आख्यान, रहे किसका चरित्र हो खींच?
नहीं कुछ कहते ऋष्यि-कुमार, कथा में हो अपनी ही लिप्त,
धृष्टता क्षमा, दया कर देव! दीजिये निज परिचय संक्षिप्त;

कालिदास—देवि! तुम कौन? कहाँ इस काल, विकट कानन में तमसा तीर,
राजलक्षण से भूषित देह, तपाती हो क्यों कनक-शरीर?
नहीं ऋषि हूं मैं और न देव, तपस्वी नहीं, न राजकुमार,
दीन हूँ, हृदयहीन पर नहीं, काव्यमय पाता हूँ संसार;
जन्म तो पाया द्विजकुल मध्य, बालपन में मुझसे मुँह मोड,
पिता माता कर गये अनाथ, चल दिये मुझे अकेला छोड़;
उठा लालन पालन का भार एक सम्बन्धी ने कुछ काल,
कहा फिर माँगो खाओ आप, मार्ग दिखला कर दिया निकाल;
झेलते हुए अनेकों कष्ट, घूमते फिरते किसी प्रकार,
पहुँच हम गये नगर उज्जैन—केन्द्र व्यवसायिक सुषमा सार;

पुण्यसलिला 'शिप्रा' के तीर, 'महाकालेश्वर' मठ के पास,
एक क्षात्रालय में शिक्षार्थ, लिया जाकर मैंने आवास;
भक्ति से की सेवा निष्काम हुए गुरुवर विशेष संतुष्ट,
अतः मुझको मेधावी देख, स्वस्थ, अनुकूल हृष्ट औ पुष्ट;
पूज्य गुरुवर ने मेरे संग स्वकन्या का, कर दिया विवाह,
आगयी माया अपने आप हर्ष की मेरे रही न थाह;
फूल-शैया पर मद के साथ, लिपट सोयी सुहाग की रात,
नवल 'रजनीगंधा' की कली खिलाता था जब मधुमय बात;
बात बातों ही में हो गयीं, कड़ी बातें दो दो, उस रात,
वही दम्पति प्रेमाङ्कुर हेतु, कर्मवश बना तुषारापात;
भाग्य निज कोसा लाखों बार, पिता पर मढ़, पत्नी ने, दोष,
तिरस्कृत किया मुझे कर गर्व, कही उलटी सीधी, कर रोष;
कहा पढ़ काशी में कुछ काल संस्कृत करो संस्कृत ज्ञान,
नहीं बनजाओ जब तक सभ्य, लौटने का मत लाना ध्यान;
लग गयी, उसकी कडुवी बात, हुआ पानी-पानी, कर ग्लानि,
व्याह, रसरीति, असम के संग, मूर्ख कर, हैं करते हितहानि;
वहाँ से लौटा उलटे पाँव स्वप्न सुख सम्पति से तृन तोड़,
लिये पंडित बनने की साध, भाग निकला सब नाते छोड़;
किसी विधि पहुँचा काशीधाम, वहाँ पर रह कर वत्सर आठ,
अध्ययन किया लगन के साथ, कर लिया पूरा विद्यापाठ;
पूर्ण पंडित पदवी कर प्राप्त, किया मैंने तुरन्त प्रस्थान,
मुझे जब जन्मभूमि के पुनः दरस करने का आया ध्यान;
पहुँचने हित रहस्य की भूमि, डाल दी गंगा में निज नाव,
मार्ग में विविध देवथल, दृश्य, रहे उपजाते अनुपम भाव;
तीर की तरुराजी झुकझूम, पुष्प फल दे करती सत्कार,
उठाये फिरता हाथों हाथ, तरंगों का प्यारा परिवार;
दुकूलों पर बरसाती फूल, बेग से बहती गंगाधार,
चरण सागर का छूने हेतु, प्रांत काशी का करती पार—
पहुँच 'जमदग्नि' क्षेत्र के पास, अचानक पा, तट कठिन कठोर,
धार, खा ठोकर बनी चकोह, घूमती चकराई, कर रोर;

पुलिन पर तमरिंदों के बीच, भक्त कविजन की कुटिया छोड़,
प्राच्यदिशि धावित प्रबल प्रवाह, कशा उत्तर दिशि लेता मोड़;
करारे, अरर अरर कर, काट, पाटता हुआ कूल पर रेत,
सलिल बढ़, चट पट चाट कछार, खड़े खेतों को करता खेत;
चरण जमदग्नि क्षेत्र का चूम, परसती परशुराम का धाम,
सुप्त चट्टान-शीश पर खेल, देवसरि की धारा अभिराम,
पूर्व मुड़, 'गाधिपुरी' कर पार, तपोवन पहुँची परम पवित्र,
जहाँ 'मेनका' रूप पर रीझ, हुए थे मोहित 'विश्वामित्र;
चली ले, भृगुक्षेत्र अविराम, नाव मेरी, धारा उद्दाम,
गंग से मिल, तमसा ने जहाँ, डुबा अस्तित्व, लिया विश्राम;
वहीं पर रमने को कुछ काल, दिये मैंने उतार सब पाल,
प्रकृति की छटा निरखने हेतु, बाँध दी तरनी लंगर डाल;
देवसरि-सरयू संगम भूमि विविध ऋषि-मुनियों का आवास,
सुरथ-सर सरसिज संकुल रम्य, यहीं कमला करती है लास;
अप्सरा कन्यायें कर केलि, यहीं पर पंकज करतीं चयन,
कमलपत्रों पर लिखतीं पत्र, मिलातीं मृगशावक से नयन;
प्रकृति अभिनयशाला यह रम्य भरा करती है कितने रूप,
झलक ले झाँकी की, छिप रश्मि, खींचती छाया चित्र अनूप;
पुनः तमसा में तरणी डाल, पार कर 'देवल' बासस्थान,
कालिका का कर मग में दर्श, शारदा का करता आह्वान;
तपोवन 'दत्तात्रय' का देख, लिया आ 'दुर्वासा' में वास,
ग्राम मेरा है सरितातीर, नाम मेरा है 'कालीदास';
काव्य बन बहती तरल तरङ्ग, बोरती रस में, बीचि विलास,
यही है मेरा पूर्ण वृतांत, सुनाओ अब अपना इतिहास;
तुम्हें किसने देकर अभिशाप छुड़ाया निज प्रियतम का साथ,
बिचारी शकुन्तला की भांति, विचरती हो जो बनी अनाथ;

ध्रुवदेवी—तुम्हारी शकुन्तला की भांति हुई हूँ मैं भी दुखिया दीन,
मुझे भी कोई भूल नितांत, गया खो, हो विराग में लीन;
उसी बिछुड़े की करने खोज, निकल हूँ पड़ी, छोड़ घर द्वार,
मगध की रानी थी जो कभी भिखारिन बनी छोड़ संसार;

वही निर्वासित सेनाध्यक्ष भूप के भाई परम अनूप,
वही हैं मनमन्दिर के देव, उन्हीं का बसा आँख में रूप;

कालिदास—धैर्य तुम धरो पूज्य हे देवि ! करूँगा इस दुखका उपचार,
काव्य में चित्र तुम्हारा खींच बहादूँगा मैं रसकी धार;
सुना नव रचित शकुन्तल काव्य करा दूँगा कुमार में क्रांति,
मिला कर शकुन्तला दुष्यन्त, दूर कर दूँगा सारी भ्रांति;

ध्रुवदेवा—तुम्हारी लिये हुए आशीश जा रही हूँ मैं बनी अचेत,
उसी अनजाने पथ की ओर कर रहा प्रेम जिधर संकेत;

१७

कुबेरनागा—'अनगढ़ पत्थर की दीवारें नभमंडल से करतीं बात,
झांईं आती, खाईं लखते, सायँ-सायँ करती है रात;
इसी कोट के कारा में मैं बनी बन्दिनी असहाया;
समय फेर ने लखते-लखते यह दुर्दिन भी दिखलाया;
हे सप्तर्षि! इधर झुक आते, हो जाते मेरे सोपान,
स्वर्गंगा के हंस! मुझे भी उड़ा ले चलो बन जलयान;
तीन ओर गहरी खाईं है एक ओर सरिता स्वच्छंद,
फाटक पर पहरा बैठा है, लोहे के किवाड़ हैं बन्द;
तो क्या करूँ चलूँ फाटक पर, करूँ द्वाररक्षक पर वार,
पर कैसे खुल पायेगा वह कठिन कठोर कोट का द्वार;
निकलूँ तो कैसे मैं निकलूँ क्या मैं दे दूँ अपने प्राण,
नहीं, नहीं, कुछ युक्ति मुक्ति की सूझ कदाचित् जाय, निदान;
बुद्धि दौड़ कर, छुटकारे के बन्द सभी पाती है पट,
अब विलम्ब में कुशल नहीं है, पृथ्वी ने बदली करवट;

हंस उड़ा दूँगी पिंजड़े का, पाऊँगी पापी से त्राण,
छू न सकेगा मुझे नराधम जब तक है इस तन में प्राण;
पितुघातक वह राज हड़प कर, चला मुझे है अपनाने,
मेरे ही छीने वैभव का मुझे प्रलोभन दिखलाने;
क्या आहट है ? खटखट कैसी ! काला सा क्या आता है,
इसी ओर बढ़ता आता है जी मेरा घबड़ाता है;
इन तारों की मन्द ज्योति में किसकी काली काली छाँह,
मेरे निकट चली आती है फैलाती कुचाह की बाँह;
है वह कोई प्रेत आत्मा और दूसरा होगा कौन,
इस निशीथ में क्रीड़ा करने घूम रहा हो जो यों मौन,
दशन चमकते हैं रह रह कर उठती है कैसी ज्वाला,
कोई नहीं पास है मेरे नभ पर है तारक माला;
यदि पिशाच है तो देखूँगी नर-पिशाच वह कहीं न हो,
छाया भी उसकी छूवे मत, पवन उधर से नहीं बहो;
है आकार किसी मानव का, हाँ वह लगा चमकने हार,
आया निकट, वही पापी है, भगवन् ! अब तू ही आधार;
आता है विषधर भूधर, अब मुझे कहाँ तुम पाते हो,
सरित-सेज पर सोये तारक गण क्या मुझे बुलाते हो;
तुमसे ही हिलमिल खेलूँगी सरिते मुझे अंक में ले,
अपने सजल हृदय में रखकर ऐसे समय त्राण दे दे';
चपला चमक, गिरी, तम घन से, तड़प हुई सरिता में लय,
एक धमाका हुआ नदी में, पुनः शांति की हुई विजय;

चन्द्रगुप्त—सरिते ! अबुध बालिका है तू जो यह ललित पुत्तली देख,
नहीं कर सकी मोह संवरण सुन्दरता की प्रतिमा पेख;
खींच उठा ही लिया गोद में तू ने उसको प्यार किया ?
झुला लहरियों के झूले में फूलों का उपहार दिया ?
कटा कटा जो फिरता है नभ में, अल्हड़ वह दिव्य पतंग,
व्याह रचेगी क्या गुड़िया का, ऊषा के गुड्डे के संग ?
नचती नचती लोल लहरियाँ ज्यों तरंग में जातीं खो,
विविध वाद्य-ध्वनियाँ मिल जातीं एक राग में ज्यों लय हो;

ज्यों समाधि में समा, एकमय, जीव ब्रह्म हो जाते दो,
त्यों ही जीवन में तेरे जीवनी गयी किसकी है सो?
बच्चे खेल विहग से करते, दबा दबा ले लेते प्राण,
खेल खेल में तू ने भी जीवन ले डाला था अज्ञान!
लहरों के मिस हाथ उठा कर 'ना' 'ना' कर बनती निर्दोष,
भवें चढ़ा कर, माथ सिकोड़े, लखती मेरी ओर सरोष?
अच्छा तो तू ही सचसच कह इस दुर्घटना का कारण,
यदि तूने ही नहीं पढ़ा है इस मोहनी हेतु मारण;
किसी दुशासन के हाथों क्या नवल द्रौपदी नग्न हुई?
आत्मघात का निश्चय करके क्या देवी जलमग्न हुई?
आत्मघात इक यंत्र विकट है जीवन-बाष्प उड़ाने का,
भेषज रामबाण यह तो है भवयातना मिटाने का;
इस छेनी से काट डालते दुखिया जीवन हथकड़ियाँ,
आयु-कटोरा डुबा पूर्व ही कम कर देते दुख-घड़ियाँ;
तापों से है मुक्तिदायिनी कसकर बँधी गले की डोर,
तत्वों को बिखराने वाला कष्ट किन्तु है महाकठोर;
अंधकारमय जब जीवन हो, हो विलीन आशा की कोर,
तब ही तो विक्षिप्त साहसी काट डालता जीवन डोर;
उर्म्मि-उसासों की हलचल में ऊब डूबती नाड़ी सी,
सिकता में सरिता जीवन की रुकती फँसती गाड़ी सी;
जिसकी हृदगति मंद मंद थी देह हो रही थी शोरा,
प्रह अनिष्टकर झटके दे थे खींच रहे जीवन डोरा;
जल में डुबकी ले, पानी पी, जीवन घट था भरने को,
पथिक, बाँध परिकर, था उद्यत पथ में निज पग धरने को;
उतरे तार, तान, कस्तूरी ने, कसकर दी, बीन मिला,
मृगमद लगा चौकड़ी भरने नस नस में गति सुप्त जिला;
यह लो, देवी ने करवट ली, शनैः शनैः आँखें दी खोल,
लौट गये आते होंठो पर, मुझे देख, सकुचाते बोल;
हे सुंदरि! तुम लख पड़ती हो मुझको कमला का अवतार,
रूप-रत्न मणिमय आभूषण सूचित करते विभव अपार;

तेरे शुचि बसंत ने खाई कभी ग्रीष्म की आँच नहीं,
तेरे जीवन ने झेली है कभी विपद की जाँच नहीं;
तेरे हृदय लोक में निशिदिन आनँद ही की ज्योति जगी,
यह लख किसकी आँखें फूटीं, किस छाती में आग लगी;
किसका यह कुचक्र है सारा किस अपग्रह को है यह चाल,
जिसने तेरे प्राण हरण हित दिया नदी में तुझको डाल;
हरी भरी इस फुलवारी को कौन कठोर उजाड़ेगा,
इस लोनी लहलही लता को कौन विचार उखाड़ेगा;
यौवन भार सुथिर तरणी को तरुणी कौन डुबावेगी,
प्रभापूर्ण उस दीपशिखा को रमणी कौन बुझावेगी;
तूने सहज किया हो ऐसा, इसका करना मात्र विचार,
सुमुखि ! सुबुद्धे ! तेरे प्रति, सचमुच है भारी अत्याचार;
फिर इस घटना का क्या कारण ? अरि का कोई हो षड़यंत्र,
बैर किसे होगा पर तुझसे, तू पवित्र बालिका स्वतंत्र;
तारा सी तू टूट पड़ी है या चू पड़ी ओस के संग,
नहा रही थी अथवा सरि में, ले आई है बहा तरंग;
सम्भव है, पर यदि यह होता तो अनुचर दासियाँ अनेक,
छानबीन कर खोज डालते कर देते पृथ्वी नभ एक;
कारण कुछ हो सकता तो है प्रणय पंथ की निष्फलता,
दृढ़-संकल्प बना सकती है नवयौवन की मादकता;
कहो बात यदि कुछ ऐसी हो तो फिर सोचा जाय उपाय,
हम असहाय स्वयं, सहायता तेरी क्या कर सकते हाय;
हाँ, यदि ग्राम नगर बतला दो अपने पिता आदि का नाम,
तो तुमको सयत्न घर पर पहुँचा देना है मेरा काम;
चुप क्यों हो, कुछ तो बतलाओ, क्यों चिंता में डूबी हो!
ठंढी साँसें क्यों लेती हो, क्यों जीवन से ऊबी हो;
अपना समझ मुझे दो परिचय, घर पहुँचाये देता हूँ,
हो जलमार्ग वहाँ तक का तो अभी नाव मैं खेता हूँ;
संज्ञाहीन बही जाती थीं, तुम्हें खींच लाया इस पार,
लाकर देखा, जीवन गति पा, जो बन पड़ा किया उपचार;

धन्यवाद उस प्रभु को है, तुम संभल गयीं मिट गया अनिष्ट,
कष्ट न झेलो, घर पहुँचा ही देना मुझको केवल इष्ट;
बोलो, बोलो, पता बताओ, किसकी राजकुमारी हो,
नव मरालिनी! मानस तजकर, कैसे कहाँ सिधारी हो?

देवी— सूना है मेरा संसार,
जीवन भी है मुझको भार;
बचपन ही में माँ मुह मोड़,
गई अकेली मुझको छोड़;
हुआ विधाता ऐसा बाम,
पिता युद्ध में आये काम;
गया स्नेह नाता सब टूट,
गया भाग्य मेरा जब फूट;
जीवन को जीवन में डाल,
छोड़ चुकी थी यह जंजाल;
फिर क्यों बचा, शान्ति ली छीन,
फिर क्यों दुख कर दिया नवीन?
अपने को आपद में डाल,
मुझको जल से लिया निकाल;
ऋणी किया दे जीवन-भार;
नहीं भूलने की उपकार;
मेरा मत पूछो वृत्तांत,
मृगजल मध्य मृगी उद्भ्रांत;
सब विधि मुझे अनाथा जान,
निज परिचय दो कृपानिधान;

चन्द्रगुप्त— मैं क्या, मैं पृथ्वी का भार,
उजड़ा हुआ एक संसार;
भग्नभाव समाधि का स्तूप,
इक असीम का सीमित रूप;

वीणा का हूँ उतरा तार,
शून्य, लिये तारक-संसार;
असफल जीवन का परिताप,
अङ्गनाओं का हूँ अभिशाप;
सांध्यगगन का उड़ता हास,
मानव भूलों का इतिहास;
कली अधर पर रच मुस्कान,
विहग-गले में भर कर तान,
आ बसन्त ने, तिनके तोड़,
मेरा नीड़ दिया था जोड़;
काल चक्र ने, झंझा बात,
उठा, किया भारी उत्पात;
जिसने बहुत भांति उत्पीड़,
दिया उजाड़ बनाया नीड़;
अब मैं पूर्व बसेरा छोड़,
सब अपनों से नाता तोड़;
प्रकृतिनटी का लखता खेल,
सुखदुख परदेसों में झेल;
आ निकला यों ही इस ओर,
देख रहा था सरित-हिलोर;
निरख तुम्हें बहते जाते,
लहरों में गोता खाते;
कूदा जल में मैं तत्काल,
नदी गर्भ से लिया निकाल;
बच तुम गयीं, हुआ सब काज,
ईश्वर ने रखली है लाज;
नहीं ग्राम का लेतीं नाम,
घर से नहीं तुम्हें यदि काम;
तोड़ चुकीं यदि माया जाल,
जग में ठुकराना हो भाल;

तो दे दूंगा मैं भी साथ,
मैं भी तुम सा निपट अनाथ;
तिरते हुए अनन्त अपार,
उस अनादि-जीवन की धार,
दो बुदबुदे मिले अनजान,
है संयोग अपूर्व महान्;
सख्य भाव से करें विहार,
तप खा खा कर, निखरे सार;
ललना मुद्रा हुई गँभीर,
आँखों में भर आया नीर;
ठंढी सी इक आह निकाल,
चिन्ता में खो, हृदय सँभाल;
अनुमोदित करती प्रस्ताव,
दिखला कर करुणा का भाव;
सहचर संग संग हो ली,
ललना पुनः नहीं बोली;
उसी नदी का पकड़े छोर,
दोनों चले विन्ध्य की ओर;
वे क्षणदा-आलोक समान,
चमक, हुए फिर अन्तर्ध्यान;

चन्द्रगुप्त—इस पावन प्रदेश का रज कण, हरिचरणों ने किया पुनीत,
स्नेह वृत्त में घेर गया है इसका जीवनविंदु, अतीत;
इसकी सरल शुष्कता में भी फूटे पड़ते रस के स्रोत,
है पवित्र हरिचरित चित्र से उसका मानस ओतप्रोत;
पर्वतीय भूखंडों में से ऐन केन निज पंथ निकाल,
रसवंती, निज सरस परस से पवि में देती जीवन डाल;
निज संघर्षण से कठोरता पीस पीस करके चन्दन,
लहरें लेल, खिच देती हैं पाहन में भी हृद-स्पन्दन;

सलिल-आरसी में जब रूप देखते, विटप, लता, द्रुम, कुंज,
प्रकृति पुजारी, प्रेमप्रेरणा से, बन कर ये पाहन-पुंज—
प्रकृति-नटी के विविध रूप की झांकी चित पर अंकित कर,
हृदय-पटल पर खींच, सँजोते, छबि का छायाचित्र[1] अमर;
विन्ध्या की उपत्यिका सुन्दर, चित्रकूट है चारु ललाम,
देवि! चलो उस 'केन नदी' तट हम दोनों भी लें विश्राम;

१—बांदा जिला अन्तर्गत केन नदी की विचित्र विशेषता है कि उसके जल के भीतर के पत्थर, पेड़, पल्लव, सूर्य चन्द्रमा आदि जिसकी भी छाया पानी पर पड़ती है वे अपने हृदय पर चित्रित कर लेते हैं।

१८

चन्द्रगुप्त—'यह सौराष्ट्र महासुंदर है, प्रकृतिनटी की रँगशाला,
सरस सुमनमय सोह रही है उर में उसके बनमाला;
खगकुल की कोमल स्वर लहरी पर है थिरक रहा उल्लास,
देता ताल मृदंग ताल पर अनिल, बीचि सँग रचता रास;
जलतरङ्ग है तान तोड़ती, सुर भरता है सरस समीर,
ललित लताएँ लिपट रही हैं भाव बता, तरु हुए अधीर;
निरत आज रति में अनङ्ग है डूबा है रस में संसार,
छवि विलोक, है आज ज्वार पर गुप्त प्रेमका पारावार;
मुकुल झुके मकरन्दभार से, मधुकोषों में मधुप विभोर,
चेतन को जड़, जड़ चेतन को, बना रही है मदन मरोर;
नारिकेल के पुंज कहीं हैं, वेणुकुंज है कहीं घना,
नकुल नाग का उनकी जड़ में रहता भीषण युद्ध ठना;
जलकुंभी से भरे सरोवर के भीटे पर साही दल,
काँटे तुरत खड़ा कर लेता भय आहट से हो चंचल;

चुगते हैं चकोर घासों में दीमक, मिट्टी हटा हटा,
है गोंडी-तरु[1]राजि-घटा पर छाई अनुपम श्याम छटा;
है निकुंज के लता भवन में, क्रीडानिरत शशक-शावक,
पथरीले टीलों के तन को, लिया बनस्पति ने है ढक;
कुसुमित घासों के कोमल दल, टूँग रहा कुरङ्गदल घूम,
चरना छोड़, उठा ग्रीवा, लख लेता चकित, हमें है झूम;
वहाँ कंदरा लख पड़ती है चलो वहीं पर करें विहार,
हम दोनों भी ऋषि मुनियों-सा ध्यान लगा, भूलें संसार;
अरे गुफा यह तो लम्बी है, भीतर है तमतोम विकट,
हिंस्र जंतु की गंध आ रही, किसी जीव की है आहट';
तमघन में चपला सी कौंदी, आँखें वह दो चमक गयीं,
देख निकलते शार्दूल को युगल मूर्तियाँ ठमक गयीं;
कहते कहते चन्द्रगुप्त ने चला दिया विषमय नाराच,
चीत्कार कर शार्दूल ने तड़प गरज कर भरी कुलाँच;
पुनः चन्द्र ने वार बचाकर भाला का इक पूरा हाथ,
कसकर भोंक दिया छाती में, पल में पूरे बल के साथ;
भाला तन के आर पार था, सिंह इक क्षण सन रहा पड़ा,
शीघ्र सँभल, आँखें निकाल, मुँह खोले, गरजा हुआ खड़ा;
झपटा पुनः वार करने को, इतने में निकाल तलवार,
देवी ही ने कूद तड़प कर उस घातक को, डाला मार;
गुहाद्वार धुल गया रक्त से, नाद सो गया, जागी शांति,
शोणित-मुक्ता-भरी-खड्ग-मय चंडी सी देवी की कांति—
निरख आँख भर चन्द्रगुप्त ने, आभारी दृग में जल भर,
उस ललना के चूम लिये कर, विनय किया फिर मन थिर कर;
वीराङ्गने ! धन्य हो तुमने किया बड़े साहस का काम,
और नहीं तो लवनिमेष में लेता जीवनचक्र विराम;
आई काम आज आड़े में गाढ़े में दे मेरा साथ,
नदी नाव संयोग यही है इसमें है अदृश्य का हाथ;

१—वृक्ष विशेष

नैसर्गिक आकर्षण क्यों है मैं कुछ समझ न पाता हूँ,
घेरे हो तुम मुझे क्षितिज सी, निकल न पा, घबड़ाता हूँ;
मन कहता है तुम अपनी हो, कभी पूर्व का नाता है,
एक अपरिचित के प्रति ऐसा भाव इधर क्यों आता है;
कितना ही परिचय पूछा पर तुमने अब तक मौन गहा,
इक अनाथ बालिका बताकर आगे कुछ भी नहीं कहा;
आज शुभे बतलाना होगा तुमको निज जीवन-इतिहास,
राजलक्ष्मी हो किस कुल की किस नगरी में था आवास;
यह भी तुमने नहीं बताया पीत पीत हल्दी का रङ्ग,
चढ़ इन कोरे कनक कमल पर कर पाया कुमारिता भंग;
यदि हाँ है तो खोल बताओ भाग्यवान निज पति परिचय,
मैं कृतज्ञ होऊँगा सुंदरि ! सच सच कह दो यही विनय;
शीश हिलाकर हाँ कहती हो ? किससे ? यह भी बतलाओ,
तोलो मत तलवार, इसी की दारा हो मत जतलाओ;
देवी—पति प्रतीक है यही कटारी इससे तुम कुछ डरो नहीं,
यह संकेत अलम है आगे हठ विशेष तुम करो नहीं;
प्रश्न पूछने का साहस क्या मैं भी कर सकती हूँ एक,
उत्तर दे देने की करो कृपा तुम अपनी तजकर टेक;
राजकुमार कहाँ के हो तुम ? ब्याहे हो या क्वाँरे हो,
यदि विवाह की म्यान लगी है फिर भी विकट दुधारे हो;
चन्द्र—राजा या युवराज नहीं हूँ, अभियोगी हूँ भागा हूँ,
समझ अधिक तुम घृणा करोगी, भाग्य सुलाकर जागा हूँ;
व्यर्थ व्यर्थ तुमने इस भूले भटके का हा ! पकड़ा साथ,
चित पर चढ़ता नहीं कभी नारी का मैंने पकड़ा हाथ;
देवी—टाल रहे हो मुझको ऐसा, ऐसे भोले ! भूले हो,
करके चेत बताओ मुझको किस दुलहिन के दूल्हे हो;
चन्द्र—तुम हो समझ रहीं, कहने में करता हूँ आना कानी,
अच्छा तो तुम यही मान लो, तुम ही हो मेरी रानी;
देवी—बहुत बुरे हो, अच्छा जाओ, कभी नहीं, अब बोलूँगी,
ऐसी हँसी नहीं अच्छी है कभी न मुँह अब खोलूँगी;

चन्द्र—क्षमा करो योंही कह दी थी, अब इन बातों को छोड़ो,
ले विश्राम, न जम्हाई ले, यों सुन्दरी, देह तोड़ो;

*

गोलार्ध अपर में तम भागा, आया प्रकाश में इतर भाग,
कलिका-कूंची ने रङ्ग भरा, जागा दिनकर के संग राग;
किरणों की रेखा खींच खींच दे निराकार को रूप रङ्ग,
भरता उमंग, बढ़ता पतंग है, उपजाता जीवन तरङ्ग;
ऊषा ने प्राची से झाँका देखा शोभा नव सोई है,
सैकत-शय्या पर पड़ी हुई है किसी ध्यान में खोई है;
सरिजीवन की इक मृदु हिलोर उठ चुपके छू उसका कपोल,
उसको अपने में ले आई, भींगे दृग उसने दिये खोल;
अंचल से आँखे सूखी कर चंचल दृग से लख इधर उधर,
देखा तो उसका साथी भी है बैठा जल में थामे सर;
वह था विभोर कुछ चिन्ता में, था कहाँ, उसे कुछ ध्यान न था,
बढ़ते जल के हलकोरों से था वस्त्र, भींगता ज्ञान न था;
अपने से बातें करता था आँखों को जल में गड़ा गड़ा,
'मेरे संमुख अब आया है जीवन का सबसे प्रश्न बड़ा;
वह मन जिस पर सब चूक गये दृग वार वारिवनिताओं के,
जिसपर सब निष्फल अस्त्र हुए सब कलापूर्ण ललनाओंके;
उस मन को क्या हो गया आज जो फिसल पड़ा चिकनाई लख,
इन चख की चख चख को देखो प्यासी रहतीं दृगरस चख चख;
क्या झुका दिया दुर्बलताने, जी सचमुच उस पर आया है ?
था श्राप किसी ने दिया मुझे फल आज उसी का पाया है;
पर नारी वह मैं सैनिक दृढ़, उड़ गया कहाँ मेरा विवेक,
जिसपर मैंने सब कुछ छोड़ा टूटी मेरी वह कहां टेक;
रे दुर्बल ! मत कलंक सर ले, तू भाग यहाँ से मन बटोर,
कुछ और बढ़ा तो गला फाँस कर, कस देगा वह, प्रेम, डोर';
ललना ने यह देखी लीला, सुन विचलित हो, कुछ घबड़ाई,
फिर बढ़ी जगाने साथी को, जा निकट पास से फिर आई;

तट के बन में चुपके से घुस इक झाड़ी सघन सघनतर लख,
छिपने पैठी ज्योंही, भागे दो खरहे, पाँव शीश पर रख;
डर कर पीछे वह लौट पड़ी, पर शशक देखकर धीर हुआ,
पीछे पगध्वनि की आहट सुन उसका निश्चय गंभीर हुआ;
घुस पड़ी कँटीली झाड़ी में, साहस करके खाती खरोंच,
बैठी भीतर शय्या रचकर, कोमल पत्तों को नोच नोच;
पत्तों की झुरमुट से झाँकी वह लगी देखने भूले की,
मन डोल रहा था इधर उधर, खा पेंग चाह के झूले की;
जब एक सूँस ने उलटी खा आ निकट युवक के, फुफकारा,
टूटी समाधि तब सैनिक की, रुक गयी गुप्त चिंतन-धारा;
वह युवक अचानक चौंक पड़ा, जल भींगे वस्त्रों से छन-छन,
मुँह बाएँ ललचे हंसों को तब लगा रिझाने, मुक्ताबन;
घबड़ा कर तट की ओर चला, बालू के सुखद करारे पर;
वह रत्न देखने को लपका छोड़ा था जिसे किनारे पर;
बालू का टीला भरक भरक ऊपर से नीचे कर देता,
रेता ऊपर से सरक सरक गिरि गिरि कर सर को भर देता;
गिरता पड़ता ऊपर आकर मैदान रिक्त उसने पाया,
उस सिक्तसेज पर छपी हुई थी उस माया की प्रतिछाया;
कुछ देर देखता रहा खड़ा भूअंकित पड़ी रूप रेखा,
पर देवी का कुछ पता न था, जा इधर उधर फिर कर देखा;
पेड़ों के पीछे भी खोजा, ऊँचे तरुओं पर चढ़ आँका,
बह रहा बुलाता गला फाड़, गड्ढा, तड़ाग, कूआँ झाँका;
सहचरी शोध कुछ लगा नहीं कुछ मिला नहीं उसको उत्तर,
हाँ प्रतिध्वनि उसे चिढ़ाती थी, दुहराकर उसका ऊँचा स्वर;
फूलों के कुंजों में ढूँढ़ा चिड़ियों को रहा उड़ाता वह,
उसकी मुनिया उड़ गयी कहाँ, खोजा पर कहीं न पाता वह;
जा पास कँटीली झाड़ी के वह हार मान कर बैठा थक,
काँटा निकालने लगा वहीं ले और हाथ में इक कंटक;
सोचा उड़ गयी हवा होकर, या रीछ, बाघ खा गया उसे,
कुछ नाद सुना होता, सहसा यदि संकट कुछ आ गया उसे;

मैं दूर नहीं ऐसा कुल था, बस दो बाँसों का अन्तर था,
कुछ समझ नहीं आता मुझको कैसा अद्भुत छूमन्तर था;
क्यों साथ छोड़ मैं दूर हुआ, इसका मुझको पछतावा है,
मैं जगता हूं या सोता हूँ या उसने दिया भुलावा है ?
हो सकता है वह रूठी हो मेरी बहकी कुछ बातों से,
अथवा मेरे ही हृदयहीन व्यवहारों के आघातों से;
रह गया हाथ मलता ही मैं निर्दयी गयी हे दयी! कहाँ,
अब हाथ पाँव हैं फूल गये वह निकल हाथ से गयी कहाँ;
यदि तुम में रसना नहीं सुमन! कलियों ने क्यों मुँह किया बंद,
अलि तुम ही पता बता देते मिट जाता मेरा हृदय द्वंद;
चहको चहको तुम विहग वृन्द षडयंत्र तुम्हीं ने आज रचा,
लहको लहको तुम लतिकाओ वह फूल चुराकर देह नचा;
पर याद रहे यदि मिली नहीं देवी मेरे मन मंदिर की,
पर याद रहे यदि हाथ न आई प्रिय वीणा अनुपम स्वर की;
तो यही खड्ग औ तुम होगे, चोरों का सर मैं छाटूगा,
अकड़न लतिकाओं की निकाल, तरुओं को जड़ से काटूगा;
जल थल नभचारी जीव सभी बिंध जायेंगे इन तीरों से,
सिंहों के सर लोटेंगे फिर रेते पर पड़े मतीरों से;
पर आह कहाँ मैं बहक गया इस व्यर्थ रोष का क्या है फल,
अब पंथ पार होगा कैसे जब नहीं रहा सम्बल का बल;
थक गये खोजते हुए उसे, अव क्या हो, बैठ विचार करें,
थाती अपनी हम खो बैठे, रोगी का क्या उपचार करें;

*

सर पकड़े जब बैठ गया वह, मुँह लटका, घबड़ा कर,
पीछे से आ आँख मूँद ली, तब ललना ने आकर;
बोली आँख नहीं खोलूँगी, कहो हाथ है किसका,
हो आया रोमांच, युवक ने कहा, साथ है जिसका;
फिर धीरे से हाथ पकड़ कर निज पटके से बाँधा,
कहा दंड मैं दूँगा उसको, डाली है जो बाधा;

राम ! राम ! तुम कहाँ छिपीं थीं मैं चिंता में रोया,
अब तक दया न तुमको आई मैंने धीरज खोया;
बहुत सताया मुझको तुमने अब तुम सँभलीं रहना,
मैं भी अपना दाँव चुकाऊँ तब तुम कुछ मत कहना;
देवी—क्यों कलंक-टीका सर लोगे दो दिन हमसे हँस के,
अपना गला फँसाओ मत यों स्नेह जाल में फँस के;
तुम सैनिक बन लड़ो विश्व में अपनी साख जमाओ,
निज आदर्श छोड़कर मेरे पीछे मत गिरि जाओ;
बने सुधाकर विचरो नभ में, बनी कुमुदनी सर में,
धर प्रतिबिम्ब लिपट हंस लूँगी भूल किसी अवसर में;
हम दोनों का पंथ भिन्न है, तुम विरक्त संयासी,
मैं माया की लिये कामना, दीपक में ज्वाला सी;
जाओ, अपने शून्य जगत पर विजय प्राप्त कर लूँगी,
और नहीं तो गोद सरित की जीवन से भर दूँगी;
चन्द्र—रुष्ट हो गयीं इन बातों से, बहक भूल थी मन की,
इसमें सार नहीं था कुछ भी, बात न थी उलझन की,
यह झगड़े की बातें छोड़ो, हिल मिल बैठें आओ,
नौका जल में बँधी हुई है, खोलो उसे चलाओ;

११

चन्द्रगुप्त—दक्षिण पथ में आ पहुंचे हम, कुछ दिन यहाँ विचर स्वच्छंद,
विहर तुम्हारे संग यहाँ पर जीवन का लूटें आनन्द;
चारों दिशि पर्वत श्रेणी ने दीवारों सी करके ओट,
प्रकृति नटी की केलि-भूमि के रक्षा हेतु रचा है कोट;
पुलक सरोरुह, वर पर्वत के अँग अँग से है झलक रहा,
उछल उछाह प्रपात हृदय से छम छम कर है छलक रहा;
अंग अंग भू का प्रफुल्ल है, मानस जीवन युक्त सरस,
पल्लव पल्लव से, रज कण से, शोभा झरती बरस बरस;
फूट अनन्त शैल खंडों से, सरस श्रोत बन, बहा उमंग,
जिसकी जल तरंग की गत पर नाचा करते हैं सारङ्ग;
परिरम्भन हित झुकी बल्लरी, सकुची, देह समेटे सी,
लचक लचक लवंग लतिकाएँ तृण में देह लपेटे सी;
धूप छाँह से खेल रही है लुकझुक कर लावण्यमयी,
नीडों ही से विहग बालिका निरख रही छबि नयी नयी;

अंखुए निकल, अंगूठे पर उठ, किसे ढूँढ़ते आँख लगा,
अलि आरती उतार रहीं, बल्लरियाँ, कलिका-दीप जगा;
तेजपात की तेज महक से सुरभित है सारा कानन,
इला मोतियों के गुच्छों से, शोभित है बन का आनन;
नागबेलि की रेलठेल है अगणित भीटों पर छाई,
हरी भरी झीलें से झलकी पड़ती जीवन गहराई;
चन्दन के बिरवों की बीथी बहा रही है सुरभि लहर,
पत्थर के भी पीर न उपजे, चन्दन चढ़ा हुआ है सर;
खोह कंदराएँ हैं सुन्दर है हरम्य का सा आकार,
जिसके भीतर ऋषियों और अप्सराओं ने किया विहार;
कैसी है यह गुफा मनोहर, चौड़ी इक प्रपात की धार,
उसके मुख को घूँघट देती, नाच रही है उठा फुहार;
भीतर जा कुछ ऊँचाई पर इस प्राँगण के दोनों ओर,
जहाँ झरोखे से ऊपर के आता रहता सूर्य अँजोर,
बने हुए हैं कोष्ट विशद दो लें मिश्राम यहीं तत्काल,
ले तूलिका, पत्थरों में भी, चित्र बना, जीवन दें डाल;
भीतिचित्र तुम बना बना कर, भर दो रंगों से यह थल,
छेनो ले मैं मूर्ति गढ़ूँगा करके अपना स्वप्न सफल;
सम्मुख बैठे भाव भंगिमा की झाँकी लूँ मन में खींच,
फिर सुंदर प्रतिमा गढ़कर इस मंदिर को दूँ छविसे सींच;

चन्द्रगुप्त—भीतिचित्र यह तुमने खींचे ? सुंदर रंग भरे हैं,
फले हुए आमों के ऊपर तोते हरे हरे हैं;
कुछ उड़ते हैं, कुछ बैठे हैं कुछ हैं पंख फुलाते,
पंजे में ले कुछ मीठे फल प्रेम सहित हैं खाते;
जीवित-से प्रतीत होते हैं, ऐसा रूप भरा है,
काम-दहन की लीला का भी चित्र ठीक उतरा है;
है शिव अचल समाधि-सिंधु पर अप्सरादि की आँधी,
जिनके अंग-अंग की गति है ताल सुरों में बाँधी;

वह रसाल के घन पल्लव में कुसुम शरासन ताने,
निज सहाय ले, मनसिज बैठा चला ध्यान बिचलाने;
बिचल जायँ वे, मैं न डिगूँगा, ऐसी कामकला से,
हिमगिरि सा मैं नहीं हिलूँगा चक्कर से अचला के;
अपना ध्यान अचल, देवी का, कभी न मैं तोड़ूँगा,
जिसको मन में बिठा चुका हूँ कभी नहीं छोड़ूँगा;
चतुर चितेरे के चित्रों ने मुझे चित्र कर डाला,
है उपहार स्वरूप भेंट यह फूलों ही की माला;

देवी—बहकी बातें जाने दो तुम हे योगी आचारी !
बहुत टिप्पणी होली मेरी मैं हूँ अति आभारी;
चित्र एक हूँ लिये, छिपाये, इसे न दिखलाऊँगी,
कला पारखी के संमुख मैं इसको ले जाऊँगी;

चन्द्रगुप्त—दिखला दो दिखला दो आँचल में तुम नहीं छिपाओ,
हाथ जोड़ता सुमुखि तुम्हारे इतना मत तरसाओ;

देवी—छीनो नहीं दिखा देती हूँ पहिचानो तो जानूँ,
यह है, वही दूर से देखो, परिचय दो तो मानूँ;

चन्द्रगुप्त—यह प्रतिमूर्ति बता दूँ, सच, सच, इक प्रेयसि का पति है,
मनसिज को उतार रंगों में लिये हाथ में रति है;

देवी—ऐसा कहना महापाप है नहीं कलंक लगाओ,
सुनकर क्या संसार कहेगा कुछ लज्जा तो खाओ;

चन्द्रगुप्त—अच्छा मुझसे भूल हुई परिचय दे स्वयं चितेरा,
है किसका यह चित्र, कहो, यदि मान्य न निर्णय मेरा;

देवी—स्मृति का यह चिन्ह रहेगा इसे न तुमको दूँगी,
बिलग बिलग जब हो जायेंगे देख इसे रो लूँगी;

चन्द्रगुप्त—आगे बढ़ते ही हुए नित्य अंतिमी छोर पर पहुँचे हम,
संकुचित धरा हो रही यहाँ, हो रहा व्यास क्रमशः कम-कम;
पूर्वीय पच्छमी घाट यहाँ, दौडे आ, त्रोदधि संगम कर,
उठते ही गिरते ताल ताल पर, डूबे, नारिकेल सम पर;

यह रूप कुमारी कन्या का, सुर हेतु शिवाने, धारण कर,
था असुरों का संहार किया सारे उत्पात निवारण कर;
शिव रिझा न पाये कन्या को, मोहित हो, रहे तरसते ही,
सब देव, सिंधु-लहरी बनकर पदपंकज रहे परसते ही;
दक्षिणी द्वार रक्षिका देवि, तप करती जग-कल्याण हेतु,
भवसागर पार उतरते सब पा तेरी कृपा कटाक्ष-सेतु;
है धाम, जहाँ व्याकुल जीवन ने वारिधि के विश्राम लिया,
है ठाम जहाँ, जग की पीडा ने, पाकर शांति, विराम लिया;
फन काढ़े, भरता फुफकारें वह झपटा काला रत्नाकर,
पद नख से दबा किया ठंढा, रच रहा रास है नटनागर;
गौरीशंकर पद छूने को जब हो विभोर उमड़ा सागर,
पग पार्वती ने बढ़ा दिया कैलाश न डूबे भय खाकर;
जड़ चेतन में है समा गया, माया अनंत में लीन हुई,
त्रय शक्ति पुनः होगयी एक जो रही विचरती तीन हुई;
वह रासकुमारी सागर में, भाला की ताने हुए नोक,
भारतकी पहली चौकी पर जल दस्युओं को है रही रोक;
है यही नाक सुंदरता की हो गयी नाकसे नोकझोक,
धर लिया रास पलड़े ने भू, हलका, नभ पहुँचा, अमर लोक;
आपस में एक दूसरे पर, पानी उछाल जलक्रीडा कर,
रँग भर अरुणोदय-अलता से, पाहन, द्वीपों से क्रीडा कर,
झुकती ही उठ, बढती बढती, रेतीले तट पर लोट लोट,
लहराती वर दुकूल जिसमें फेनिल फूलों की लगी गोट,
लहरें आ आ, खेला करतीं, कन्याकुमारिका संग नित्य,
घनश्याम वारिवनिताओं सँग रच रास सतत कर रहे नृत्य;
माणिक करके, सारा पयोधि, बालार्क, चरण पर रहा रोल,
पढ़ रहा वरुण है विरुद सतत, फिर सप्तद्वीप में, पीट ढोल;
इस सरस अजिर में देवी के मुक्ता के चौके पूर पूर,
आरती उतारा करती हैं, आ अमा, खडी ही दूर दूर;
ले सुधा पूर्ण मंगल कलसा, राका आ, द्वार सजाती है,
सुन जलतरङ्ग गत किरणमाल भी नाच नाच बल खाती है;

कर छूम छनन रँग भरे मेघ अम्बर से रस बरसाते हैं,
जल-चुंबी पाहन खंडों पर बैठे पक्षी कुछ गाते हैं;
इस पावन थलका वायु सलिल अध्यात्मिक पाठ पढाता है,
तज जग-प्रपंच रम रहें यहाँ, ऐसा कुछ मन में आता है;
रङ्गीन सीपियों, शंखों से, चित्रित तट बना मनोरम है,
है ॐ ॐ कर रहा अनिल क्षण क्षण कण कण रव सोहम है;

२०

देवी—नींद चुरा है रही आँख, मैं कब से बुला रही हूँ,
सोती नहीं हृदय की धड़कन, कब से सुला रही हूँ;
नहीं हाथ को हाथ सूझता है ऐसी अँधियाली,
चारो ओर घोर सन्नाटा, घटा घिरी है काली;
तुम हो घोड़ा बेंच सो रहे, भरते हो खुर्राटे,
यह थल बड़ा भयानक लगता, रात न कटती काटे;
सैनिक जागो आहट सी है, आता कौन इधर है,
ज्वाला निकल रही है कैसी, देखो लगता डर है;
चन्द्रगुप्त—करना क्षमा, हवा ठंढी थी भींगी रात अंधेरी,
वीणावत स्वर सुनते सुनते, आँख लग गयी मेरी;
क्या बतलाऊँ इन आँखों पर रहा नहीं वश मेरा,
बरजोरी कर इसमें कोई किये हुए है डेरा;
सूत्रधारिणी वही मूर्ति पट खोला मेला करती,
आँखमिचौनी दिवारात्रि से वह ही खेला करती;

वही मोहिनी इन आँखों पर फैलाये है माया,
उसने ही पट-पलक गिरा कर बरबस मुझे सुलाया;
लीलामयी तुम्हीं बतलाओ इसमें दोष हमारा,
दार पुरुष संचालित होता दारा माया द्वारा;
झपकी ली सुनते ही सुनते तेरी नयी कहानी,
हाँ क्या कहा, एक था राजा और एक थी रानी;

देवी—तुम्हें कहानी की सूझी है, देखो आँखें खोलो,
वह लो, कौन पिशाच आगया, उठो शीघ्र ही बोलो;

चन्द्रगुप्त—तू है कौन? इधर जो आता नहीं प्राण का डर है,
तुरत भाग जा उलटे पैरों क्षण भर का अवसर है;

कापालिक—'मैं कापालिक 'शंखधार' हूँ, युवक न तुम गरमाओ,
इन लोहे के लघु अस्त्रों का मुझे न भय दिखलाओ;
पूर्णाहुति में, चंडी पर बलि देने की थी चिन्ता,
उसी प्रतीक्षा में व्याकुल हो मैं घड़ियाँ था गिन्ता;
अनुष्ठान सब पूर्ण हुआ अब, शुभ अवसर है आया,
बलि देने को मिले व्यक्ति दो, चंडी तेरी माया';
ऐसा कहते हुए वहाँ पर कापालिक इक आया,
खप्पड़ की ज्वाला ने जगकर अद्भुत रूप दिखाया;
माँसल देह, रीछ से रोंये, क्षारपूर्ण तन काला,
मूँजदंड, कोपीन कसी कटि, मेरुदंड की माला;
मेद, मज्ज, जल जल खप्पर में, करते स्वल्प उजाला,
पड़ा युवक युवती को ऐसे, विकट जीव से पाला;
धूमिल धुँधले उस प्रकाश में लखकर रूप भयंकर,
युवती लिपट गयी साथी से चिल्लाई कँप थरथर;
युवक विचारा भी लखकर यह अकस्मात घबड़ाया,
ले करवाल, तड़प कर बोला, 'मूर्ख इधर क्यों आया;
भाग नहीं तो देवी पर बलि तुझे चढ़ा देता हूँ,
तेरा जीवन-दीप फूँक में, अभी बढ़ा देता हूँ;

कापालिक—मुझ पर तू तलवार चलावे! फट कराल काली छू!
वह उड़ गयी! करेगा अब क्या? देख शक्ति मेरी तू;

'छू चंडी' वह सिंह आ रहा उस पर करूँ सवारी,
'छू चंडी' वह अजगर आया, बनने को प्रतिहारी;
कुशल न होगी यदि कुछ हिचके आओ साथ हमारे,
बच जाने के नहीं सफल होंगे उद्योग तुम्हारे;
था संकल्प विवाहित जन ही बलि देने का मन में,
एक छोड़ दो भेज दिये चंडी माता ने क्षण में;
डरो नहीं, चंडी की जय हो, पीछे पीछे आओ,
देवी के चरणों में चलकर तुम अपनी गति पाओ;

देवी—हाथ जोड़ कर युवती बोली, हे मुनिवर विज्ञानी,
युवक विवाहित नहीं, व्यर्थ ही इनके बलि की ठानी;

कापालिक—तुम क्या जानो, इसकी पत्नी है इक राजकुमारी,
माँ चंडिके! खींच तू लाई इसको, है बलिहारी;

चन्द्र—बोला युवक, किन्तु यह रमणी तो है अभी कुमारी,
इसका मैं साखी हूँ, बलि के नहीं योग्य बेचारी;

कापालिक—है विवाहिता, नहीं फँसूँगा मैं बातों के पुल में,
देश मगध में ब्याह हुआ है इसका उत्तम कुल में;
हाँ, ना, कुछ कर सके नहीं वे, दोनों चिंता में गड़,
एक दूसरे का मुख रहे देखते विस्मय में पड़;
हाथ फेर सर पर, कापालिक दौड़ा आगे आगे,
युवती युवक खिंचे जाते थे पीछे भागे भागे;
संग संग जा रुके, जहाँ था उस तांत्रिक का डेरा,
जिसका था आवास चतुर्दिक नागफनी से घेरा;
मंदिर के था निकट अस्थि पिंजर समूह का टीला,
एक ओर सूखी सरिता का था पेटा रेतीला;
एक ओर थी अग्निकुंड में आग धधकती धू धू,
तम ही की आहुति देता था इक उल्लूक जप हू हू;
सम्मुख मंदिर में काली थी जिह्वा लाल निकाले,
धूमिल अंधकार में परदे पड़े हुए थे काले;
बंदी करके दो कोष्ठों में उन दोनों को डाला,
एक योगिनी ने उनकी रक्षा का भार सँभाला;

कापालिक जब गया शयन को, योगिनि आ मणि दीपक बाल,
कोष्ठ खोल, दोनों बंदी को, देख भाल कर, भोजन डाल,
बड़े सोच में निकली बाहर, किसी ध्यान में खोई सी,
नींद नहीं आँखों में आई, पड़ी रही हाँ सोई सी;

*

नक्षत्रों की मंद ज्योति में लताच्छन्न बीथी में हो,
कभी कंटकों की क्यारी में, मार्ग भूल, चिंता में खो;
उलझी हुई विचारों ही में, उलझा अंचल सुलझाती,
एक योगिनी ठोकर खाती, आतुर हो बढ़ती जाती;
पहुँची वह उद्यान पार कर, अमराई तम में खा चोट,
रगड़ रगड़ चकमाक, जलाया दीपक, ले अंचल की ओट;
चुपके एक कोठरी खोली, लिपटा आसन भू पर डाल,
उसी कोष्ट के कोने से, मंजूषा उसने झाड़, निकाल;
एक प्रसाधन-पिटक उठाया जो उसके भीतर था बंद,
फिर मंजूषा की माया लख, करती रही हृदय से द्वंद;
बंद किया, फिर खोल बंद कर, बंद खोल कर कितनी बार,
ललित लाल कौशेय निकाला अन्तः गैरिक चीर उतार;
धारण किया उसे युवती ने, अलंकार बहुमूल्य पहन,
वह विरक्त योगिनी तुरत ही गई मोहिनी प्रमदा बन;
स्वर्ण-शलाका से खंजन दृग में अंजन दे मृगनैनी,
सँवर, प्रसाधन, अनुलेपन से, मुक्तामय काढे बेणी;
दो धाराएँ लटकी उसकी वक्षस्थल के शृंगों पर,
जिसपर अँचल के बादल उड़ते फिरते थे लहर लहर;
शुभ्र स्तनंशुक में से झलके अर्धप्रसित युग शशिमंडल
हेम मेखला कटि प्रदेश में नीवि बंध पर है चंचल;
कर्णफूल, चूडामणि, कंठा, हेमसूत्र, बैजंती माल,
मुक्ताबली; हारशेखर, केयूर, बलय औ मुक्ताजाल;

पहन, अलक्तक लगा, लोध्र के पुट से रंजित किए अधर,
किंकिणी नूपुर से आलंकृत ललित नखों में लाली भर;
अलंकार मंडन से भूषित मूर्तिमती सजीव छवि बन,
दीप बुझाकर अँधकार को और बनाती हुई गहन;
इक कटार कटि में लटका कर, पट कर बंद, दबाती पग,
बंदी गृह की ओर चल पड़ी, इधर उधर लख बनी सजग;
अकस्मात, आलोक लिये आ खड़ा हुआ कोई मग रोक,
'अभिसारिके ! कहाँ रजनी में जाती हो', बोला वह टोक;
'नहीं आजतक भुवनमोहिनी कभी गया था तुम पर ध्यान,
आओ प्रिये अंक में भर लूँ, न्योछावर कर दूँ निज प्राण;

देवी—तू है कौन करे चेष्टा जो मेरे पथ में आने की,
और धृष्टता करे संग मेरे कुचाह दिखलाने की;
कहा बिगड कर ललना ने, कापालिक ! तुझे हुआ क्या आज,
यह अनुचित व्यवहार दिखाते हुए न आई तुमको लाज;
राह छोड फैली बाँहे ये आगे बढ़े नहीं इक तिल,
अथवा तू पृथ्वी चूमेगा, खा कटार, रजकण से मिल;
मैं स्वतंत्र हूँ सतत विचरने का हर ओर मुझे अधिकार,
मुझे रोकने और टोकने वाला कौन बना प्रतिहार;
इतना गिर कर मत कलंक लो इतना सरपर चढ़ो नहीं,
माया तज जब बने बिरागी बर्जित पथ पर बढ़ो नहीं;
बढ़े एक पग जो आगे तो तुम हो या मेरी करवाल,
भाई भजन करो तुम अपना नहीं शीश पर नाचे काल;
कापालिक, पीछे हट, बोला, सखी रोषका करो शमन,
हो श्री वृद्धि, भगवती आओ, करूँ शक्ति का आह्वाहन;
नहीं भान था मुझे छिपी है यहाँ राख में चिनगारी,
ज्वाला की यह लपट लिपट है मुझे बनाती श्रृंगारी;
यदि उस पथ पर रहना ही था तो यह वेश बनाया क्यों,
पानी चढा सान दे दे कर आयुध गुप्त चलाया क्यों ?
बना गृहस्ती वेष पंथ का नियम किया है तूने भंग,
दंड भोगने पर तत्पर हो, हम पर नहीं जमा तू रंग;

या तो अधर-सुधा-रस देकर हो अधीश्वरी सी विचरो,
और नहीं तो चंडी पर बलि हो, शोणित दे, किया भरो;

योगिनी—चल ओ नीच भिखारी आया है तू मुझे दिखाने क्षोभ,
और लंगोटी की दुनिया की रानी होने का यह लोभ;
सम्राज्ञी बन देख चुकी मैं, जी भर वैभव का संसार,
आई यहाँ ढूँढ़ती मन को, सुख स्वप्नों को ठोकर मार;
झीनी आशा प्रिये मिलन की मन में विरच रही विद्रोह,
और नहीं तो बलि होने में मुझे नहीं प्राणों का मोह;
यदि हो भक्ति परखनी माँ की तो मंदिर में आओ साथ,
शीश उतार चढ़ा दें अपना, तुरत हाथ पर मारो हाथ;

कापालिक—असमय के मत गीत सुनाओ, दिखलाओं देवी रख रीति,
एक बार फिर उस जीवन में कर लो इस प्रेमी से प्रीति;
दौड़ा कामअंध कापालिक आलिंगन को बाँह पसार,
तड़प चञ्चलासी चपला ने लिया खड्ग से शीश उतार;
गरम रक्त से नहा उठी जब पिचकारी सी निकली धार,
लथपथ हो, रख खड्ग कोष में, बढ़ी, लोथ को ठोकर मार;

२१

योगिनी—दिव्य दिवाकर, गुप्तवंश का ! तू बन गया राहु का ग्रास,
तेरे क्षय होते ही होगा सारे ग्रह उपग्रह का नाश;
हरि इच्छा, वश भर मैं फिर भी टालूँगी अनिष्ट, वह क्लेश,
अंधकार में, बंदीगृह में, जब दो घड़ियाँ जीवन शेष;
है आश्चर्य वीर बंदी तू, निर्भय निश्चल सोता है,
तुझे नहीं चिन्ता क्या होगा, बाहर क्या क्या होता है;
इस कठोर पृथ्वी पर एक चटाई बनी सेज सुखकर,
करवट के बल सोता बंदी, बाँह शीश के नीचे धर;
आनँद-लहरी के तरंग में डूबे होंठ चमकते दाँत,
दिव्य ललाट प्रशस्त लोटती है जिस पर मधुकर की पाँत;
अधर हिले कुछ निकले अस्फुट, मधुर शब्द मुख से दो चार,
कान लगाएँ, सुनें पास से, निंद्रित का आंतरिक विचार;
बंदी—गरुड़ध्वज के एक सूत्र में, भारत के बिखरे दाने,
पिरो पिरो कर, साम्राज्य का हार बनाने दो जाने;

योगिनी—यह क्या कहा ! देश-चिंता क्या अब इनमें भी जागी है?
अंतिम समय, शोक ! हे सैनिक ! निद्रा तेरी भागी है;
इतना ही था प्रश्न तुम्हारा तो तुमने क्यों छोड़ा घर,
ले करवाल किया था तुमने कितने ही देशों को सर,
सेनापति थे, मेरे प्रिय थे, तब थी बाधा नहीं विशेष,
संधि तुम्हें करनी थी मुझसे बना दिया था तुम्हें नरेश,
नहीं लड़ाई थी अस्त्रों की, नहीं जान जोखों की बात,
एक तुम्हारे हाँ करने पर सभी शांत होता उत्पात;
तुम राजा मैं रानी होती, जीवन हो जाता स्वच्छंद,
नहीं किसी की स्वर्ण श्रृंखला रख सकती थी मुझको बंद;
चूक गये तुम, मैं भी भूली, दोषी है मेरा उन्माद,
प्रायश्चित करलूँ मन में था, मिला न अवसर, रहा विषाद;
ओ स्वप्नों के मूर्ख खिलौने ! साम्राज्य की सूझी आज,
जब अस्तित्व मिटा देने को काल गिराने को है गाज;
हाँ साम्राज्य बना सकता था, कर सकता था भारत एक,
मैं तुझको सम्राट बनाती, जग करता तेरा अभिषेक;
कामरूप से गांधार तक, दक्षिण-सिंधु धवित सब देश,
उत्तर में पश्छिम प्राची तक हिमगिरि जहाँ पसारे केश;
होते साम्राज्य अंतर्गत, गरुड़-पताका फहराती,
छिन्न भिन्न सब शक्ति हमारी एक सूत्र में बँध जाती;
यदि तुम अपनी टेक छोड़कर मेरे सँग करते सहयोग,
नहीं गर्व से ठुकरा देते पैरों पड़ा स्वर्ण-संयोग;
था अवश्य कुछ मोह हृदय में तुमसे रखना क्या चोरी,
पर स्वदेश की शुभ्र कामना से थी अधिक हुई भोरी;
कोमल रामगुप्त जिसको था कठिन उठाना काया भार,
जिसके था विकास को, रस रसना तुषार ने डाला मार;
कैसे वह सँभालता शासन, उसे कहाँ इतना अवकाश,
सोचे, कहाँ देश जाता है किसका है हो रहा विनाश;
नहीं किसी के कर में बल लख रखने की भारत की लाज,
शक प्रसार, लख, देश-देह में, बनता हुआ कोढ़ में खाज;

मेरी दृष्टि पड़ी थी तुम पर, साहस बल के हे अवतार !
नौका संकट से बच जाती, बन जाते यदि तुम पतवार;
अनुभवहीन ! नहीं तुम माने, अब क्या भला स्वप्न में सार,
जब तुमने है नष्ट कर दिया अपना, मेरा भी संसार;
स्वप्न देखना ही है अब तो, सुखद बड़ी स्वप्निल माया,
यह अभिराम मेघमाला बन, शीतल करती तप-ताया;
जब दुर्दिन-हिमंत, जीवन के, सखा-पत्र-वर्गों को तोड़,
तिनके चुनते हुए, किसी पागल सा, नग्न, इकाकी छोड़,
झंझा से झकझोर झुकाकर, धूल चटाकर बारम्बार,
विरच यंत्रणा यंत्र विविध ही, करता रहता कठिन प्रहार,
तब व्याकुल का बन बसंत तू, स्वप्न ! उसे हुलसाता है,
नव आशाओं के पल्लव से उसके अंग सजाता है;
कुल क्षण को भर देता है फूलों से उसकी फुलवारी,
बहने लगती है जीवन में मधु-धारा प्यारी प्यारी;
निशि के ये छींटे, जीवित कर देते पीले पड़ते, धान,
काया-पिंजर में, निद्रा-सुख, रखता बंदी, पक्षी-प्राण;
चित्रकार तू बना स्वप्न ! सारे संसृति की आँखें मीच,
रजनी मिस से, पट पर सोने के, विचित्र चित्रों को खींच,
लोक कभी परलोक आदि की अद्भुत झाँकी दिखलाता,
दीर्घ विराम मुँदे दृग का, संसार स्वप्न है, सिखलाता;
सोते हैं हम या जगते हैं इसका पता बतावे कौन ?
जब संसार, स्वप्न के, देखा करते हैं हम निशिदिन मौन;
स्वप्न बड़ा तू समदर्शी है राव रङ्क पर एक समान,
कृपा दिखाता, कष्ट भुलाता, रखता दोनों का ही ध्यान;
हाँ, तो यही स्वप्न अब तेरी मुँदी आँख का खोल कपाट,
जीवन की संध्या में तुझको चला बनाने है सम्राट;
अच्छा, जाग ! प्रेम से यदि तू एक बार मेरा कर धर,
अधर लगा, तू प्राण फूँक कर वंशी में स्वर देवे भर;
तो नच जावे शेषनाग भी, पृथ्वी को डगमग कर दूँ,
तारों को मैं तोड़ गगन से, धरा अंग जगमग कर दूँ;

पृथ्वी को आकाश बना दूँ, नभ को मैं भेजूँ पाताल,
सारी प्रकृतिमात्र को बाँधू, रचकर अपना मायाजाल;
पंख हमारे तुम बन जाओ तब तुम मेरी लखो उड़ान,
दिनकर, प्राची-अधर चूम ले, तब देखे उसकी मुस्कान;
श्रीविहीन मुरझी लतिका को, एक बार फिर आ मधुमास,
कुसुम कटोरों में मधु दे, निज कर से पिला, बुझा दे प्यास;
एक बार बस एक बार फिर, छूने भर दो अपना पग,
जग जायेंगे भाग्य देश के किसी भाँति तुम जाओ जग;
जागो प्रिय जागो तुम जागो एक बार सचमुच जागो,
हे भारत सम्राट आर्य निधि कर्म क्षेत्र से मत भागो;
सम्बोधन सुन चौंक उठ पड़ा, युवक अभी निद्रा में चूर,
मणि दीपक के लघु प्रकाश में धुँधली सी आकृति को घूर;
लाल लाल आँखों को मलता, ललना का नखशिख लखकर,
बोला, मेरे कानों में सुन पड़ा अभी था किसका स्वर;
योगिनी—मैंने ही सम्राट हमारे, मैंने तुम्हें जगाया है,
मैंने ही तो लगे दृगों को लड़ने को बिलगाया है;
बंदी—स्वर लहरी यह है परिचित सी, रूप कहीं यह देखा है,
योगिनी—इसी केन्द्र पर खिंची वृत्त की यह तो केवल रेखा है;
बंदी—अंतरिक्ष की माया बनकर कौन डालने आई जाल,
इस कुरंग को चली फसाने वीणा से स्वर कौन निकाल;
योगिनी—निज बंसी में मुझे नाथ कर तुम दे ढील, खिलाते हो,
हार गयी जब खींच निकट ही बे पानी तड़पाते हो;
जीवन बन मत त्यागो मुझको, तुम बिन तोड रही हूँ दम,
याद करो जब एक बने थे जीवन के प्रभात में हम;
बंदी—आओ निकट तुम्हें देखें तो कुछ सूत्रों का अर्थ लगे,
बंदीगृह के अंधकार में स्नेह-दीप की ज्योति जगे;
योगिनी—कहा निकट आकर ललना ने, क्षमा माँगने आई हूँ,
दुर्व्यवहार आपके सँग कर, बहुत बहुत पछताई हूँ;
जिसके मद ने क्रूर बनाया राज्य दिया वह मैंने छोड़,
जब से तुम खो गये दिया संसृति समाज से नाता तोड़;

इस निर्जन वन के मंदिर में तप करती थी ले सन्यास,
एक देवता के मंदिर के शिलान्यास का किए प्रयास;
हुई तपस्या पूर्ण आज जो मैंने तुमको पाया है,
कालान्तर से भाग्यचक्र मेरा शुभ ग्रह में आया है;
डूब रही है बचा न लो क्यों गुप्त राज्य की नौका खे,
चढ़ा शिखर पर नहीं गिराओ किसी जीव को झोंका दे;

बंदी—देख रहा हूँ ध्रुवसम्राज्ञी स्वयं! नहीं होता विश्वास,
उस हरम्य की रहने वाली कैसे आई मेरे पास;
हो तुम वही अप्सरा सुंदर इक उद्भ्रांत प्रेम की पीर,
था जिसके रसाल पल्लव में छिपा मनोज चलाता तीर;
भावी सी तुम आगे आगे जहाँ तहाँ आ जाती हो,
इस कापालिक के आश्रम में कैसे ठोकर खाती हो;
यदि उसने ही तुम्हें पठाया, हो बलि का हो गया समय,
जीवन का परिहास छोड़ ले चलो अमर में करने लय;

योगिनी—मैं बलिदान स्वयं होऊँगी तुम पर या उस देवी पर,
तुम पर आँच न आने दूँगी छोड़ो नहीं व्यङ्ग के शर;
कापालिक कुचक्र की इति कर, तुम्हें छुड़ाने की कर युक्ति,
देने आई हूँ इस थल, बलि जा कर, तुमको बंधन मुक्ति;
सूखा नहीं स्वदेश प्रेम हो मन मुझ से हो नहीं उचाट,
तो स्वतंत्र सहयोग मुझे दे बन जाओ भारत सम्राट;

बंदी—देश-दुर्दशा देख हृदय में जाग जाग उठती है आग,
उस माया में कौन पड़े पर जब हमने ले लिया विराग;

योगिनी—तो क्या है आदेश योगिनी अब मैं यों ही बनी रहूँ,
निष्क्रय होकर मृतःप्रायसी जीवन की बंदिनी रहूँ;
आँखों के सम्मुख मैं देखूँ रामराज्य का होते क्षय,
वीर पिता की वर सन्तति का, क्या है ऐसा ही निश्चय?
यह मैं सहन नहीं कर सकती इन चरणों ही के तट पर,
पानी वाली किसी धार से जीवन घट में दूँगी भर;
यह लो तुमको मुक्त कर दिया लेलो यह मेरी करवाल,
जीवन बंधन काट इसी से मेटो सब भव का जंजाल;

बंदी—मुक्त बना कर इस बंधन से दिया चक्र में मुझको डाल,
छेड़ा इक संग्राम हृदय में इस प्रशांत से मुझे निकाल;
यह आवास बड़ा सुंदर है मन की बहक हटाने को,
सत्पथ से बहके मानव को पुनः मार्ग पर लाने को;
जग का मायाजाल छोड़ भव में विलीन हो जाने को,
उस मदांध तरुणाई के स्वप्नों के जाल भुलाने को;
नियति यहाँ पर ले आई थी कुछ विराम दिलवाने को,
देह अपावन की पूजा श्री चरणों पर चढ़वाने को;
यह सुयोग संयोग छोड़कर, कहती हो लें झगड़ा मोल,
विश्वराग से यह विराग आनंदमयी है देखो तोल;
इस से देवि ! न छेड़ो मुझको, होनी है जो होने दो,
फिर भ्रमता मैं कहीं फिरूँगा इक क्षण मुझको सोने दो;
योगिनी—इतना सोये गया पलट युग अपना जीवन नष्ट किया,
मग्न भावना कर भामिनि की भावी का पथ भ्रष्ट किया;
स्वार्थनिरत, आनंद लूट कर आरत जन को कष्ट दिया,
बालक हठ पर डटे रहे तुम यद्यपि सबने मष्ट किया;
ऐसा क्या मनमोदक खाना, विष है यह, मिष्टान्न नहीं,
वह भावना भक्त की कैसी जहाँ विश्व-कल्याण नहीं;
करे न हित जो देश जाति का, त्याग व्यर्थ, बलिदान नहीं,
कारागृह में शांति टटोले, कायर है बलवान नहीं;
इस भ्रम में एकान्त वास की मैंने भी नापी दलदल,
शांति नहीं ब्रह्मांड मात्र में जब अपना मन बना विकल;
है कर्त्तव्य-परायणता ही सब से उत्तम जीवन फल,
बाधाएँ हैं पीस डालता दृढ़ मन के निश्चय का बल;
छोडो अब यह स्वाँग धर्म का नहीं कर्म से बनो उचाट,
सीधे सैनिक कल बनते थे लड़ने की देखी थी बाट;
आज कहाँ यह ज्ञान आगया किसने तुम्हें पढ़ाया पाठ,
हाँ इक देवी रही संग में जिसने बदला हो यह ठाठ;
आओ उसे बधाई दे दूँ, उससे ही मैं करूँ विनय,
ओज भरा भाषण वह देकर मन से तनिक भगादे भय;

उदासीनता दूर हटा दे भरदे एक अटल निश्चय,
रचें महाभारत, अर्जुन सा सकुचाते को कर सक्रय;

चन्द्रगुप्त—यह माया है अति दुखदायी वह ब्रह्म परम सुख का स्वरूप,
इन दोनों ही में सोच समझ तू कर निर्धारित पथ अनूप;
भारत को भगवत पर छोड़ो, यह देश राम को सौंप गुप्त,
तुम देश प्रेम दो धाराओं में सरस्वती सी बनो लुप्त;
मुझको प्रमदा का राजरोग तुमको प्रियतम का चिर वियोग,
दोनों ही ले करके विराग अब करें योग संयोग भोग;

योगिनी—तुम घृत के छींटे देते हो यह जलती आग बुझाने को,
तुम सरिता में मुझको ढकेल कहते हो सूखा आने को;
विषधर को चोटिल बना उसे कहते हो साथ खिलाने को,
मेरे अन्तर में है प्रलय मची कहते हो शांति दिखाने को;
क्यों आँच नहीं हम पर आवे जब जगती में हो लगी आग,
इस काजल भरी कोठरी से कोई बच जावे कहाँ भाग;
हाँ आग हृदय की बुझ सकती यदि प्रेम वारि बरसा देते,
दिनकर बनकर संकुचित हृदय-कलिका को आ सरसा देते,
मंत्राङ्कित मोहन दृग कुमार लखते ही बस में करें नाग;
सूखी खेती कर हरी भरी मुस्कान मधुर भर दे सुहाग;
तुम से नाता बस बना रहे, सारे जग ले लूँ विराग,
अब भाग्य जगो, सो लिये बहुत, उस कर्मक्षेत्र से भाग भाग;
असफल हो आज मनोरथ में जीवन से मैं ले लूँ विरक्ति,
मुझको कर देवे उदासीन अपनों से प्रिय की अमर भक्ति;
पर वीर तुम्हें अधिकार नहीं स्वजनों से विदा मांगने का,
हे आर्य तुम्हें अधिकार नहीं अपनों को छोड़ भागने का;
क्यों राग विराग अलापो तुम जब देश तवानन लखता हो,
जब आततायियों के कर से दीनों का हृदय विलखता हो;

जब समर चतुर्दिक होता हो रणचंडी बलि हो रही माँग,
हो फूट लूटती घर अपना, कूवे में हो पड़गयी भाँग,
भाई भाई हों उलझ रहे, माला का तागा टूटा हो,
अनबन आपस में होने से जब साहस सब का छूटा हो,
संगठित रूप से परदेशी जब जड़ मेरी हों रहे खोद,
जब संकट सर पर नाच रहा हो, मगध देश में हो विनोद,
जब गुप्त वंश का बृहत् राज्य औरों के कर में जाता हो,
जब इस सोने की सीता को रावण इक हरने आता हो,
तब तुम क्या हो करके विरक्त, बैठे हाथों पर हाथ धरे,
निज देश जाति का महा पतन देखोगे हँस कर हरे हरे!
जिस साँचे में संसार, वीर! चाहो ढालो, जायेगा ढल,
पर क्या कायर बन भूल गये, हे आर्य पिताकी कीर्ति विमल;
वे 'सर्वाराजोच्छेत्ता', 'कवि', वे 'समर-शतविनत-विजयी' वर,
हिमगिरि था जिसका ध्वजादंड, यश चारण बन जाता सागर;
मालव[1], यौधेय[2], कुशान[3], काक[4], शक[5], को जिसने आधीन किया,
अरियों को सर कर, भारत को गौरव पद पर आसीन किया;
संगीत-कलाविद, कवि, पंडित जिसके संमुख मानी अनेक,
'काश्यप', 'नारद', 'तुंबरू' सरिस ने भी घुटने थे दिये टेक;
फरसा, तोमर, नाराच, प्रास, असि शस्त्रों के सब घाव सघन,
करते थे सुन्दर सुदृढ़ देह में निर्भय मन का उद्घाटन;
वे देवपुत्र, शाहानशाह, शक जिनको आत्म निवेदन कर,
दे भेंट स्वकन्या गर्वित थे, विद्रोही कँपते थे थरथर;
ले गरुड-राजमुद्रा-अंकित-शासन, वे करद, अनेकों गण,
सब विषय, भुक्तपति, मित्रराष्ट्र, आज्ञा ले ले करते शासन;
साम्राज्य वही क्या देखोगे अरियों का होते ग्रास आज?
अपना गौरव मिट्टी में मिल जाने दोगे खा, वीर! त्रास!
हो गयी अवस्था शोचनीय निर्बल सेनानायक पाकर,
कठपुतली राजा होने से रिपुओं ने पुनः उठाया सर;

१—५—जातियां विशेष।

उस वङ्गदेश के करद भूप, विद्रोही हो, स्वाधीन बनें,
हो गये विदेशी पुनः बाघ, जो दबे हुए थे दीन बने;
शक शत्रु आक्रमण विकट धार, अब मगध देश की ओर चली,
छोटे महिपों के राज्यक्षेत्र को निज बहाव में बोर चली;
यह सप्तसिंधु, सौराष्ट्र आदि इनका सब कुछ है हो बीता,
गण सेनायें सब हार गयीं शकक्षत्रप ने मालव जीता;
है कौन वीर जो देखेगा भारत को शक के पदतल में,
साम्राज्य गुप्त सम्राटों का, खण्डित हों बँटते अरिदल में;
हे भगवन् इससे पहले ही कि मगध देश पर गिरे गाज,
हे ईश्वर इससे पहले ही कि गुप्तवंश की जाय लाज,
इससे पहले कि वीर वंश के युवक चूड़ियाँ पहन डरें,
इससे पहले कि रावण को सीता देना हम सहन करें,
हे भगवन् पृथ्वी फट जाती, मैं उसमें तुरत समा जाती,
मैं कनी चाटकर सो रहती, या कुछ चुपके से खा जाती;
इक ओर नाश का वह पिशाच आँखें फाड़े है देख रहा,
साहस के पथ में कौन इस समय डाल मीन औ मेष रहा;
अधिकार सभी का होता है इस मानव पद के धारी पर,
अधिकार प्रेम का होता है जनता के परम पुजारी पर;
पर इन सबके ऊपर भी है निज जन्म भूमि का प्रेम अचल,
जननी है वही पुकार रही, बलि होने का प्रण करो अटल;
आओ हम दोनों चलें वीर ! माता की लाज बचा लेवें,
हो एक, जन्म भू का अखण्ड शृङ्गार सहर्ष सजा देवें;

है भरी जवानी सी पगली, पग कहाँ धरा कुछ ध्यान नहीं,
सरि ! सागर संगम को व्याकुल, किस पथ से जाती ज्ञान नहीं;
लज्जा ने रोड़े अटकाये, कक्षों से कावा काट गयी,
जिन टीलों ने टोका टुक भी उनको लहरों से चाट गयी;
इस बाट गयी उस बाट गयी इस घाट गई उस घाट गयी,
फूलों को अंचल में भरती ही भरती हुई सपाट गयी;

सन्ध्या सकुचाई सी आई घूँघट देती कुछ समझाने,
तारे भी तार मिलाते थे कुछ बुनते थे ताने बाने;
विकला कहती कल सोचूँगी कलकल करती ही गयी निकल,
ऊँचा नीचा दिखलाने वाली पृथ्वी भर को बना विफल;
बच, खड़े कगारों की बाँहों से, देह सिकोड़े, गयी सरक,
बच, लचते तरुओं की छाँहों से, मनको मोड़े, गयी सरक;
टक्कर लेती, चक्कर देती, बढ़ती जाती है लहराती,
है अपनी ही धुन में भूली, गुनगुन कर मधुर गीत गाती;
शृङ्गार किये, अभिसार किये, जीवन में गहरी प्यास लिये,
व्याकुल सी कभीं निराशा में, आशा का क्षीण सुहास लिये;
इक निर्मोही की सुधि करके, कुछ ठिठक ठिठक कर पग धरती,
कर पुनः भरोसा भोलेपन पर, रखती डग, डगमग करती;
फिर स्वप्न देख कुछ सुन्दरसा, अल्हड़पन का अंकुश खाकर,
भँवरों की गुत्थी सुलझाती आगे आकर पीछे जाकर;
चढ़कर मनोज के तीरों पर छुट गये बाण सी निकल पड़ी,
सागर ने बाँह पसार हृदय में खींच लिया लख विकल खड़ी;

चन्द्रगुप्त—तुम अमर लोक की देवी हो, मैं मानव, है कितना अंतर,
तुम बन प्रतीकिनी श्रद्धा की, उठ गयीं प्रेम से भी ऊपर;
तुम रहीं पूजती पत्थर को, मन में दृढ़ भक्त भावना रख,
यह दैविक रत्न निरखने पर भी, परख न पाये मेरे चख;
तुम सूक्ष्म शक्ति हो विद्युति की, ध्रुव आकर्षण-धारा-अशेष,
तुम अपनी ओर खींच लेतीं, बरबस, करके मन में प्रवेश;
हे त्याग और अनुराग मूर्ति, तू ही जग सत्ता नाड़ी है,
पाने में तेरी गूढ़ थाह, नर अब तक बना अनाड़ी है;
ध्रुवदेवी—है देवलोक में प्रीति नहीं, हैं जीवन रस से रहित अमर,
वे इसी प्रेम के पाने को अवतरित हुआ करते भू पर;
जो है स्वतंत्र, जो अजर अमर, निर्लेप सदा जो निर्विकार,
उस देव-कल्पना के बाहर है, इस विकार ही का विचार;

यह तो विभूति है इस जग की, इसको पा, मानव बने अमर,
ब्रह्मांड निखिल, विधिका प्रपंच, इस मर्म हेतु देते चक्कर;
संसृति-तरुका है सुमन प्रेम, जीवन बसंत का मृदुल हास,
उल्लास भरे संगम सुख में दो जीवन का इक महारास;
इस के पाने की अभिलाषा जीवन की मेरी अमिट प्यास,
हिमकण को मिटा, मिला लेते अपने में दिनमणि खींच पास;
इस अमर कोष पर अमर लोक की सारी सम्पति न्योछावर,
इस लौकिक रसपर सकल अलौकिक शांति और गति न्योछावर;
नारी ही मुझको रहने दो देवी देवों को है प्रणाम,
वरदान प्रेम का पाकरके होगयी आज मैं पूर्णकाम;

२२

चन्द्रगुप्त—बाहर हूँ अब कारागृह के धन्य तुम्हारी माया है,
चकाचौंध होती आँखों में, इतना दिन चढ़ आया है;
देवि! सहचरी कहाँ हमारी, उसका भी करना है त्राण,
भय से कहीं भीरु बाला के, गये न हों उड पक्षी प्राण;
आओ मुक्त करें उसको भी देखें दुखिया जीती है,
उसका भी सूना जीवन है सुख से वह भी रीती है;
है तांत्रिक से अभी निपटना, उसने तुम्हें नहीं टोका?
थाती उसकी तुम ले भागीं, नहीं किसी ने भी रोका?
हरे राम! यह शव है किसका, किसकी पूरी स्वाँस हुई,
चिरनिद्रा सो, कौन जीवनी कठिन काल का ग्रास हुई;
रत्नजटित इक खड्ग हृदय में पैठ मूठ तक सोई है,
रोनेवाला इस जगती में इसका रहा न कोई है;
योगिनी—हाँ उसने अपनी गति पायी भोगा निज करनी का फल,
निष्कंटक कर दिया मार्ग अब नहीं कीजिये मन चंचल;

आप यहीं निश्चिंत बैठिये, क्षण भर सहिये और वियोग,
तब तक मैं देवी के छुटकारे का करती हू उद्योग;

चन्द्रगुप्त—सुलगा दी किसने फिरसे वह बुझती सी चिनगारी,
आँखों ने किसके देदी संक्रामक यह बीमारी;
विद्रोह भरे जीवन ने, दी लुटा बची निधि सारी,
उठ पड़ा दर्द सोया वह, जीतीं चौपड़ अब हारी;
रूठे मनुहार मनाकर मैं फिर से गले लगा लूँ,
सरि के अमृतमय जल से जीवन की प्यास बुझा लूँ;
उठ रही पीर है कैसी मीठी मीठी मानस में,
हाथों से निकला जाता क्यों हृदय नहीं है बस में;
हठ की प्रत्यंचा टूटी अब तीर नहीं तरकस में,
गिर गया अंततोगत्वा, मन, डूब चाह के रस में;
तू मुझको गरल पिला दे निज हाथों से दीवानी
मैं भव बन तांडव रचलूँ, तू दे करताल भवानी
जग देखे गठबंधन अब, विश्वास अटल भव भ्रम का,
सम्मेलन आओ देखो, नवक्रांति और संयम का;
वैराग्य स्रोत में निभृत, अनुराग धार संगम का,
ले अमर ज्योति में लिपटा, आवरण ममत्व अहम का;
कर एक लङ्क से लिपटे, हो खड्ग दूसरे कर में,
हो इधर अधर सम्मेलन, विप्लव कर उधर समर में,
सपनों से खेल रहा था विस्मृति तरङ्ग में बह बह,
भूली सी कोई झाँकी फिर भी आजाती रह रह;
धुँधली सी कोई प्रतिमा इंगित करती कुछ कह कह,
पीडा करवट ले जगती, मैं पी जाता दुख सह सह;
मैं भागा भाग न पाया सारी संसृति ने टोका,
मैं हार मान थक बैठा प्रमदा ने जब मग रोका;
संकल्प विकल्प हमारे मानस नभ में जग खोये,
स्मृतियों ने हठ आ आ कर, काँटे पथ में ला बोये;

गत-वर्तमान पर सपने सुरचाप-सेतु से सोये,
इस विषम विश्व की गति पर हँसते हँसते हम रोये;
जीवन तरङ्ग ने अगणित बुद बुद संसार सँवारे,
मत छेड़ पवन इनसे कर, ले अपनी राह किनारे;
सब सौर मंडली पंगति से अपने को विलगाये,
उनकी पद्धति के बाहर पथ पृथक स्वतंत्र बनाये,
छिप दबे पाँव जाते थे, चुपके से आँख बचाये,
इक महाशक्ति ने खींचा, आकर्षण रोक न पाये;
उल्का सा टूट पड़े हम, जग, रसा अंक में सोये,
कर विलग न पाये कोई ऐसा मिलकर हम खोये;

*

२३

बंदिनी—कौन ? पाहरू ! नहीं हुआ क्या समय नियत बलि का अब तक ?
उकसा कर जगता रक्खोगे स्नेहहीन दीपक कब तक ?
चलो शीघ्र अपनी चंडी का खप्पर दो शोणित से भर,
रक्त पिपासा मिटा सकूँ मैं जीवों की, जीवन देकर ;
योगिनी—अंधकार में धीरे धीरे फाटक खोल कोष्ठ भीतर,
आँख गड़ाते हुए देख कर दिया योगिनी ने उत्तर;
'अभी नहीं, थोड़ा विलम्ब है, समय बता देते हैं हम,
जब रजनी, रवि के प्रहार से, लोहित हो, तोड़ेगी दम;
तब माता के खड्ग झोंक से जीवन दीपक होगा घर,
मंदिर प्रांगण गरम रक्त से रंजित हो जायेगा भर;
बंदिनी—परुष बचन यह नहीं पुरुष का ! सुनती हूँ नारी का स्वर,
हत्या का बीड़ा रमणी ने उठा लिया क्या अपने सर ?
योगिनी—यदि लावण्य और कोमलता में ललना रखती है श्रेय,
तो कठोर कर्तव्य धर्म पालन में नहीं नरों से हेय;

कभी फूल की पंखड़ियों से पड़ता है पग में छाला,
कभी अंगना हँसते हँसते लिपटा लेती है ज्वाला;
कभी राजमंदिर में बैठी जीवन का आनंद उठा,
क्षण ही में सारी माया को हो विरक्त देती ठुकरा;
इसी 'प्रकृति' को रचा 'पुरुष' ने, प्यार किया कह कर माया,
अबला की यह अकथ कहानी समझ नहीं कोई पाया;
बंदिनी—क्षमा कीजिये ! है दुखिया का अनुभवहीन अभी जीवन,
विश्व विराट् नहीं देखा है, मिले नहीं मायावी जन;
सत्य मान लेती हूं मैं भी पूज्य बहिन की परिभाषा,
अतः और दो चार दंड जो चलती है मेरी स्वाँसा;
उसमें क्या सेवा कर सकती, दो आज्ञा, क्यों कष्ट किया,
भगवत् चिंतन कर लेने दो व्यर्थ समय यदि नष्ट किया;
योगिनी—मन की शांति भंग करने की दोषी होकर, पछताई,
गुप्त मंत्रणा कुछ करने को पास तुम्हारे हूँ आई;
बंदिनी—बड़ी दया की जो आदर दे चली पूछने मुझ से युक्ति,
योगिनी—लेने आई पुरस्कार हूँ देकर तुम को बंधन मुक्ति;
बंदिनी—नहीं मुक्ति की मैं इच्छुक हूँ साथी को संकट में छोड़,
यदि उनके भी छुटकारे का बैठा सकती हो तुम जोड़;
तब तो तुम आशा कर सकती हो पाने को मुँह माँगा,
खड्ग वार क्या रोक सकेगा आशा का कच्चा धागा;
योगिनी—कर सकती हूँ, मुक्त युगल को, करने पर यह भारी काम,
शीघ्र बताओ क्या दोगी देवी ! इस छुटकारे का दाम ?
बंदिनी—नत मस्तक हो, साँस खींच कर, राजकुमारी कर चिंतन,
बोली इस दुर्भाग्य समय में मेरे पास कौन सा धन;
अलंकार आभूषण जो हैं तन में पड़े हुए दो चार,
वे सब सेवा में अर्पित हैं दे सकती हूँ ये उपहार;
ज्योंही वह अमूल्य आभूषण देने लगी गले से खोल,
त्योंही हाथ रोक कर उसका, कहा योगिनी ने, 'यह मोल ?
सोने चाँदी के टुकड़ों से नहीं मुक्ति का है समतोल;
सत्य बचन दो तो बतला दूँ क्या चाहिये मुझे जो खोल,

बंदिनी—बचन दिया, अनुरोध तुम्हारा क्या है मुझको है स्वीकार,
योगिनी—मन मंदिर का देव बना कर तव पतिपूजा का अधिकार;
बंदिनी—हँसी करो मत किसी और को मेरा स्वामी बतला कर,
अन्य पुरुष की परछाई क्या डालोगी अपने ऊपर ?
तुमको क्या उपदेश करूँ है उचित तुम्हें रखना पानी,
लोक रीति व्यवहार शास्त्र की बातें हैं सारी जानी;
एक योगिनी करे प्रेम यों लट्टू हो देकर तन मन,
समझ न पाती, डाल रही हो तुम तो उलझन में उलझन;
योगिनी—है सम्बन्ध घनिष्ट तुम्हारा जैसा हूँ मैं आँक सकी,
अवगुंठन की झींनी चादर रंग न मुख का ढाँक सकी;
बन बिहार में कर लेते हैं प्रेमी जन गंधर्व विवाह,
हो ऐसा रहस्य कुछ तब तुम रोक सकोगी मेरी राह;
यदि ऐसा सम्बन्ध नहीं कुछ तब फिर मुझ को किसका डर,
आज उन्हें अपनाने का उद्योग करूँगी मैं जी भर;
ये लो तुमको मुक्त कर दिया चलो कोष्ट से अब बाहर,
अब स्वतंत्र हो शीघ्र यहाँ से सीधी जाओ अपने घर;
बंदिनी—यह क्या कहा ? बिना साथी के कभी नहीं घर जाऊँगी,
निज सहचर के संग संग ही बलि हो मैं मर जाऊँगी;
वह परदेसी खेल जान पर काम समय पर आए हैं,
कितनी बार मृत्यु के मुख से मेरे प्राण बचाए हैं;
बड़ी नीचता होगी मेरी उन्हें छोड़ कर जाना भाग,
कर दो मुक्त उन्हें भी देवी दिखलाओ इतना अनुराग;
योगिनी—प्रेम तुम्हें जो रोक रहा है उनसे विलग न होने को,
ले वियोग मथनी जो उद्यत होता हृदय बिलोने को;
नहीं छोड़ने देता वह ही प्रेम, मिला यह खोया धन,
तुम जाओ, उनकी रक्षा की मुझ को भी है पूर्ण लगन;
बंदिनी—अभी आज ही भेंट हुई है, कैसा प्रेम पुराना है,
एक विरक्ता यों मुग्धा हो इसका कहीं ठिकाना है;
इनका तुम से कब का परिचय, कब की प्रीति निभाती हो ?
सुध बुध खो वियोगिनी जो बे-मूल्य बिकी सी जाती हो ?

योगिनी—नहीं अपरिचित, घायल हूँ कब से खा इन नयनों के शर,
उनकी छबि मेंरे मानस में कब से किये हुये है घर;
सम्मोहन का मुझे गर्व था सुंदरता का मुझको मद,
लोहा मोम बना देती थी, जिधर देख भर लेती, बद;
पुरुष जाति से मुझे घृणा थी सबको पतित समझती थी,
जो मुझ से बच कर चलते थे उनसे सतत उलझती थी;
नाक रगड़वा दी मिट्टी में की हेकड़ी बड़ों की दूर,
सर्वश्रेष्ठ बनने वालों का किया गर्व सब चकना चूर;
विफल अस्त्र सब हुये हमारे पाकर महा कठिन इसपात,
चालें चलीं अनेकों फिर भी खेल खेल में खाई मात;
इसी निठुर ने झुका दिया यह सब पुरुषों पर विजयी सर,
इसी वीर ने छुड़ा दिया है राज पाट पुर परिजन घर;
इनकी उदासीनता ही ने मुझे विरक्त बनाया है,
इनके ही वियोग ने मुझको योगिनि बना नचाया है;
खो कर इन्हें कठोर हो गई ली चंडी की अंत शरण,
खेल काल के साथ खड्ग से, समझी जीवन और मरण;
अपनी कठिन तपस्या का मैंने पा लिया आज है फल,
मन की लगी निकालूँगी मैं जाने क्या होवेगा फल;
अच्छा ! कैसे संग तुम्हारा इनका हुआ बताओ तो,
किसकी वधू ! बालिका किसकी जीवन कथा सुनाओ तो;
बंदिनी—रुद्रसिंह स्वर्गीय पिता जी शौरसेन पर करते राज,
समय फेर से वहीं पताका शक की है फहराती आज;
दुष्टों से निज धर्म बचाने को, उनकी केवल संतान,
बनचारी बन गई, राह में इनसे हुई जान पहिचान;
जिनकी बनी प्रेमिका तुम हो उनका दो मुझको परिचय,
कोई विपत न फिर आ जावे मुझे यही लगता है भय;
योगिनी—परिचय क्या तुम नहीं जानतीं ? मगधेश्वर के हैं भाई,
इनके ही पाने को अपनी दुनियाँ हूं मैं खो आई;
थे बलाविकृत ये सेना के शासन का भी सारा भार,
महाराज ने सौंप दिया था अधिकारी थे राजकुमार;

फिर कुछ घटना के कुचक्र से देश त्यागना पड़ा इन्हें,
मेरी ही भूलों के कारण हाय भागना पड़ा इन्हें;
मैं सीकर! हिमखंड बनी, शैलों पर मैंने किया विहार,
लखा सिंधु को नभ से मैंने, पाया चंचल विकल अपार;
है विशालता पर मद जिसको, उसे चूमता लख पाताल,
हँसते हँसते लोट पड़ी मैं, जा ठुकराया उसका भाल;
वह, मस्तक पर लिये फिरा आदर से मुझको धोता पग,
धीरे धीरे अपनी लघुता का अनुभव हो गया सजग;
लघु होती जाती थी दिन दिन अपने क्षुद्र विचारों से,
गली जा रही थी लज्जा से सागर के व्यवहारों से;
जिसको मैंने ठोकर मारी अंत उसी में हुई विलीन,
पुरुष हृदय की थाह लगाती हार गई मैं अनुभवहीन;

बंदिनी—नाम लिया क्या मगध देश का? कहो कहाँ पर है वह देश?
सप्तसिंधु क्या पार कहीं है? क्या उगते हैं यही दिनेश?
वहाँ शिशिर क्या नहीं कँपाता विरहवंत यौवन का गात?
कोयल क्या रसाल के बन में वहाँ नहीं करती उत्पात?
रखते हैं क्या निठुर वहाँ के पत्थर से भी हृदय कठोर?
जिस पर मुड़ कर काम न करती है मनोज के शर की कोर?
क्या हंसों के जोड़े मिल कर जल में करते नहीं किलोल?
खिलती कलिका नहीं लिपट जाती मधुकर से क्या जी खोल?
क्या युवतियाँ पुष्प-माला से नहीं किया करतीं अभिसार?
कुन्दकली क्या नहीं बजाती ऊषा की वीणा का तार?
क्या निदाघ आ नहीं लगाता अपत पलाश वनों में आग?
पतिपत्नी क्या नहीं खेलते उस प्रदेश में मिल कर फाग?
चैत वहाँ क्या नहीं दिलाता युवकों को बिछुड़ों का चेत?
क्या मस्ती का रङ्ग न लाते आँखों में गुलाब के खेत?
क्या दहियल की सरस रागिनी मन में भरती वहाँ न रस?
पद्मपुंज में कमलनयन को, आँख, ढूढ़ती नहीं सरस?
क्या वर्षा में नहीं छोड़ते मेघ वहाँ पर विष के बाण?
पी पी की पुकार चातक की नहीं किसी के लेती प्राण?

क्या चपला को गले लगाये नहीं नाचते हैं घनश्याम ?
घोर अँधेरी में भादों के नहीं अकेलो डरती बाम ?
चढ़ी जवानी में बढ़ बढ़ जब करते सरिता सर संग्राम,
कैसे मन बटोर बैठे रहते हैं वहाँ निरस प्रियतम ?
यह मुझ को विश्वास पूर्ण है आता वहाँ न सरस बसंत ?
अथवा निज प्रेयसि को कैसे भूला होता भोला कंत ?
यह भी उसी मगध के बासी, बतलाया क्या राजकुमार ?
मौन हुई ललना चिंता में, आँसू टपक पड़े दो चार;
फिर अँगुली से हार हिलाती थिर नयनों से भू को लख,
शीश झुका कर अपनी ठोढी बाम हथेली ऊपर रख;
डूबी रही किसी चिंता में, कंगन से सहलाती माथ,
चौंकी, धरा योगिनी ने धीरे से कंधे पर जब हाथ;
घबड़ाहट में निकल गया फिर, बतलाओ उनका परिचय,
परिचय तो हाँ बता दिया है उन्हें मुक्त कर करो अभय;

योगिनी—क्या कहती हो एक न समझी ये बातें बहकी बहकी,
हृदय खोलकर कथा बताओ करो नहीं बातें तहकी;
प्यारी जन्मभूमि वह मेरी इसी देश का है इक अंग,
अपनी षटऋतु की सेना ले सतत सताता वहाँ अनंग ;
नहीं विभेद प्रदेशों में है प्रकृति प्रकृति हो सकती भिन्न,
हृदय हृदय का अंतर केवल जीवन कर देता है खिन्न;
शोक ! तुम्हारा हृदयेश्वर है ऐसा निर्मोही बेपीर,
जिसके नहीं कसक है मन में खा कर इन नैनों के तीर;
हाँ कटु अनुभव है मुझ को भी इक सजीव निठुराई का,
अधिवासी है मगध देश का गुप्त लाल वह माई का;
पर ऐसे विरक्त से विरले ही पड़ जाता है पाला,
योग पढ़ाने लगा तुम्हें भी कौन नया यह नँदलाला;

बंदिनी—हाँ तो उसी विचित्र देश में मेरे हुआ ब्याह का नाम,
दृग अंजन सा दृग में बसते, देख न पर पाती घनश्याम;

योगिनी—क्या बतलाया तुमने अपने इस बन के साथी का नाम,
'गुप्त सुधाकर', सुघर युवकने पाया है क्या नाम ललाम;

पति का भी अब नाम बताओ उनका है कैसा आकार,
काले या गोरे हैं, आँखे भूरी हैं या मृगमद सार,
मुँदरी के हैं नवल नगीना या लम्बे चोटी के बाल,
करिवर कर समान बाहें हैं या हल्की ज्यों पंकज नाल;
बंदिनी—कैसे मैं बतला सकती हूँ नहीं किए हैं जब दर्शन,
योगिनी—नहीं आज तक देखा पति को ? कैसी पत्नी हो भगवन !
बंदिनी—नगर पाटलीपुत्र मगध का—थे नृप के युग राजकुमार,
उन में से कनिष्ट के सँग में निश्चित हुआ ब्याह व्यापार,
नियत समय पर जब आने ही वाली थी वर संग बरात,
हुआ आक्रमण इधर शकों का उधर उपद्रव का उत्पात;
उधर गये वरदेव हमारे विद्रोही दल करने सर,
इधर हमारी जन्म भूमि पर ताण्डव करने लगा समर;
संस्कार को वर ने भेजे विवश स्वखड्ग और कटिबंध,
वर प्रतिनिधि बस उसी अस्त्र से मेरा हुआ ब्याह संबन्ध;
तब से उनका पता नहीं कुछ नहीं भूल भेजा संदेश;
नहीं आज तक सुध मेरी ली, हैं वह कौन ? कहाँ वह देश ?
यदि हो पता जानती सखि तो कह दो मानूँगी उपकार,
बस जाता, प्रिय-ग्राम बासिनी ! मेरा यह उजड़ा संसार;
योगिनी—थर थर काँप उठी वह योगिनि सुनकर उसकी करुण कथा,
चक्कर खाकर गिरते गिरते बैठी भू पर यथा तथा;
कुछ रुकते रुकते ही पूछा, नाम न पति का बतलाया,
आकुलता से लगी टहलने स्वेद बिंदु मुख पर आया;
बंदिनी—बड़े लजीले दृग नीचे कर, ललना ने बटोर साहस,
मुख खोला कहने को कुछ जिह्वा ने तालू किया परस;
शब्द न निकले, लिपट रह गये, नहीं भाव का हुआ विकास,
नाम न ले पाई सुकुमारी, हारी होकर विफल प्रयास;
आलोचना कड़ी उसकी कर योगिन ने फिर पूछा नाम,
'चन्द्रगुप्त' धीमे स्वर से कह मौन हुई मुँह फेरे बाम;
'चन्द्रगुप्त' सुन चकित योगिनी चक्कर खाकर टकराई,
'आह लुट गई चन्द्रगुप्त मैं' ! ऊँचे स्वर से चिल्लाई;

शब्द पुकार नाम अपना सुन, चन्द्रगुप्त झट दौड़ पड़ा,
देख रहा था भय विस्मय से चंडी की वह मूर्ति खड़ा;
आकर तुरत सँभाला उसने उस मुरझाई रमणी को,
जो अवाक हो देख रही थी किसी सोच में अवनी को;
देखा फिर सहचरी मुक्त हो निकट खड़ी थी चकित हुई,
पूछा तुम्हें छुड़ाने भर में क्या घटना यह घटित हुई;

मुक्त बंदिनी—इनके मुखका रङ्ग उड़ गया सुन कर मेरी करुण कथा,
वह प्रभाव डालेगी ऐसा, इसका कुछ अनुमान न था;
पहिले तो मेरे बंदी साथी ही पर लट्टू थी बाम,
पर मूर्छित हो गई विकल हो सुन कर मेरे पति का नाम;

चन्द्रगुप्त—तो तुम क्या सचमुच ब्याही हो अब तक क्यों रक्खा यह गौन,
जब जब मैंने प्रश्न किया है पाया तब तब तुमको मौन;
भाग्यवान वह कौन निठुर है रत्न दिया है जिसने छोड़,
नहीं तुम्हारी सुध ली अब तक उस पवित्र नाते को तोड़;

बंदिनी—यह सब कुछ मैं नहीं जानती छोड़ो मुझे नियति के हाथ,
चिर परिचित प्रेमिका तुम्हारी खोकर मिली निभाओ साथ;
जोड़ी सुखी रहे यह भगवन् दोनों का हो प्रेम अमर,
अब बियोग की आँच न आवे फूलें फलें बधू औ वर;
करना क्षमा मुझे देवी तुम कभी न भूलूँगी उपकार,
तुमने बचा लिए दो जीवन जिनका था निश्चय संहार;
अपनी निधि तुमने पा ली अब दिन दूना यह बढ़े सुहाग,
कुआ आन पहुँचा प्यासे तक, सोया भाग्य गया है जाग;
अंतिम भेंट आज है अपनी दो दिन का यह मेला है,
नदी नाव संयोग एक क्षण फिर यह जीव अकेला है;
दोनो मगधवासियो जाओ सुख से अपने प्यारे देश,
मेरे कारण मेरे सँग में भोगे तुमने नाना क्लेश;
वह सुख का सपना था क्षण भर फिर भारी है काली रात,
जीवन पानी सा बह जाता कहने को रह जाती बात;
कहीं रहो आनन्द करो तुम दो मुझ को अब आशीर्वाद,
मैं तो भूल नहीं पाऊँगी जाना भूल हमारी याद;

कहते कहते फूट पड़ी वह आँखों ने कर दी बरसात,
ऐसी हिचकी बँध आई कुछ मुँह से निकल न पाई बात;
रहे रोकते कितना दोनों फिर न रुकी वह हुई हवा,
बैठ गये, चिंता में डूबे, दोनों भू पर शीश नवा;

चन्द्रगुप्त—सँभलो ! सँभलो ! मुझे सँभालो ! मैं हारा तुम जीत गईं,
लोचन मुक्ता नहीं बिखेरो दुःख की घड़ियाँ बीत गईं;
चन्द्रमुखी ! छू कर निज कर से सिंधु हृदय में ज्वार उठा,
जीवन में आकुलता भर तुम स्वयं भाग भयभीत गईं;
आज नया संसार बनालें खुला नया पट जीवन का,
दूँगा योग योगिनी तेरा, फेरूँगा तेरी मनका;
उठ चल, भारत मुकुट संभालें न्योछावर करदें जीवन,
प्रेम भरी तेरी आँखें ये आवाहन करती रण का !

नैराश-निशा हो गई बिदा, जीवन पथ वह जगमगा उठा,
चलदल सा चंचल हुआ चित्त, पग निश्चय का डगमगा उठा;
यौवन, तरुणाई, रस विभोर, हैं सुमनों में मद ढाल रहे,
सब दबी हुई साधें मन की, पा पावन पर्व, निकाल रहे;
मुस्कान नटी है नृत्य-निरत नव कुसुम अधर रँगशाला में,
सौरभ-सरिता हैं डूब गई मन-मोहक मधुकर-माला में;
मलयानिल बौराया फिरता है बौराये सहकारों में,
हैं तान भर रहे ले अलाप, पक्षीगण निज इकतारों में;
मधु-उदगम से मनसिज-मरोर-मकरंद धार है फूट चली,
हिल गया पाँव व्रत संयम का, दृढ़ अटल प्रतिज्ञा टूट चली;

२४

सम्राट रामगुप्त— अरे सम्राट !

छोड़ सब ठाट;

विषय भोगों से, बना उचाट,

हृदय, है रहा नवल पथ काट;

बदल दे धार,

भविष्य विचार;

मंजुमणि-मंडित मुकुट ललाम,

सिंधु दृग आँसू मुक्ता दाम;

गले के हार,

बने हैं भार;

नहीं वैभव है अब सुख मूल,

राज्य भी उपजाता उर शूल;

सैन्य वारूथ,

सुनयनी यूथ;

बुझा हैं नहीं सके वह आग,
जगा कर जिसे गयी श्री भाग;
सुखों का सार,
वही भंडार ?
मचा है मन में फिर क्यों द्वंद ?
अमर रस में अपार आनंद;
किन्तु उद्भ्रांत,
नहीं मन शांत;
बना हूँ मैं तृष्णा का दास,
बहुत पी चुका, न बुझती प्यास;
वासना भार,
विरस संसार;
कामिनी कंचन की अब कांति,
लुभाती नहीं, मचाती क्रांति;
बिलासी जाग,
छोड़ वह राग;
न मन में रहा पूर्व उत्साह,
न कुछ वैभव विलास की चाह;
सुछवि सुकुमार,
अतुल शृंगार;
गई वह, मुझे अकेला छोड़,
प्रेम का नाता सारा तोड़;
मुझे धिक्कार,
अनेकों बार;
त्याग कर उसे किया अपमान,
क्लीव बन गया, भूल कुल कान;
मिटाई आन,
कीर्ति अम्लान;
आर्य ललना को बना अनाथ,
गहा था हठवश जिसका हाथ;

गया हूँ ऊब,
मरूँ मैं डूब;
मुझे उत्कट संकट में डाल,
छोड़ क्या गई विश्व जंजाल; ?
क्षमा हे देवि,
दयामय देवि;
पातकी नीच घृणित मैं आज,
भार हो रहा मुझे यह राज;
कर्म का भोग,
रहा संयोग;
बना मैं उसका जीवन भार,
नष्ट करके उसका संसार;
अहो मम तात,
बिना कुछ बात;
दिया निर्वास तुम्हें कर भूल,
लगा अभियोग झूठ निर्मूल;
नियति ने प्रेर,
सुमति दी फेर;
छुड़ाये मुझ से बनिता, भ्रात,
गई रह पछताने की बात;
वही अभिशाप,
बना संताप;
जलाता रहता सतत शरीर,
पिया घाटों घाटों का नीर;
न बुझती प्यास,
जिलाती आस;
रात दिन सुधि में रह लवलीन,
तड़पता जल विहीन ज्यों मीन;
स्वार्थ व्यापार,
विश्व व्यवहार;

न आता कठिन समय कुछ काम,
विचारा प्रथम नहीं परिणाम;
खो गया मूल,
हो गई भूल;
निहित है सैनिक भ्रू पर रोष,
प्रजा प्रतिपादित करती दोष;
सभी हैं रुष्ट,
कौन संतुष्ट ?
सेवकों में वह रहा न चाव,
दृगों में भरा भर्तस्ना भाव;
गुप्त जनतन्त्र,
रचें षड्यन्त्र;
भूल को सोच लाज में डूब,
गया हूँ मैं जीवन से ऊब;
रक्त की धार,
स्वजन संहार;
मूल्य है जिसका वह साम्राज्य,
पाप का मूल सर्वथा त्याज्य;
बहुत हो चुका,
बहुत खो चुका;
किया सब होकर स्वार्थ विभोर,
गया मैं यों पशुता की ओर;
कृपा आगार,
करो निस्तार;
छोड़ हे राम ! मोह का साज,
त्याग दे रक्त भरा यह राज;
करो अज्ञान !
अलख का ध्यान;
गहो सतपंथ निकाल विकार,
अहिंसा व्रत मन में दृढ धार;

समय है अल्प,
सत्य संकल्प,
कर लिया मैंने, हृदय सँभाल,
नहीं माया की टेढ़ी चाल,
बना भयभीत,
सकेगी जीत;
धरा में लगा चन्द्र का शोध,
नमित हो उससे कर अनुरोध,
पूर्ति कर हानि,
मिटा कर ग्लानि,
हटा उसकी चिंता को गूढ़,
करूँगा सिंहासन आरूढ़;
सौंप कर भार,
गुप्त संसार,
लुप्त हो जाऊँगा अज्ञात,
कि भूले अग जग मेरी बात;
निकाल जुवाठ,
'शांति' कर पाठ,
विश्व बन्धन की कड़ियाँ काट,
बनूँगा तब सच्चा सम्राट!

२५

कवि वीरसेन—वारुणी[1] रंग में डूब गई, संध्या, रस में फूली फूली,
दी 'रतनजोत[2]' ने फेर इधर मृगमद[3] पर रत्नारी तूली;
'मधुकंठ', मधुप पर 'मदनबाण' है तान रही 'सुगंधबाला[4]'
लौटी पुष्कर[5] मधुकोष पुनः उडगण—ममक्षिका की माला;
कसकर बाहों में भरे हुए है सरिता प्यारा पुलिन द्वीप,
पलकों में दृग, फंदे में मृग, मोती उर में है धरे सीप;
नीरज अलि का, लति का तरु का, हिल हिल करते स्वागत हैं क्या;
गुरुतिय सँग चन्द्र, काम रति सँग, आश्रम में केलि निरत हैं क्या ?

१–पश्चिम दिशा, मदिरा,
२–रत्नज्योति, पौधा विशेष जिससे लाल रंग बनता है,
३–कस्तूरी अथवा श्याम आकाश, मानिक अथवा डूबते हुए लाल दिन-
मणि की ज्योति,
४–औषधि विशेष, सुगंध रूपी बाला,
५–व्योम,

वह ललित लता, अनुपम ललना, यह कौन रसिक को घेरे हैं,
दोनों आलिंगन को बढ़तीं, लड़तीं, कह कर यह मेरे हैं;
क्या चन्द्रगुप्त ही हैं मेरे ! जिसने लेकर भव से विराग,
बन, पुष्पकेतु[1] ही सा त्यागी तज साम्राज्य जो गया भाग;
क्या आज उसी को देख रहा हूँ प्रेम-मोह के चक्कर में,
उस महावीर ने भी दिखलायी पीठ एक ही टक्कर में;
हे आर्यपुत्र करुणानिधान सेनापति को मेरा प्रणाम,
ताथेयी कर, रच रास रहे, हे कुँवर कन्हैया राम राम;

चन्द्रगुप्त—स्वागत कविवर ! शुभ दर्शन देने अच्छे समय पधारे हो,
तुम मेरे हो विश्वासपात्र देदीप्यमान इक तारे हो ;
स्वामिनी तुम्हारी ही ये हैं जिनको तुम देख अचंभित हो,
पहिचान न पाये क्या इनको जिनसे तुम पूरे परिचित हो;
आँखों का परदा हुआ दूर अब देख सका यह ज्योति अमर,
जब बाहर सौ ठोकर खाई तब ठीक ठिकाने गया भ्रमर;
टेढ़े विधि ने हमको तुल्यांतर रेखाओं सा किया विलग,
गति वक्र बना कर गले मिलाया मेरे सुप्त भाग्य ने जग;

कवि—बुधजन को है संकेत अलम मैं ताड़ गया क्यों छोड़ा घर,
योगी बन, कई घाट पानी पीने का मिलता है अवसर;
बिछुड़े मिल गये पुनः भगवन् ! जो अकड़े फिरते थे फूले,
प्रातः के भूले पहुँच गये घर साँझ, नहीं समझो भूले;
अम्बर रसवंती में डूबा, है गंगा सागर सम्मेलन,
मैं पुष्पाँजलि हूँ चढ़ा रहा, पूजा स्वीकार करो भगवन;
कुछ पढ़ देवी ने फूँक मार भारी आँधी भी बाँधी है,
जीवन रथ पर अब उड़े चलो सुंदर जोड़ी यह नाधी है;
उल्लास नवल धमनी रमनी में बन कुरङ्ग भरता कुलाच,
नागर में सागर सा जीवन है उछल उछल कर रहा नाच;

१-शिव,

है हार कहाँ खाई किसने, इसको तो दो मन से निकाल,
अब फिरसे खेल बिछे, देखें, करता है गोटी कौन लाल;

चन्द्र—काँटों में नहीं घसीटो तुम, मुँह भरे दही औ शक्कर से,
यों छोड़ अकेली भाभी को कैसे तुम निकल पड़े घर से;
उतराती और डूबती होंगी विरह सिंधु में खा गोते,
तोते सी आँख बदल दी, होगा बुरा हाल रोते रोते;
मुझको तो देश निकाला है तुम फिरते क्यों मारे मारे,
इस जंगल में क्या आ निकले घर छोड़ दृश्य प्यारे प्यारे;

कैसे कर पावेगी वियोग का पारावार पार ललना,
क्या बात आगई थी ऐसो घर छोड़ पड़ा तुमको चलना?
कैसे हैं पूज्य सहोदर वे, हैं प्रजा सहित तो सुखी परम,
कैसे तुम इधर भूल निकले कह चलो शीघ्र चिंतित हैं हम;

कवि—संयोग कहाँ? भावी में है उसके वियोग में दुःख झेलूँ,
लिख गया भाग्य ही मेरे जीवन भर मैं पापड़ बेलूँ;
छोड़ो भाभी की बातों को उनसे चल तुम्ही निपट लेना,
है बदा, करवटें ही लेना, सपने में नहीं लिपट लेना;

हाँ लाया हूँ संदेश गुप्त, है समय ले रहा अब करवट,
अवसर ऐसा हो आया है जोड़ी यह लौट चले सरपट;
भट्टारक ने है याद किया, बस पूरी हैं कर रहे श्वाँस,
चल कर सब राज पाट देखो छोड़ो अब कानन का विलास;

बीती बातों को दो बिसार उनकी अंतिम इच्छा लो रख,
वह राज तिलक तुमको देंगे दो छोड़ जगाना व्यर्थ अलख;
अब धूमकेतु है डूब रहा, साढे साती है गई बीत,
पांसा पलटा गोटी आई बन गई तुम्हारी हार, जीत;

चन्द्र—क्या कहा? रुग्ण हैं नृप विशेष, अति शोचनीय है हुई दशा,
क्या जीवन-हय है रुकने को, है कड़ी कर रहा, काल, कशा?
दिन में पिंगला, निशा में शशि-स्वर, अर्ध अब्द से चलते हैं,
सम पर गत रुकने वाली है, इससे स्वर यही निकलते हैं;

यह सोच, हृदय है काँप उठा, यह समाचार है दुखदायी,
है राज पाट की नहीं चाह, चिरजीवी बने रहें भाई;
ये माया के सारे विमोह मेरा व्रत तोड़ नहीं सकते,
पर पूज्य सहोदर का अंतिम दर्शन हम छोड़ नहीं सकते;
कवि जी लौटो उलटे पैरों आश्वासन दो हम आते हैं,
वह स्वस्थ शीघ्र हो जायेंगे कह देना क्यों घबड़ाते हैं;
तुम रुको नहीं, है समय विकट, उड़ जाव अश्व को एड़ मार,
हम दोनों भी आते पीछे कह देना जाकर समाचार;

*

२६

दूत—भगवन् हुए दाहिने राजन् बहुत भटकना पड़ा नहीं,
शोध मुझे मिल गया शीघ्र ही बहुत अटकना पड़ा नहीं;
दक्षिण सीमान्तर कानन में चन्द्र मिल गये करते योग,
महादेवि भी वहीं संग थीं ऐसा था सुंदर संयोग;
महाराज का अनुशासन, संदेश, विनय, सब सुना दिया,
और तुरत ही मैंने सँग सँग चलने का अनुरोध किया;
हिचके कुछ दोनों, पर मैंने, अनुनय करके समझाया,
उनका सब कर्तव्य देश, जन, भाई के प्रति बतलाया;
चिंताजनक अवस्था सुन कर महाराज की, आतुर हो,
चन्द्र, महादेवी दोनों फिर गये शोक धारा में खो;
ठंढी साँस खींच कर दोनों, अंतः करके वाद-विवाद,
चल हैं दिए, पहुँचते होंगे, बढ़ आया देने संबाद;

रामगुप्त—अधिक समय है नहीं, कुशल है, मिले बिना कठिनाई के,
आना भी स्वीकार कर लिया ! दर्शन हों कब भाई के;
द्रुतगामी रथ भेज उन्हें लाने का शीघ्र प्रबन्ध करो,
वीरसेन ! तुम भी बढ़ जाओ, भगवन् मेरा द्वन्द हरो;

*

चन्द्र—

हंस वह प्राची से उड़ प्रात,
रजत-पर फैला कर अविराम;
अकेले एकाकी अति श्रान्त,
देखता जग के चित्र ललाम;
विरह से व्याकुल विकल महान,
हृदय में लिये दहकती आग;
तोड़ता नीरद के रस जाल,
अचल की उठी बाँह से भाग;
उतर है रहा, कहाँ इस ओर,
यही है उसका सरवर नीड़ !
सजी है क्यों प्रदीप की माल ?
विरुद गाती है द्विजकुल भीड़ ?
बिखेरे है जलधर-से केश,
बिरह में बिकल वारुणी-बाल;
धधकने लगा नील आकाश,
आह में है ज्वाला विकराल;
बढ़ाया कर दिनकर ने विहँस,
अंक में लेने को सस्नेह;
प्रतीची फूली गदगद कण्ठ,
सिहर, पुलकित हो आई देह;
लपक तम ने इतने में झपट,
दिया दिनकर को उधर ढकेल;
बाम की चोटी गह कर खींच,
लगा उससे करने अठखेल;

चकित रह गई बिचारी बाम,
हुआ मुख पीत, न निकली बात;
अंक में तम फिर उसे लपेट,
हुआ रस क्रीड़ा निरत हठात;
तिमिर-घन बरस रहा सब ओर,
तान लम्बी सोया संसार;
जगत के धुँधले धुँधले चित्र,
अचल, थल, अम्बर, पारावार;
दिया इन सब पर पानी फेर,
निशा-तूली ने कर विस्तार;
शून्य में एक एक में शून्य,
समाये, होकर एकाकार;
भोर से साँझ, साँझ से भोर,
आगया अब निशीथ का पल;
नहीं पहुँचे हम पाटलिपुत्र,
दिये थे अंधेरे मुँह चल;
फड़कता दक्षिण भुज अविराम,
आँख, पर फड़क रह है बाम;
दिखावेगा, भावी, क्या खेल,
अशुभ शुभ का कैसा संग्राम ?
सारथी करो यान गति तीव्र,
दशा भूपति की है गंभीर;
शीघ्र पहुँचा दो मेरे धाम,
विकल मन नहीं धर रहा धीर;
रो रहा है क्या कहीं शृगाल ?
फड़कते नैन, रहा सर घूम;
पोंछ कर से तारक नभ-अश्रु,
मचाये धूमकेतु है धूम;
भयावह लगता है सब ओर,

दिशाएँ काटे खातीं आज;
झाड़ियाँ पहने घन तम-तोम,
बोल 'हू, हू' डरपातीं आज;
विपिन, बीहड़, मरु, सीता, ग्राम,
पार हम करते ध्रुव की ओर;

चले हम आते द्रुत गति सतत,
न पाया पथ का अब तक छोर;
बहक हम गये कहीं से मार्ग,
न पहुँचे, उठा रहे हैं कष्ट;
अँधेरे में चक्कर खा घूम,
व्यर्थ हम समय कर रहे नष्ट;
सँभालो कशा सोध लो पंथ,
दूर वह कैसा है आलोक;
वही यदि होवे मेरा ग्राम,
चलो रथ को चल कर दो रोक;

करो संचालित उधर तुरंग,
पड़े मत भू पर हय की टाप;
उड़े रथ करे पवन से बात,
सके भूमंडल क्षण में नाप;

भरा सिकता से सरिता कूल,
विकल सी बहती है खर धार;
उतर कर नौका से उस ओर,
नगर वह अपना है उस पार;
रेत में धँसते पहिये खींच,
लगा पूरा बल जीभ निकाल;

सैंधवों[1] ने पहुँचाया तीर,
चला नौका, केवट ! दे पाल;

१-सिंध देश के घोड़े.

पुण्य सलिले गंगे ! अभिराम,
तुझे है बारम्बार प्रणाम;
लगा दे नौका मेरी पार,
सभी बन जायें बिगड़े काम;
दोल में लहरों के हम डोल,
काटते हुए सलिल की धार;
सृजन कर बुदबुद के संसार,
कँपाते नीरवता के तार;
लगाते सलिल-भ्रमर से होड़,
चपल लघु मीन पुंज से खेल;
उतर, कर दलदल थोड़ी पार,
नवल छिछले छाड़न[2] को हेल;
लिया दम, चढ़ कर खड़ा करार,
घिरा है प्राचीरों से कोट;
चतुर्दिक खाई है गंभीर,
घने उस कठ बाँसों की ओट;
खड्ग से बन में करते राह,
पहुँच ही गये कोट के द्वार;
"कौन है ? रुको !" खीच कर धनुष,
कौन बोला ? निज पहरेदार ?
'मित्र हूँ मित्र, नहीं अनजान,
पूर्व परिचित हूँ, चन्द्रकुमार;'
नमन कर प्रहरी ने तत्काल,
कर दिये मुक्त कोट के द्वार ।

सम्राट— भिषगवर ! है अब कष्ट महान्,
रोग क्या कुछ कर सके निदान;

२–बढ़ी हुई नदी के उतर जाने पर बीच बीच में छोड़ा हुआ जल स्रोत,

हृदय रहता है विकल विशेष,
न जाने कब हो दुख यह शेष;
न लगती भूख न लगती प्यास,
बुझा मन रहता सदा उदास;
है जलती देह विषम है ज्वर,
है आती नींद नहीं क्षण भर;
बदलता करवट हूं दिन रैन,
किसी विधि कहीं न मिलता चैन;
महीनों होने आये आह !
रोग की लगा न पाये थाह;
न कोई, रोग कर सका दूर,
थका बैठा हूं होकर चूर;
होगई काँटा काया सूख,
फूल पग रहे, नहीं है भूख;
कष्ट अब सहा न जाता और,
पड़े अब रहा न जाता और;
आत्मा को है क्लेश विशेष,
साँस हैं जितनी भी अवशेष;
चन्द्र यदि आजाता इस बीच,
सूखती आशा देता सींच;
राज दे, सर रख अपनी गोद,
देह तज देता राम समोद;
अभी तक पहुँच न पाया हाय,
और सोचूँ मैं कौन उपाय;
लौटते हैं या नहीं कुमार,
यही चिंता डालेगी मार;
तनिक नाड़ी की देखो चाल,
विषम है हृद्‌गतिका समताल;
यंत्र कब तक चल सकता और,
समय कब तक टल सकता और ?

वैद्य— नहीं राजन् घबड़ावें आप,
हृदय में दृढ़ता लावें आप;
नहीं चिंता की कोई बात,
प्रबलता पर हैं कफ, पित, वात,
कभी मन पर पहुँचा आघात,
घटित हो गई दुखद कुछ बात;
सुखाया जिसने जीवन स्रोत,
डुबाया जिसने आशा पोत;
बना घातक है वह आघात,
उसी चिंता घुन से दिन रात,
धुनी जाती है सुन्दर देह,
बन गई विविध रोग की गेह;
कीट होजाय फूल से दूर,
बने औषधि तब जीवन मूर;
जाइये बीती बातें, भूल,
तुरत कम हो जायेगा शूल;
सँभलते हैं तुरन्त सम्राट,
भस्म यह मधु सँग लीजे चाट;
हटेगा शीत घटेगी पीर,
आप बस रक्खें मन में धीर;
लीजिये आ पहुँचे युवराज,
सिद्ध सब हो जायेगा काज;

आगमन सुन हो विकल अधीर,
भरे दृग के कोरों में नीर;
द्वार ही पर दृग रख सम्राट,
निरखते थे भाई की बाट;
समय से आ ही गये कुमार,
हो गये दोनों के दृग चार;

झपट लट-पट गिरते, भूपाल,
दौड़ कर गले मिले तत्काल;
स्नेह की सरिता बढ़ी अपार,
युगल की रुकी न आँसू धार;
हिचकियाँ बँधी, न निकली बात,
उमड़ आई है घन बरसात;
हृदय हलका होने पश्चात्,
दृगों के दुख रोने पश्चात्;
राम ने कहा, बन्धु ! हे वीर !
तुम्हें पा मिटी प्राण की पीर;
विधाता हो जाते जब वाम,
विफल हो जाते सारे काम;
मोह ने हर कर मेरा ज्ञान,
बंधु का करवाया अपमान;
सभी कुछ खोकर आई सीख,
कौन मुहँ लेकर मागूँ भीख;
क्षमा दो, बन्धु ! चूक सब भूल,
भूल, हो रही हृदय की शूल;
मुझे भी तुम दे दो बनवास,
सोच दुख मत तुम बनो उदास;

चन्द्र—
कीजिये लज्जित मत यों आप,
दुखित हो मत सहिये संताप;
बड़े हैं आप, पूज्य हे देव,
नहीं मन में मेरे कुछ भेव;
किसे दूँ दोष काल गति क्रूर,
मुझे ले गई सुपथ से दूर;
किया तप निखर गया हूँ आज,
पा लिया अपना खोया राज;
किंतु इन चरणों की सौगंद,
नहीं हूँ मैं इतना मतिमंद;

बंधु के प्रति रक्खूँ कुछ मैल,
भक्ति दृढ़ बनी हृदय में शैल;
स्नेह की ज्योति समान अमंद,
भावना धारा बही स्वछंद
अटल है वह ही पावन भाव,
नहीं मन में है लेश दुराव;
मुझे अब अपना लीजे नाथ;
शीश पर मेरे रखिये हाथ;
एक शिशु मैं, तुम जनक समान,
मुझे प्रतिपालो अपना जान;
दूर हो रोग, कष्ट कट जाय,
दयामय सब अनिष्ट हट जाय;

राम— धन्य हो चन्द्र! महान उदार,
प्रेम प्रति-मूर्ति स्नेह आगार;
चन्द्र तुम मेरे कुल के भानु,
हुये हम कुल कृषि हेतु कृशानु;
रुके थे मिलने ही को प्राण,
पुनः मिल लो इक बार सुजान;
सभा के संमुख दूँ अभिषेक,
यही है मेरी अंतिम टेक;
तिलक दे दिया, मुकुट लो धार,
चन्द्र की बोलो जय जयकार;
हुये तुम सिंहासन आरूढ़,
सरल हो गई समस्या गूढ़;
सँभालो अब अपना तुम राज,
होगया बोझा हल्का आज;
स्वयंवर-वरित तुम्हारी बाम,
क्षमा दो, लौटाता है राम;
भेंट यह निधि तुमको है भूप,
सौंपता हूँ मणि सरस अनूप;

महादेवी का पकड़ो हाथ,
छोड़ना मत तुम इनका साथ;
बने यह साम्राज्ञी सिरमौर,
नहीं कुछ इच्छा मेरी और;
रमा यह पा तुम बनो निहाल,
मुझे वह बुला रहा है काल;
क्षमा हे, देवि! क्षमा हे, भ्रात,
तथागत नमो नमो हे तात;
बंद की आँख उड़ गये प्राण,
ले लिया दीपक ने निर्वाण;

अश्रु का अम्बुध है जीवन,
रुदन ही जिसका प्रथम चरण;

जब असीम को कौतुक भाया,
तब अनित्य काया में आया;
इच्छा से उपजाई माया,
जिसने जग प्रपंच फैलाया;

ज्योति पर डाला अवगुंठन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;

शांत नहीं रहता यह सागर,
दुख समीर से विह्वल कातर;
तड़प तड़प ठंढी सांसे भर,
दौड़ दौड़ कर पुलिन न पाकर,

सतत करता रहता क्रन्दन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;

आदि बिन्दु का मिला नहीं मग,
दीन दशा पर हँसता है जग;
शशि छूने, उठता जब, जल-नग,
दूर दूर हो, विधु जाता भग
बढाकर मन की और तपन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;
भानु और आ आग लगाता,
सब उमंग कर भाप उडाता;
पुलक, किलक है हवा बनाता,
रहा सहा साहस ले जाता;
पवन को बना बना बाहन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;
कर से सागर आलोडित कर,
वायु रज्जु से उर मंथित कर;
तिल तिल पेर पेर पीड़ित कर,
चूसा सार रक्त रंजित कर;
कभी ताने ही रहता घन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन,
सागर ने अम्बर अपनाया,
उसको अपने गले लगाया;
लहर दोल में उसे झुलाया,
थपकी दे दे उसे सुलाया;
न छोड़ा उसने टेढ़ापन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;
नभ नीरस यह काँस भुआ सा,
बदला करता आँख सुआ[१] सा;
धरा भार बन, चढा जुआसा,
लिये कुहासा कभी धुआँ सा;

१.—तोता

शून्य में कहां प्राण कम्पन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;
मानस से उमड़े दो झरने,
जल दे तपन लगे वे हरने;
जीवन की रीती निधि भरने,
लगी-आग को शीतल करने;
डालते क्षद पर और लवण,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;
समवेदना दृष्टि जो डाली,
ठमक गया वह भानु कपाली;
उसने सब ज्वाला लौटा ली,
हिला चला मेघों की डाली;
गगन सब बरसा आंसू बन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;
सुख सपने का दुख ही विधि है,
महायज्ञ की हँसी समिधि है;
अश्रुबिंदु का नहीं परिधि है,
सब विधि यह ही जीवन निधि है;
रुदन पर करे हास्य नर्तन,
अश्रु का अम्बुध है जीवन;

२८

करें यों रानी का श्रृंगार;
अंगराग से उबट उबट कर,
अनुलेपन मल मल शरीर पर,
चर्चित कर चंदन रज केसर,
त्वचा में करें सुरस संचार;
शुचि सुरभित जल से नहलावें,
कंचन में सुगंध उपजावें,
शशि में चार चाँद लग जावे,
झरे झारी से झर झर धार;
मानों षटदस खिली कला हो,
चढ़े ओप झपती चपला हो,
शतदल से निकली कमला हो,
रूप दें ऐसा सुभग सँवार;

चंदन चरचा हो शरीर में,
केसर फूले काश्मीर में,
मृगमद मिश्रित कर उसीर में,
बना दें सौरभ मय संसार;
रुचिर विशेषक फूल खिलावें,
भृकुटि शरासन खींच मिलावें,
आँखों को मद और पिलावें,
वदन पर खिले बसंत बहार;
अगर धूप का धूम उडावें,
मुक्तकेश फहरा लहरावें,
शुचि सुगंध से उन्हे बसावें,
ब्याल वेणी-कुंडल ले मार;
कुंदकली की माल बनावें,
जूडे में नव सुमन सजावें,
सरस सिरिस कुंडल लटकावें,
शशिधर मुकुट जाल का भार;
पग नख में हो लगा अलक्तक,
लोध्र धूल से अधर राग ढक,
मदमाते यौवन रस में छक,
करें संगम शोभा श्रृंगार।

७१

'तीराभुक्ति'[1] प्रांत का है जो मुख्य नगर 'वैशाली',
उसी 'विषय'[2] के एक ग्राम की बनिता रहने वाली;
हुई उपस्थित राज सभा में फूट फूट कर रोई,
दीन अनाथा का इस जग में रहा नहीं था कोई;
सुप्त-शैल कंटक से बचती, लहरों से टकराती,
बेपानी करने वालों को हठ से हवा बताती;
जीवन पोत चलाती जाती, पर जनता उत्पाती,
उसके पथ में विविध भांति के रोड़े थी अटकाती;
पथ में आगे अंधकार लख, रुकने को घबड़ाता,
अधिक न रख सँभार चलने का, हृदय, बैठता जाता;

१—गुप्त साम्राज्य का तिरहुत (विहार) प्रांत।

२—भुक्ति (प्रांत) के अन्तर्गत 'विषय' आधुनिक जिला का पर्यायवाची शब्द है।

साँस-सहेली साहस दे तब सँग आ जा समझाती,
रक्तबिंदु गतिमान बना जीवन परकार चलाती;
उमड़ चले जलस्रोत नयन से वह डूबी उतराई,
उसके काया के पिंजर पर त्वचा मात्र थी छाई;
शनि सा उसके दृग मंडल को श्यामवृत्त था घेरे,
छिपा रही थी लज्जा तन की सूखे बाल बिखेरे;
सी सी जोड़ जीर्ण पट अपने जाड़े से कर सी सी,
घुली बतासे सी जाती थी, हिल थी रही बतीसी;
पी सी गयी घूँट विष के जब गयी बहुत ही पीसी,
खिली हुई थी सरसों मुख पर अधरों पर थी तीसी;
मारुत की मनमानी से मर्यादा मसके पट की,
मर मर बचा रहो थी कर से, थर थर करती, अटकी;
टूटी कमर, हुई थी दुख से उसकी छलनी छाती,
खँडहर की दीवार, भार से अपने झुकती जाती;
करसे चिथड़ा चीर सँभाले, सब की आँख बचाती,
अपनी गाथा लगी सुनाने वह रोती बिलखाती;
जब से लुटा सुहाग हमारा फूटा भाग्य गया सो,
तब से जीवन काट रही हूँ आँसू पी पी रो रो;
नहीं जीविका का कुछ साधन, कौड़ी को हूँ रोती,
एक एक दाना ही मुझको आज बना है मोती;
चरखे के पूनी सूतों में बनी हुई है चरखा,
फिर भी कर उगाहने वाले गया हमारा सर खा;
कभी कभी ही बड़े भाग्य से अन्नदेव के दर्शन,
मिल जाते हैं और नहीं तो, है विशेषतः अनशन;
इस पर भी 'पंचायत' ने कर लगा दिया है घर पर,
जीवन योंही भार मुझे था नई विपद आई सर;

मिला 'महत्तर'[1] को, कुभाव से प्रेरित हो जुट करके,
'ग्रामिक'[2] अष्ट-कलाधिकारि[3] सभ्यों ही ने गुट करके;
अनुमानित इन शेष करों के मिस मेरी कर होली,
बोली बोल लिया घर मेरा नीयत सब की डोली;
मेरी है गुहार, करुणानिधि, खा खा कठिन थपेड़ा,
बचा लीजिये डूब रहा है अब तो मेरा बेड़ा;
सुन यह कथा तमतमा आया भूपति का मुख मंडल,
सम्राज्ञी हो गई लाल, पड़ गये त्योरियों में बल;
आज्ञा दी, यद्यपि 'पंचायत' है स्वतन्त्र संस्था,
कर सम्बन्धी अपनी सीमा में कर उचित व्यवस्था,
घर नीलाम करा सकती है, कर उगाह है सकती,
बुरे भाव से नहीं किसी का बुरा चाह है सकती;
ग्राम आंतरिक शासन में 'भोगिक' भी छेड़ न करता,
साधारणत: राजकेन्द्र भी उनके हाथ न धरता;
घोर जहाँ अन्याय हुआ हो, अथवा अत्याचारी,
मानवता विरुद्ध आचरनों से कर प्रजा दुखारी;
राज मान को क्षति पहुँचावे अधिकारों के बल पर,
मर्य्यादा की करे न रक्षा, औरों से जल, छल कर;
तो चुप राज नहीं रह सकता उचित व्यवस्था देकर,
न्याय तुला का सम पलड़ा रख धर्म-पक्ष को लेकर,
दंड उचित दुष्टों को देगा दीनों की रक्षा कर,
अत: मुझे इस घटना में भी किसी चाल का है डर;

१-गुप्त कालीन 'विषय' के अन्तर्गत 'ग्राम' के अधिनायक को ग्रामपति या 'महत्तर' कहते थे।

२-३-दामोदरपुर ताम्रपत्र के अनुसार गुप्तकालीन ग्राम सभा (पञ्चायत) के सदस्यों (सभ्यों का ब्योरा निम्न प्रकार है:—

१-महत्तर,
२-अष्टकुलाधिकारी—आठ कुलों के मुखिया,
३-ग्रामिक—ग्राम के प्रधान व्यक्ति,
४-कुटुम्बिक—परिवार के मुख्य व्यक्ति,

असहाया के आय न थी कुछ, फिर घर पर कैसा कर ?
इस कुचक्र का अर्थ यही था अबला को करना सर,
अधिष्ठान का चतुर विषय-पति, निरालेप, एकाक्षी;
जाँच करे घटनास्थल पर लेकर प्रमाण औ साक्षी;
समाचार फिर देगा मुझको, सोच विचार करूँगा,
मुझको जो कुछ उचित जँचेगा निर्णय अपना दूँगा;
अनुसंधान चले जब तक, पंचायत भंग रहेगी,
और नहीं तो ठीक जाँच में जनता तंग रहेगी;
देवी अब मत घबड़ाओ तुम परिचारिका बना कर,
दस दीनार[1] वार्षिक वेतन और राज भोजन पर,
किया नियुक्ति तुम्हारी अब से, विचरो अंत:पुर में,
अब सब चिंता छोड़ गेह की, गावो अपने सुर में।
अपर निवेदक क्या कहता है, अपना सब संचित धन,
भोजनार्थ नित दस भूखों के, करता मुझको अर्पण;
उत्तम है संकल्प तुम्हारा लेता मान, निवेदन,
पर शासकगण पर योंही है राज काज की उलझन;
इससे मेरा मन्त्र यही है निगमों[2] की मति लेलो,
यह अपना अर्पित धन कोई श्रेणी[3] ही को देदो;
तौलिक, मृतिकार, पटकारादिक अपनी श्रेणी[4] कर,
सुरुचिपूर्ण व्यापार चला कर हैं समृद्धि शिखर पर;
राजाज्ञा से सुविधा के हित मुद्रा निगम बनाते,
अपनी अपनी मुहर लगा कर हुंडी भी चलवाते;

१—रोमन मुद्रा Danarius के अनुरूप १२४ ग्रेन सोने का चंद्रगुप्त द्वितीय द्वारा मुद्रित सिक्का,

२–३–४—दामोदरपुर ताम्रपत्र, इन्दौर ताम्रपत्र, मन्दसोर लेख, तथा बसाढ वैशाली की मुहरों में 'निगम' शब्द 'श्रेणी' के लिये आया है। गुप्तकाल में भिन्न भिन्न व्यवसायियों की भिन्न व्यापारिक समितियां थीं जिन्हें 'श्रेणी' कहते थे। 'श्रेणियाँ' व्यापार तथा बैङ्क का काम भी करती थीं।

'पञ्चनगर'[1] के 'कोटिवर्ष'[2] 'खांडायर'[3] के व्यापारी,
और भुक्ति 'पुण्ड्रवर्धन'[4] के निगमों के अधिकारी;
भिन्न भिन्न निज निगम बना कर नियमों पर अपने चल,
करते हैं व्यापरर देश में केन्द्र बना कर निश्चल;
'कौसम्बी' की समिति उसी विधि देगी ब्याज तुम्हारा,
उसी आय से भोजन का प्रबन्ध कर देगी सारा;
आपस में लो 'समय'[5] नियत कर, दोनों दल जो चाहें,
उसके ही अनुसार युगल मिल अपना धर्म निबाहें;
इससे है आदेश हमारा निगमों को सौंपो धन,
वही यथाविधि सब कर देगा दान आदि का पालन।
शल्किक[6], गोप[7], अग्रहारिक[8], ध्रवाधिकरण[9] निज विवरण,
आवेदन-पत्रों पर देकर करें स्वमति का वर्णन;
सादर उठ ध्रवाधिकरण ने अपना लेख सुनाया,
आज्ञा हो तो करें उपस्थित आवेदक है आया;
आज्ञापक[10] ने, किया निवेदक लेजा तुरत उपस्थित,
गया सुनाया भूविभाग का विवरण यह निम्नांकित;

*

भूमि है द्वादश 'कुल्यावाप'[12], पाँच 'पाटक'[13] है जिसमें 'खिल'[14],
'अप्रदा'[15], दोमट[16], सम, सहकूप, है बनचर रहित, नहीं अनमिल;
धान्य में चार 'द्रोण'[17], क्रयमूल्य, द्रव्य, खिल का, 'रूपक'[18], षट दस,
उर्बरा का तैंतिस दीनार, मूल्य का ब्यौरा होता बस;

१-गुप्त साम्राज्य का पूर्वी प्रांत था। २,३,४-भुक्ति पुण्ड्रवर्धन के अन्तर्गत खांडायर, पंचनगर, कोटिवर्ष विषय Distrcts थे। ५-नियम,

६-कर लेनेवाला कर्मचारी, ७-ग्रामों का आय व्यय रखने वाला,

८-दानाध्यक्ष, ९-भूमि कर लेने वाला, १०-राजाज्ञा सुनाने वाला,

११-गुप्तकालीन भूमि का माप जो आधुनिक एकड़ से कुछ अधिक था और जो पांच 'पादक' भूमि के बराबर था।

१२-१३-गुप्तकालीन माप। १४-बन्ध्या Fallow land १५-किसी के साथ बंदोबस्त न की गई। १६-मिट्टी की किस्म। १७-एक माप तथा आठ द्रोण एक 'कुल्य' के बराबर होता था। १८-चाँदी की मुद्रा।

है उत्तर 'साँरगधर' का खेत, पूर्व पथ जाता नगर प्रयाग,
प्रतीची में है महा विहार पास में संघाराम तड़ाग;
है दक्षिण गोचर भूमि प्रशस्त, ग्राम क्रीड़ास्थल, मल्लस्थान,
निवेदक देवग्राम वासी 'शरभ', लेता करने को दान;
एक पोतिक नैगम के प्रथम 'कुलिक'[1] के शासन में दे खेत,
देवगृह में दीपक के निमित्त, अर्चन, राजभोग के हेत;
है अर्पण करने का संकल्प दान में देकर सत दीनार,
सतत जिससे दस बटुओं का चल सके भोजन शिक्षा भार;
विषयपति ने आवेदन पत्र करा प्रतिलिपि, ले राज निदेश,
निरीक्षण करा 'महत्तर' से, दिया विवरण, निज मंत्र विशेष;
अधिकरण 'कौशाम्बी' से प्राप्त हुआ है चिट्ठा पूर्व कथित,
लगा दूं मुद्रा गरुडाङ्कित, महाराजा यदि दें स्वीकृति;
'भूमि-क्रय-हेतु ? पाठपूजा ! दान है अग्रहार के रूप,
रहेगी राज करों से मुक्त ध्येय है पावन परम अनूप;
अत: मैं स्वीकृति देता हूँ भूमि सम्पादन करो सविधि,
अत: पोतिक नैगम को, सौंप सकेगा, भूमि और धन निधि;
यह ब्यौरा ताम्रपत्र पर खोद निवेदक से ले भू क्रय दाम,
करावें पुस्तपाल[2], करणीक[3], अग्रहारिक[4] ग्रामिक सब काम;
महाक्षपटलिक[5] ! कार्य उपयुक्त कराकर ताम्रपत्र दे दो,
कार्यालय में रक्षित रहे, निवेदन-पत्र आदि यह लो;

१-विषयपति District officer के मन्त्रिमण्डल में चार सदस्य होते थे जो अपनी अपनी समिति (organisation) के प्रतिनिधि मुखिया होते थे (१) नगर श्रेष्ठी—नगर के पूँजीपतियों के समिति का मुखिया (२) सार्थवाह—व्यापारिक समिति का मुखिया (३) प्रथम कायस्थ—लेखक समिति का मुखिया (४) प्रथम कुलिक—उस समय की बैंक समिति का मुखिया।

२-उपमहाक्षपटलिक। ३-राज्यपत्रों में लेखबद्ध करने वाला कर्मचारी (Registrar) ४-दानाध्यक्ष। ५-Record officer.

पादवर्त-प्रत्यय[१] करे 'प्रमातृ[२]' शोध दें सीमा 'सीमाकर[३]',
'कर्त्तृ[४]' लें मानचित्र, लग जाय चतुर्दिक सीमा का पत्थर।

*   *   *

गौल्मिक[५]! तुम साखू के लट्ठे बड़े बड़े कटवाकर,
पके, हीर, निर्दोष, सभी को भली भांति छँटवाकर;
सरिता द्वारा बहा बहाकर सागर तट को भेजो,
काम शीघ्र हो मत विलम्ब हो, उसको तनिक सहेजो;
पोतों का विशाल बेड़ा इक अस्त्रसज्ज करवाकर,
सागरगामी बड़े बड़े जलयान सुदृढ़ बनवाकर,
रत्नाकर मंथन करना है रमा क्षमा अपनानी,
गुप्त राज्य की सीमा है पृथ्वी भर में फैलानी;
पोतों का निर्माण तीव्र हो पोत गेह पर अपने,
आशा है पूरी कर लेंगे उपनिवेश के सपने।

१–भूमि विभाजन और परिमितकरण (measurement)।
२–भूमिनापने वाला कर्मचारी। ३–सीमा निर्धारित करनेवाला कर्मचारी।
४–भूमि के मानचित्र का आलेखक। १७–जङ्गलों का अध्यक्ष।

३०

चन्द्रगुप्त—'दर्शन कर नवजात चन्द्र का नौ सेना जलयान समूह,
मंद पवन में सिंधु वक्ष पर मचल चला, रच पोतिक व्यूह;
शिथिल गात, प्रफुल्ल वदना, रसमय कल्लोलिनी मदमाती,
आकुल समागई पियहिय में रँगराती कुछ सकुचाती;
फूला नहीं समा प्योधि ने कर विधिवत सरि का सत्कार,
सम्मेलन सुख-सुधा पान कर, गले लगाया बाँह पसार;
संगम यह छुटता जाता है, धरा हुई जाती धुंधली,
देखें विधि कब दिखलाता है जन्मभूमि दृग की पुतली;
ओझल हुई देश की सीमा है सब ओर लवण सागर,
वीचि-वाटिका ही में विहरो अब मेरे मन नटनागर;
यहाँ नहीं वृक्षों की अवली नहीं विहग का कल कूजन,
नहीं ललित लोनी लतिकाओं का, अलिका, स्वागत पूजन;
शस्य श्यामला दूब कहाँ है जिसे देख मन बने हरा,
हिमगिरि का श्यामल अंचल वह माणिमुक्ता से भरा भरा;

वर्ण वर्ण के सुमन सलोने मन मोहित करने वाले,
नहीं यहां पर लख पड़ते हैं जिनमें नयन सुरा ढाले;
आगे पानी पीछे पानी, पानी ही है इधर उधर,
लहरें ये पहाड़ सी उठकर भय उपजाती हहर हहर;
कैसा कोलाहल है होता नाविकगण में खलबल क्यों ?
पालों की रस्सी क्यों कसते, सागर में यह हलचल क्यों ?
क्या आंधी आ गई उग्रसी उठी प्रभंजन की हुंकार,
लहरें शैल शिखर सी बन बन नभ पर शीश रही हैं मार;
छिन्न भिन्न कर पोत पुंज संकल्प हमारा भ्रष्ट किया,
'जल मरालिनी' डुबा दिया वह 'गरुड़' पोत को नष्ट किया,
नारिकेल के मोटे रस्से तड़ तड़ टूटे जाते हैं;
डाँड और पतवार हाथ से बरबस छूटे जाते हैं,
ऊपर उठा उठा डगमग कर पटक पटक कर मेरा पोत;
आंधी है कह रही सभी दल दूँगी इसीं सलिल में गोत;
लासन[1] दे, उतार पालों को नाविक गण संभालते नाव,
एक नहीं चलने देता पर आंधी का यह विकट बहाव;
आँधी से लोहा लेना है ससते नहीं हमारे प्राण,
नाविक वीर ! कमर कस कर अब खूब संभालो तुम जलयान;
पीयो लो कादम्ब माध्वी होकर हरा करो भ्रम घोर,
नौका साधो, डांड संभालो, जल उलीच कस पकड़ो डोर;
'कुक्कुट' नौका टूट टूट कर डूब रही पटरा डालो,
नौकारोही पोतों के जलमग्न न हों, देखो भालो;
पटरा है कर दिया नाव का उलट पलट, हैं क्या विधि वाम,
अरि होता तो उसे समझते तरकस तीर यहां बेकाम;
पानी का बुलबुला, सलिल के सर पर नांच रहा लाचार,
मानव को इस तरल तत्व से विवश माननी पड़ती हार;
प्रबल प्रभंजन ने किस थल से टकराया मेरा जलयान,
यह तो अरे! प्रवाल पुञ्ज है, नहीं प्राण-लेली चट्टान;

१-मस्तूल के चारों ओर रस्सी लपेटना।

नौका टूटी उसे छोड़, कूदो जल में मत घबड़ाओ,
नहीं डूबने दूंगा देवी ! मेरे संग तैर आओ;
तट है निकट हाथ दो मारो, बस प्रबाल पर पहुँचे हम,
लो अब यहां थाह पानी है और बहुत थपेड़ है कम;
हाथ भर गये ? हार गई तुम, आओ प्रिये उठा लें गोद,
उस ऊँचे तट की चोटी पर पहुँचाते हैं अभी समोद,
भींगे वस्त्रों मे कँपती ललना को उठा, सलिल कर पार,
बहुत धड़कते हुए हृदय को उरमें दाब, दुकूल सँभार;
रंग बिरंगे सीपी शंखों के सुंदर समूह पर चढ़,
जहां अपरिचित जल-पक्षीगण रहे बनाये अपना गढ़;
सादर ध्रुवदेवी को ले जा धीरज देकर बिठलाया,
और कक्ष में बैठ प्रेम से मिलकर एक गीत गाया।

३१

अहा अहा ! मूंगा समूह का यह है कोई सुन्दर द्वीप,
आंधी का आतंक घट गया गहन मुक्ति की घड़ी समीप;
गर्जन तर्जन मन्द पड़ गया बेड़े का अब करें बटोर;
धन्यवाद है विकट बवंडर निकल गया पच्छिम की ओर,
शंखनाद मेरी सुन कर अब पोत पुंज चल पड़ा उधर,
भगवत माया सब आ पहुँचे करुणा की चल पड़ी लहर;
डांड रोक, जलयान लगा दो तट पर, भारी लंगर डाल,
बाल बाल बच गये, किसी का हुआ नहीं इक बाँका बाल;
सागर ने अब शांति प्राप्ति की क्षत आहत का कर उपचार,
ले थोड़ा विश्राम पूर्व दिशि फिर करना है सागर पार;
पोत हमारे जो भू मण्डल की फेरी कर आते हैं,
कर व्यापार विदेशों से सोना भर भर कर लाते हैं;
असन वसन वर वस्त्र, कला कौशल के चोटी के सामान,
मिस्र, रोम, ईरान यवन देशों में जिनका है सम्मान;

मणि मुक्ता अनमोल आभरण, क्रीड़ा के, विलास के साज,
हैं भर दिये भेज भारत ने, जग का कोना कोना आज;
सौराष्ट्री शक क्षत्रप कुल ने 'जावा' में जा केन्द्र बना[1],
जीत, हस्तगत किया 'सुमात्रा' आदिक द्वीप समूह घना;
सागर से, व्यवसाय केन्द्र को जाने वाले यानों को,
राम राज्य में सुख सम्पति भर लाने वाले यानों को,
नौ सेना सशस्त्र दल ले वह लेता लूट उदधि सब छान,
देश विदेशी व्यापारी जन पर संकट है पड़ा महान;
उन द्वीपों की जनता पर भी दस्यु कर रहे अत्याचार,
भाग वहाँ के दुखित प्रवासी, भारत से कर रहे पुकार;
करके अंत लुटेरों का उनके अड्डों पर जाना है,
जल व्यापार मार्ग निष्कंटक मुझको शीघ्र बनाना है;
सागर के बिखरे द्वीपों का उपनिवेश बनवाना है,
दस्यु दमन,, उत्पात शमन कर, राम राज्य फिर लाना है;
राज मान में उत्पातों से है लग गया बड़ा बट्टा,
है कर-आय हुई जाती कम, जनता का मन है खट्टा;
शीश कुचल सारे दुष्टों का, उड़ता रङ्ग जमाऊँगा,
गरुड़ोध्वज, जल थल पर सारे, हरि इच्छा फहराऊँगा;

१-जावा जनश्रुति ।

३२

चन्द्र— नहीं मिलता था जिसका पार,
अजय वह दुर्गम पारावार;
किसी विधि पाई उस की थाह,
बड़ी है कृपासिंधु की बाँह;
झलकती है वह धरा समीप,
दीखता है संमुख 'यवद्वीप';
अरे वह है हंसों का गोल,
नील जल में करता कल्लोल;
बढ़ा तन बढ़ हैं रहे मराल,
दिया मुझको है भ्रम में डाल;
पोतदल है क्या खोले पाल,
इधर चल पड़ा देख कर माल;
दस्युदल के होंगे जलयान,
लीजिये लगे बरसने बाण,

अनल पर गिरने चले पतंग,
हुआ जाता है सब मद भंग;
बढ़ चलो वीरो ! करो न देर,
वृत्त रच इन को लेना घेर;
बना कर फन्दा वृत्ताकार,
करें हम बाणों की बौछार;
बनाते जायें घेरा तंग,
अंत में टूट सभी इक संग;
करें खर अस्त्रों की भरमार,
डुबादें असि के घाट उतार;
लुटेरों का बेड़ा बलवान,
देख कर श्रीयुत सब जलयान;
लूटने आया मेरा माल,
पड़ी है टपक शकों की राल;
नित्य के परके करके लूट,
सदा सस्ते जाते थे छूट;
दिया बायन अच्छे घर आज,
पाप का घड़ा भर गया आज;
पढ़ा देता हूँ ऐसा पाठ,
मार जायेगा उन को काठ;
कुचल देता हूँ उनका शीश,
सुलायेगा उर में वारीश,
चतुर्दिक फैला नौका जाल,
दिया अरि पर है घेरा डाल;
लगा होने भारी संग्राम,
वीर कितने ही आये काम;
युगल दल ने बरसाये तीर,
गया मथ लोहित सागर नीर;
चन्द्र जब पड़ा शकों पर टूट,
गया अरियों का साहस छूट;

अग्नि बाणों की कर भरमार,
दस्यु नौकाएँ कर दीं क्षार;
भाग निकले जब अरि जलयान,
डुबा करके ही छोड़े प्राण;
गया बेड़ा दुष्टों का डूब,
विश्व था गया शकों से ऊब;
लगा था चन्द्र भुजा में तीर,
विजय तक डटा रहा वह वीर;
विषम विष बुझे बाण का घाव,
लगा डग-मग करने तन-नाव;
घाव लख महिषी हुई अधीर,
विकल हो, उसने भर दृग नीर;
चूस विष लिया किया उपचार,
किया भगवत ने बेड़ा पार;
युगल ने पाया जीवन दान,
गले मिल किया ईश आह्वान;

हर्ष से सब जलयान समेट,
खेलते हुये मीन आखेट;
पहुँच ही गये मनोरम द्वीप,
द्वीपवासी थे खड़े समीप;
नृत्य कर, छेड़ वाद्य में राग,
दिखा कर आगत हित अनुराग;
अनोखे रत्नाभूषण धार,
विविध रङ्गों से देह सँवार;
लगे करने स्वागत ले भेंट,
सीप, विद्रुम, मुक्ता आखेट,
चन्द्रने आभूषण पट बाँट,
लगाया नौकाओं को घाट,

विलक्षण प्रकृति छटा अवलोक,
धरा छू, विचरे बने अशोक,
मनोरम थे देवालय ग्राम,
बने थे धवल धाम अभिराम,
अनोखे खग कल करते गान,
श्रवण कर, पुलकित होते प्राण,
नारियल कुञ्ज सरित के कूल,
विविधि तरु भाँति भाँति के फूल;
कहीं पर शाद्वल, शीतल कुंज,
कहीं पर थे मूँगों के पुंज;
रमण कर, गरुड़ोध्वज को गाड़,
धूल सब विकट राह की झाड़;
वात जल पा रुचिकर अनुकूल,
गया दम्पति स्वदेश को भूल।

३३

ध्रुवदेवी—आओ सखि ! हम कृष्ण बनें तुम बनो राधिका रानी,
पत्थर को भी, बजा बांसुरी कर दें पानी पानी;
रास रंग कर इस मंदिर में आओ चित्र बनावें,
भीतों पर निज भाव भंगिमा अंकित कर दिखलावें;
यह अशोक है इसके नीचे बैठी जनक दुलारी,
मुरझाई सी ध्यान निरत है ज्यों लतिका हिम मारी;
रूखी केश-लता बिखरी है मुख मंडल को ढकती,
प्यासी आंखें देख रहीं भू, नहीं उठा वह सकती;
दृश्य दूसरा है यह देखो काञ्चन मृग का आना,
जिसे देखकर रामचन्द्र से सीता ने हठ ठाना;
चर्म हेतु हठ किया सिया ने सीतापति तब धाये,
मृग के पीछे दौड़ रहे हैं; मैंने चित्र बनाये;
सूने में बन यती सिया को रावण हर ले भागा,
चित्र तीसरा इसमें रावण मारा गया अभागा;

चौथी काम दहन लीला है मदन-बाण जब खाया,
तब शिव ने तीसरे नयन से मनमथ, देख जलाया;
याद याद कर कथा देश की रङ्ग भरा करती हूँ,
तुम सब में, अपनी शिक्षा दे नवल भाव भरती हूँ;
इम सबके संसर्ग मात्र से बदली जीवन धारा,
आर्य धर्म भारतीय सभ्यता ने अब तुम्हें सँवारा;
डाल छाप पावन संस्कृति की दी मूकों को भाषा,
अपना कर तुम द्वीप जनों की पूर्ण हुई अभिलाषा;
सजनि! इसी विधि रूप रङ्ग भर खेलो भगवत लीला,
बंसी बजा रास रच यों ही धार्मिक बनो सुशीला;
अपना धर्म निबाहे जाना कथा न कभी भुलाना,
उत्सव संग सभी लीलाएँ करना और मनाना;
जाते हैं हम प्रीति बढ़ाकर, तुम सबको अपनाकर,
रहो सुखी, सात्विक जोवन रख, भगवन के गुन गाकर;

*

ध्रुवदेवी—चलो, वीरवर, चलें देश को, अब है जी घबड़ाता,
इन द्वीपों में अधिक ठहरना मुझको नहीं सुहाता;
जलक्रीडा यथार्थ कर ली है, विजय लक्ष्मी पाई,
दक्षिण पूर्व द्वीपपुंजों में गरुड़ध्वजा फहराई;
दस्यु दमन कर, सागर की, कर दीं निष्कंटक राहें,
लहराया व्यापार देश का जिधर फिरी ये बाहें;
छोड़ो मोह और देशों का लौट चलो तुम अब घर,
अनुपस्थिति उचित नहीं अरियों को मत दो अवसर;
चन्द्रगुप्त—यह अपूर्व आनंद छोड़कर चलने को उद्यत हो,
स्वप्न लोक से अधिक कहीं सुख पाओगी जाग्रत हो?
नीड न अपना बना सके थे फेर रहे जब दिन के,
चुनते फिरे देश देशों में कौतूहल वश तिनके;
दिन पलटे हठ करके घरमें स्वयं लक्ष्मी आई,
कुछ दिन सँग सुख से विचरेंगे थी मन में ठहराई;

उस नव जग के कोलाहल से भाग यहां था आया,
भूल गया सब जग को था जब से तुमने अपनाया;
अब तुम ऊब गई इस सुख से चलने की है ठानी,
अच्छा तो अब चलना ही है मत चिंतित हो रानी!
है अनुकूल पवन, नाविकगण, लंगर तुरत उठा लो,
पोतों को दे पाल शीघ्र ही भारत पथ पर डालो;
लेती चलो साथ में प्रिय तुम लाल लाल ये तोते,
लेती चलो सीप ये सुंदर सप्त रंग में गोते;
सब सहेलियां लेती चलना देश देश की ललना,
जिन्हें लहरियाँ गीत सुनातीं झुला मौज का पलना;
माला यह प्रवाल पुंजों की सागर उर में मेली,
बीज रूप है, क्षमा रमा सी निकल प्रकृति संग खेली;
नारिकेल अवली अंचल के ओट झाँकती सरसी,
सरसिज संकुल खग कुल मंडित शोभा जिस पर बरसी;
स्वर्ण कंगूरे युत देवालय वास्तु कला की सीमा,
निशा कोहासे में प्रकाश तारों का धीमा धीमा,
शाद्वल, चित्रित सुमनपुंज से, कुंज सुधारस सींचे,
सागर सुंदर, जिसने छाया चित्र गगन के खींचे,
इनका चित्र बनाकर लेती चलो साथ में अपने,
जिन्हें देखकर सुध कर लेंगे ये सब सुंदर सपने;
उड़ जलयान! पाल पंखों से ले चल गंगासागर,
सुरसरि के दर्शन कर पहुँचें अपने नगर उजागर।

३४

पश्चिमीय प्रांतों का शासक 'स्वामी रुद्रसिंह' क्षत्रप[1],
आसपास के छोटे राज्यों को छल बल कर गया हड़प;
शक के उस सौराष्ट्र राज्य सीमा का जो दक्षिण प्रत्यंत,
उस मालव के 'विष्णुदास' पर था जो गुप्त राज्य सामंत—
आक्रमण कर दिया अचानक शकपति ने पाकर अवसर,
हुए कई संग्राम विकट पर बढ़ आया उज्जयिनी पर;
मालवेश ने घबड़ाकर तब देख हाथ से जाता देश,
सेना की सहायता मांगी दूत भेज, कर विनय विशेष;
चन्द्रगुप्त ने समाचार पा इस क्षत्रप आक्रमण का,
शक की इस बढ़ती धारा पर, वह चौंका, माथा ठनका;
इक क्षण रह निमग्न चिन्ता में, थिर हो करने लगा विचार,
मालव ले लेता है तब फिर हम पर करना रहा प्रहार;

१–शक शासकों की उपाधि Satrap

इम निश्चित अभी बैठे थे संकट है आ गया निकट,
उनमूलन करने का इसके, है उपाय करना झटपट;
हमको है सचेत हो जाना अरिका शीश कुचलना है,
दल बल सहित मुझे चलकर अब इन दुष्टों को दलना है;
मंत्री 'वीर'[1], संधि-विग्राहिक, सेनाधीश 'अम्रकार्दव'!
रण प्यान की करो व्यवस्था रुकना अधिक नहीं सम्भव;
हमको बाह्लीक वालें को करना है भारत के पार,
इनके उदगम तक जाकर के करना है इनका संहार;
युद्धक्षेत्र में उज्जयिनी के है पछाड़ देना लड़कर,
नाम मिटा देना है इनका जड़ उखाड़ पीछे पड़कर;
मालवेश घेरे में हैं हमको भी तुरत पहुँचना है,
घोर आक्रमण करने वाले रिपु को अभी समझना है;
अब विलम्ब का काम नहीं है लो तुम अपनी सैन्य संभाल,
इसी सांस में 'चष्टन' कुल को दूँगा भारत पार निकाल;
सेना का संभार हो गया जै गणेश कह करो पयान,
यों ही रणभेरी बजने दो सदा दाहिने हों भगवान ।

टिड्डी दल सी सेना असंख्य, पंक्तियाँ बँधी, है नियमित चाल,
शिरत्राण गरुड़ की मूर्ति युक्त, जिससे छल्लों का कवच जाल—
झालर सा गर्दन पर हिल हिल कर पृष्ट-चर्म पर लोट लटक,
झंझन सा मधुर शब्द करता, जब सैनिक चलते पैर पटक;
धनु वाम कंध से लटक रहा तूणीर पक्षयुत बाण-भरे,
नंगी तलवार लिये सैनिक हैं पृष्ट देश पर चर्म धरे;
तुरगों पर जो आरूढ़ वीर ले धनुष, भल्ल, तोमर, कटार,
हय सहित सुसज्जित लौह वर्म से चले जा रहे बाँधे तार;
फिर घमड़ा आता घन घमंड सा मत्त झूमता यूथप दल,
जिसके चिंघाड़ों से घंटों से, गूँज रहा सारा भूतल;

१–कवि वीरसेन संधिविग्राहिक मंत्री

हैं चार अश्व संचालित रथ सारथी निपुण जिन पर सवार,
पीछे यानों पर सजा हुआ चलता शतघ्नियों का प्रकार;
यातायाती बल-तारतम्य, पहरों, वारों, पखवारों तक,
चलता रह गया अटूट धार से क्षत्रप के आगारों तक;
नायक अधिनायक, गजाध्यक्ष, रथवान भटाशव, सेनापति,
थे संचालन कर रहे यथा विधि सेना की नियमित गति यति;
सेना के पग से उठी धूल छा गई मेघ सी नभ ऊपर,
पग उठ जाते थे सहज आप सुनकर मारू के राग अमर;
सेनाओं ने अरि के संमुख जुट बोल दिया धावा इक दम,
लख अकस्मात लाखों सेना शकदल घबड़ा कर गया सहम;
रह गई अचंभित शकसेना लख गुप्त चढ़ाई का जुआर,
लख अस्त्र शस्त्र सज्जित सेना अरियों का साहस गया हार;
हय गज रथ औ पदाति सेना ने आक्रमण कर दिया सबल,
जिसके मारों से शक सैनिक दल पीछे हट हो गया विकल;
सूड़ों से, शक सैनिक लपेट, कर चूर, दबा, लेजा ऊपर,
यूथप दल, चिथड़े कर देता, काया को पटक पटक भू पर;
अरि की रथ सेना कुचल गजों ने पग से रज में मिला दिया,
दातों से हय दल छेद छेद उनमें भी भगदड़ मचा दिया;
जब मार पड़ी तलवारों की, भालों की भी भरमार हुई,
छक्के छुट गये, कमर टूटी, अरि के प्रतिकूल ब्यार हुई;
फिर महा घोर संग्राम हुआ झट चन्द्रगुप्त ने भल्ल मार,
क्षत्रप के सींने में घुसेड़, कर दिया हृदय के आर पार;
हो गया अंत उसका जीवन प्रतिशोध अंत में ले डाला,
फिर रणचंडी को लगा भेंट वह करने मुंडों की माला;
कुछ, खेत छोड़ हो तितर बितर हो गये हवा, कुछ खेत रहे,
कुछ पीठ दिखा भागे कुछ लड़ते गिरकर पड़े अचेत रहे;
जब काम आ गया सेनानी जब नहीं किसी में रही जान,
तब शक सेना ने आत्म समर्पण करके झट ली हार मान;
फिर उसी सांस में किया चन्द्र ने सब सौराष्ट्र विजय बढ़कर,
जिसने कुछ भी प्रतिरोध किया कर दिया अंत उसपर चढ़कर;

यह युद्ध बड़ा था मर्म पूर्ण भारत की भाग्य परीक्षा थी,
शक उल्टे पाँव लौट जावें उनको अंतिम यह शिक्षा थी।

३५

श्री संध्या की सकुचाई, दिनकर का डूबा बेड़ा,
नभ-वीणा के तारों को, वाणी ने स्वर से छेड़ा;
हरियाली झुकती जाती, हर हर कर बहता नाला,
विधि के प्रपंच ने मानो, पी ली हो मादक हाला;
हलधर लौटे निज घर को, अपने कामों से ऊबे,
खग आरामों में रमते, सब श्याम रंग में डूबे;
व्यवहार बंद कर जग का सब ने दूकान बढ़ा दी,
निश्वास लिया तरु दल ने, खग कुल ने रसना साधी;
जगमग कर दिये जलाकर, बच्चों ने दिये जलाकर,
कर रही निशा है ठंढा आंचल से उन्हें बढ़ाकर;
खोई सी दिशा बधू है, लख झुकती घन अँधियाली,
आ श्याम मेघ ने धो दी उसके सोहाग की लाली;
हिचकी ले लेकर ठंढा हो गया कोलाहल रन का,
है गरम रक्त से सींचा यह खेत अमर जीवन का;

*

बादल के अवगुंठन से, लुक छिप लख लेते तारे,
उन अंग भंग वीरों को, जो खेत रहे बेचारे;
कुछ घायल तड़प रहे हैं, स्वाँसा रुक टूट रही है,
बिन पानी डूब गई है वह नाड़ी छूट रही है;
फूले शव के जालों में रुकती फँसती सरि धारा,
दम ले, तम से ठोकर खा, लेती है थाम किनारा;
तट खेत हुए सुभटों के लोथों से पटा हुआ है,
है पड़े कहीं रथ टूटे, करि दल भी कटा हुआ है;
सहसा सहस्र उलकाएँ, चमकीं, करती जग, जगमग,
हुंकारनाद घहराया, हो गई धरा भी डगमग;
हैं सैनिक शिविर हजारों अंचल में सरि के छाये,
जिनके ऊपर गरुडध्वज, नभ को छूते फहराये;
एक ओर भयानक कानन जिसमें सूखे पत्ते झड़,
सिंहनाद-कम्प-प्रतिध्वनि से हिल हिल कर करते खड़ खड़;
है सुप्त पवन जग जाता सुनकर उलूक की हुट हुट,
दूरों तक सुन पड़ती है प्रहरी के पग की खुट खुट;
है शिविर-वृत्त के भीतर केन्द्रीय-शिविर इक सुंदर,
है मुख्य द्वार पर जिसके कुछ यवनी दल पहरे पर;
सम्राट शिविर भीतर हैं, चिंता में डूब टहलते,
चाँदी के आधारों पर काँचन प्रदीप हैं जलते;
कवि वीरसेन मंत्री ने सादर यों किया निवेदन,
क्यों आज सुधाकर को यों घेरे हैं चिंता के घन;
है आज पर्व उत्सव का जो बड़ी विजय है पाई,
हमने सुराष्ट्र के रन में अनुपम वीरता दिखाई;
कर दिये दाँत हैं खट्टे, अरि सीमा छोड़ सिधारे,
अब इधर नहीं झाँकेंगे बेचारे डर के मारे;
सुन, चन्द्रगुप्त ऊपर लख, होठों पर ला मुस्काहट,
फिर डाल दृष्टि चारों दिशि बोले करके थिर दृगपट;
सौराष्ट्र युद्ध में मेरी पर्याप्त सैन्य काम आई,
अरियों ने छापे मारे छिप छिप भी किया लड़ाई;

है 'सप्तसिंधु', हो, चलना, भारत सीमा के बाहर,
उस 'वाह्लीक' जनपद तक, हैं जहाँ विचरते निश्चर;
यात्रा है लम्बी, मग है अति विकट, महा दुखदायी,
रण सामग्री ले जाना! यातायाती कठिनाई!
कुछ कुमुक और सामग्री है मुझको तुरत मँगानी,
वीरो दिखलाना होगा हम सबको अपना पानी;
ली शपथ विजय की सबने मसतक से करवालें छू,
सब बोले हम पूरे हैं सर करने को सारी भू;
तब वीर चन्द्र ने सबका वर साहस, शौर्य सराहा,
'तुम सबने समय समय पर है पूरा धर्म निबाहा';
भारी कपाल पर शोभित थे केश कलाप घनेरे,
जिसको किरीट सोने का मणि अंकित रहता घेरे;
संतोष दृगों में झलका, दौड़ी मुख पर अरुणाई,
कुंतल घन हट जाने से विस्तृत ललाट छवि छाई;
चल दिये और सब सैनिक संकेतो का पालन कर,
शिरत्राण खड्ग से छूकर, झट, सैनिक अभिवादन कर;
सेनानी सब मंत्रीगण रह गये मंत्रता के हित,
आगामी अभिक्रम का सब व्यौरा करने को निश्चित;
वादाविवाद होकर के हो पाया पथ का निश्चय,
फिर गोष्ठी भंग हुई यह, कहती 'भट्टारक की जय';
आदेश मिला सेना को कि 'सिंधु-सप्तमुख' होती,
साम्राज्य हार में पथ के सब विजित प्रदेश पिरोती;
ले उद्गम-केन्द्र शकों का पहुँचे वह 'बलख' 'बुखारा',
वे भूल न इधर निहारें, दें उत्तर उन्हें करारा;
बनचर जातियाँ वहाँ की जो आने को हैं परकी,
जो हमें लूट ले जाते, अब चलें, बचावें घर की;
भारत सीमा छूने का कर सके न कोई साहस,
जड़ से है खोद हटाना यह कंटक हमें अभी बस;
सेना झट पैर बढ़ावे नभ में झंडा फहराती,
वह विजयलक्ष्मी देखो संमुख हँसती है आती;

३६

यह सेना नदी सी बढ़ी आ रही,
घटा सी यह घिर कर चढ़ी आ रही है;
　　है अरियों के जंगल का करती सफाया,
　　पहाड़ों ने स्वागत में सर को झुकाया,
　　गईं सूख, नदियों ने पथ दे बुलाया,
स्वयं मृत्यु भी डर से थर्रा रही है,
　　कभी जा पड़ी मरु में, रो, धूल छानी,
　　हवा हो गया है जहाँ बूँद पानी,
　　नहीं पेड़ पल्लव की छाया सुहानी,
किरन वारिजल बन के तरसा रही है,
　　नहीं मारती कोई चिड़िया कभी पर,
　　हवा रेत से जल के, खाती है चक्कर,
　　नहीं मेघ की दाल गलती जहाँ पर,
वहीं 'धार' पानी की लहरा रही है,

कभी जंगलों ही में मंगल मनाती,
हवा कितने ही ग्राम नगरों की खाती,
कहीं कृषि निरखती हुई, लहलहाती
धरा मग में सोना ही बरसा रही है,

कहीं जौ की बालों में, बालों को, बाला,
सजा है रही गूँथ फूलों की माला,
मटर फूल ने रंग आँखों में ढाला,
कुसुम में 'बसंती' बनी, गा रही है,

नगर राजपथ के किनारे-किनारे,
है तरु राजियों पर विहँग प्यारे प्यारे,
चतुष्पथ में उपवन हैं सुंदर सँवारे,
जहां यंत्रिका नीर वर्षा रही है,

हैं प्रासाद, पथ के युगल दिशि बनाये,
कई तल प्रकोष्ठों में, नभ को उठाये,
बहुत फूल पत्तों से चित्रित सजाये,
चतुर्दिक गली बीथि छवि छा रही है,

है मंदिर की चौखट अलंकृत मनोहर,
कहीं गर्भ-गृह[१] में हैं हरि तो कहीं हर,
खुदे द्वार पर कीर्तिमुख[२], गण, कमल वर,
मकर पर कहीं गंग लहरा रही है,

शिखर[३] आमलक[४] पर है ज्यामिति के जाले[५]
कलश चमचमाते हैं सोने के ढाले,
परिक्रमा हित हैं प्रदक्षिण निकाले,
जहां घंट ध्वनि घोर घहरा रही है;

१—मंदिर की कोठरी जिसमें प्रतिमा रखी जाती है।
२—गुप्तकालीन तक्षण कला का एक अलंकरण-प्रकार जिसमें सिंह मुख की आकृति होती थी।
३—मंदिर के गर्भगृह की सब से ऊपरी बनावट।
४—शिखर का निचला भाग।
५—जालियां Geometrical drawings

नगर छोर पर हैं जलाशय औ वापी,
जहाँ कूजते नाचते हैं कलापी,
नगर की बनावट है तौली औ नापी,
सभी वस्तु ढब की बनी भा रही है,
है उपवन के सम्मुख सरोवर निराला,
विभाजित जिसे करती भीतों की माला,
निकाला, भरा करता, पानी, प्रणाला,
नहाने को टोली चली आरही है,
है जिस ओर चतुरंगिनी यह निकलती,
उधर बैरियों की है छाती दहलती,
यह अरियों को दलती पटों को बदलती,
विजय केतु हर ओर फहरा रही है,
हैं, सैनिक, जिन्हें छू नहीं है गया भय,
उठा शीश जिनका है जैसे हिमालय,
जिधर आँख फेरी उधर हँस उठी जय,
धरा घूम फिर कर विरुद गा रही है,
यह कड़ियाँ उठाते, यह लड़ियां बिठाते,
यह दुख के पहाड़ों को हँस कर उठाते,
हथेली पर ले प्राण तलवार खाते,
बढ़े जाते, दुनिया झुकी जा रही है,
नहीं पैर अब इनका पीछे हटेगा,
नहीं सामने इनके कोई डटेगा,
उठायेगा सर कोई कंटक, कटेगा
अखिल सृष्टि भिड़ने से भय खा रही है,
वह बाधाओं पर पिल पड़े जैसे आंधी,
नदी पाट में तरनियाँ पाट बाँधी,
कही सरि में, जोड़ी दुकूलों की नाँधी,
बही जल में, थल में उड़ी जा रही हैं,

शतद्रु[1], पुरुषिनी[2], असिक्नी[3], वितस्ता[4],
बता मार्ग देतीं, चरण जल परसता,
निरखती ही हँसती धरा की सरसता,
प्रतीची से उत्तर को कतरा रही है,
बढ़ी, सप्तमुख-सिंधु को पार करती,
चढ़ी शैल पर फिर नदी से उतरती,
कभी घाटियों में घटा सी उभरती,
पहाड़ों के दर्रों को दरका रही है,
कभी 'तक्षिला' के बिहारों में रमती,
कभी हिमभरी चोटियों पर ही जमती,
कभी अक्षयोटों के झुरमुट में थमती,
कभी देख पिस्तों को ललचा रही है,
यवनियां लटें दो पयोधर पर डाले,
वे दाडिम के दानों को अपने निकाले,
वे 'सरदों' को अपने हृदय में संभाले,
छिपीं अङ्क में कँपकपी आ रही है।
वह अँगूर बाला के रस में बिलसती,
पुतलियों की मतवाली आंखों में बसती,
मनाती हुई मोद, पीती विहँसती,
व्यथा औ मिलन की कथा गा रही है,
बढ़ी 'मद्र' से पाँव 'कपिशा' में रखती,
वह 'पुष्पावली' वर 'कुभा' को निरखती,
चली बन को लखती हुई दाख चखती,
वह नगमाल, जयमाल पहना रही है,
हुई बाह्लीकों से मुठभेड़ आकर,
लगा काक धन, रिपु जुटे गुट बनाकर,
लड़े वीरता से वे छल बल दिखाकर,
खड़ग सर मधूकों सा टपका रही है,

१–सतलज, २–रावी, ३–चेनाब, ४–झेलम।

कई दिन हुई घोर गहरी लड़ाई,
युगल दल की सेना बहुत काम आई,
विवश पीठ, खा मार, शक ने दिखाई,
न अरि-सैन्य भगने का पथ पा रही है,

नदी रक्त की बह गई उनके घर में,
गये जूझ नर नामधारी समर में,
यवनियां विलखतीं शिला मार सर में,
क्षमा मांगतीं सब, प्रलय छा रही है,

विदेशी यवन जातियों को हराकर,
इधर के प्रदेशों में सत्ता जमा कर,
'बलख' तक भी भारत की सीमा बढ़ाकर,
यह अक्षौहिणी लौटती आ रही,

जो प्रतिभट बना झट, कमर उसकी तोड़ी,
यहीं से लुटेरों की बस जान छोड़ी
नहीं आगे बढ़, रास पूरब को मोड़ी,
हिमालय की ठंढी हवा खा रही है,

वह हिमगिरि के अंचल में कश्मीर प्यारा,
प्रकृति ने जिसे अपने कर से सँवारा,
अमर जिस पर मरते हैं, आँखों का तारा,
उसी देश की छबि पर बौरा रही है,

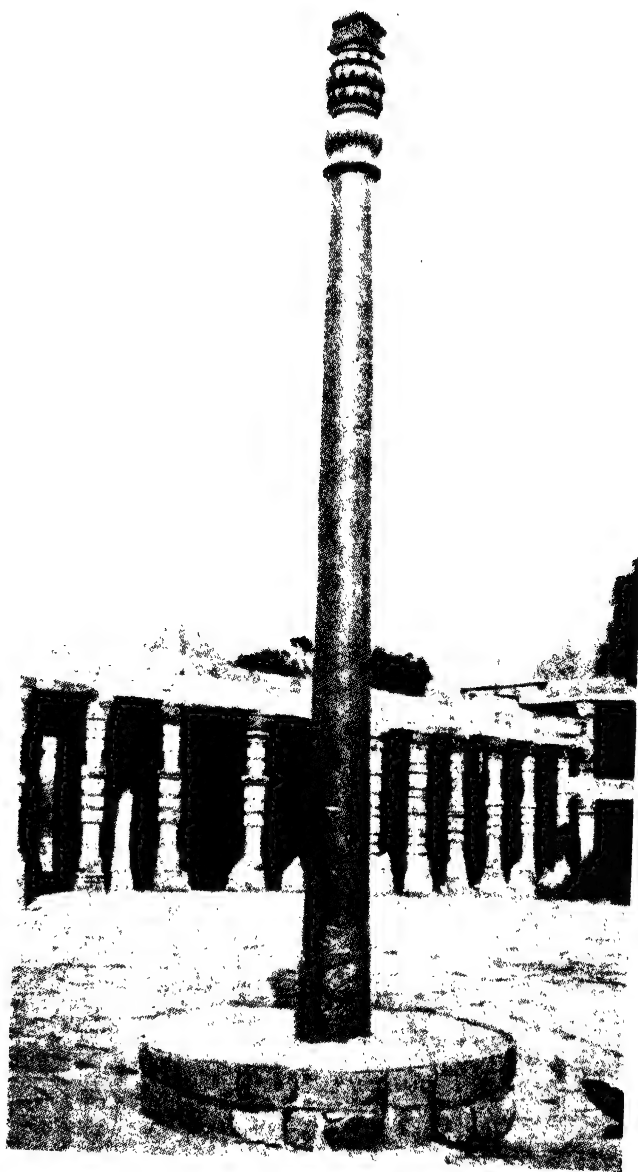
वह कस्तूरी-मृग-चर्म-पर शयन करती,
वह मेवों को चखती, कुसुम चयन करती,
कहीं दिन बिताती, कहीं रैन करती,
यह केसर के खेतों में रँग ला रही है,

निरख सेव लाली भरा मुँह में पानी,
सरित के दुकूलों की रंगत है धानी,
हर एक कुंज कहता है अपनी कहानी,
लता कुछ पता देके सकुचा रही है,

मधुप हिय में नलिनी, छिपाये जहाँ है,
है जब चातकी पूछती 'पी कहाँ' है,

निकलती नहीं मुँह से तब 'हाँ' न 'ना' है,
पकड़ जाय चोरी न घबड़ा रही है,
'चिनारों'[1] पर बुलबुल है छेड़े तराना,
नशा में निशा भूली अपना विराना,
सभी से लिपटना सभी को रिझाना,
सुरत कर रही भूलती जा रही है,
कभी 'डल' में, 'वूलर' में तरनी चलाई,
कभी अपने फंदों में हरिणी फँसाई,
कहीं हंस माला-सुमरनी बनाई,
प्रकृति नित नये पाठ पढ़वा रही है,
जिन्हें देखकर उर्वशी और रम्भा,
किया करती हैं ईर्षा और अचम्भा,
सहज सुंदरी रस भरी शुचि अदम्भा,
रमणियों की टोली बिहँस गा रही है,
धरा पर सभी स्वर्ग के सुख उड़ाती,
सफल अपने जीवन के सपने बनाती,
पदक भेंट उपहार वह मग में पाती,
यह ध्वजिनी विजय केतु ले धा रही है,
अगम पंथ वन शैल बीहड़ का नापा,
कहीं युद्ध ठाना कहीं मार छापा,
कहीं की चढ़ाई कहीं गर्त टापा,
अभी देश 'केकैय' में मंडला रही है,
पहुँच 'इन्द्रपथ' श्याम यमुना के तट पर
लिये वीरसेन और मंत्री सुभट चर,
महाराज ने सब समर से निपट कर,
किया याग, स्वाहा की ध्वनि छा रही है,
विशद 'ताम्रलिपि'[2] की है विज्ञान-शाला,
जहाँ दे के अद्भुत रसायन मसाला,

१—वृक्ष विशेष २—गुप्त काल में भारत के पूर्वी तट पर ताम्रलिप्ति एक बहुत बड़ा पोत गृह (बंदरगाह) था जहाँ लोहे का कारखाना था और जो पोत निर्माण का केन्द्र था।



चन्द्रगुप्त द्वितीय का मेहरौली का लौहस्तम्भ

है भट्ठी में जाता जहाँ लौह ढाला,
वहीं से विजय-लाट बन आ रही है,
अमर कीर्ति की लौह कीली गड़ा दी,
उसी दंड पर निज पताका उड़ा दी,
झुके सर नहीं जान अपनी लड़ा दी,
धुरी है वह जिसपर धरा धा रही है,
वहाँ से चली आके 'मथुरा' लिया दम,
वहाँ रवितनूजा की, की अर्चना थम,
छटा बंसी वट तट निरख कर, दिये रम,
वह 'चर्मनवती'[1] की लहर खा रही है,
पुनः वाहिनी 'मालवा' देश आई,
रही कुछ समय तक 'उदयगिरि' पर छाई,
महाराज को भेंट देने बधाई,
प्रजा दौड़ दर्शन को अकुला रही है,
किया ध्रुव[2] पर जब एक दानव ने धावा,
लगे भय से सब काटने देव कावा,
बधा, हरि ने शूकर का करके बनावा,
'उदयगिरि' पर वह मूर्ति छवि पा रही है,
निकट कीर्ति है संधि-विग्रह सचिव की,
है कवि 'वीर' ने थाप दी मूर्ति शिव की,
गुहातम में भी जो बनी ज्योति दिव की,
कला 'वीरसेनी' वह दिखला रही है,
पुनः जा 'महाकाल' को सर झुकाया,
'उज्जयिनी' नगर चन्द्र को ऐसा भाया,
अपर राजधानी इसे कर सजाया,
सुयश, पूत 'शिप्रा', सतत गा रही है,
परिस्थिति कठिन में कुशलता से खेकर,
बचा डूबती नाव को हाथ दे कर,

१—चम्बल, । २—पृथ्वी ।

बड़े गर्व से चन्द्र का नाम लेकर,
तरंगों में जनता बही जा रही है,
यही 'शक्र' सा है, 'शकारि' औ विजयी,
परम भागवत 'चन्द्र' सम्राट विनयी,
रतन पारखी विज्ञ पंडित सुहृदयी,
सतत कीर्ति सागर-लहर गा रही है,
जो भारत का है भक्त, प्रभु का उपासक,
हैं जिसके विमल नाम से काँपते शक,
किया राज्य एक छत्र हो कर अकंटक,
अखिल विश्व में उसकी जय छा रही है,

३७

चन्द्र संरक्षण में आकर,
राज्य से अग्रहार पाकर,
बने हैं शिक्षा-केन्द्र 'विहार',
गया बढ़ता इनका विस्तार;
बने देवालय शिक्षा धाम,
चन्द्र की फैली कीर्ति ललाम;
बुद्ध का अनुयायी रणधीर,
'अम्रकार्दव' सेनानी वीर;
देखने गया 'कोकनद वोट',
विहार अनूप शैल की ओट;
ग्राम 'ईसरवासक' दे दान,
कराया शिक्षा का कल्याण;
बुद्ध की मूर्ति करा निर्माण,
सुस्थापित किया वहीं सविधान;

लाल प्रस्तर की मूर्ति अनूप,
गढ़ी जीवन ही के अनुरूप;
पारदर्शक संघाटी–चीर,
पूर्ण झलकाता दिव्य शरीर;
बैठ पद्मासन में भगवान,
धरे हैं निराकार का ध्यान;
दक्षिणावर्त केशयुत शीश,
छिपाये कुटिल केश उष्णीष;
मुखाकृत सौम्य, भाव गंभीर,
तीर सी भवें, दृगों के तीर;
अलंकृत है मंडल का कोर,
प्रभा जिसकी फैली हर ओर;
छोर पुष्पांकित रुचिर अतीव,
व्याल, आकृतियाँ विविध सजीव;
रत्नगृह सुंदर ललित विशाल,
जले जिसमें मणि-दीपक जाल;
वास्तु का चमत्कार ऊपर,
कला का सौष्ठव-श्री भूपर;
विजय उपलक्ष सँवारा धाम,
देख कर अनुपम छबि अभिराम;
चढ़ाकर चरणों पर जलजात,
देखकर हँसता हुआ प्रभात;
वीर, मन में भर नव उल्लास,
लौट आया भूपति के पास;

३८

किया प्रवेश, महाराजा ने, पाकर विजय समर में,
प्राचीरों से सुदृढ़ सुरक्षित अनुपम राजनगर में;
वर उपवन में तरु वल्लरियाँ फूली नहीं समाईं,
हेम ध्वजाएँ सभी सौध से जनता ने फहराईं;
राजमार्ग वीथी चौहट से जहाँ जलूस निकलता,
सुमन वृष्टि कर स्वागत करती जनता दिखा चपलता;
तोरन वंदनवार ध्वजाओं से रमणीक सुपथ है,
शोभा में रति हैं ललनाएँ चन्द्र बना मनमथ है;
मृगमद कुमकुम, लाज भेंटकर बनितायें हैं गातीं,
महाराज का दर्शन करके अपने नैन जुड़ातीं;
शुभ स्वागत हो रहा चतुर्दिक जय जय है ध्वनि छाई,
विविध रंग में सजे हुए हैं बालक लोग लुगाई;
गजमणि चौके द्वार द्वार हैं घृत प्रदीप बाला है,
कदली खंभ आम्र पल्लव में लसी पुष्प माला है;

विविध वीथियाँ विशद राजपथ पर समकोण बनातीं,
शिला विनिर्मित, सिंची सुगंधों से, शुचिता दर्शातीं;
विविध तोरणों से होकर के राजकीय दल जाता,
रजत नारियल स्वर्ण कलश रमणी दल भेंट चढ़ाता;
वर्ण वर्ण के वर वस्त्रों से लगता नगर मनोरम,
ठौर ठौर पर गूंज रहा है सरस रागमय सरगम;
हैं विशाल प्रासाद सुशोभित पथ के दहिने बायें,
सुगढ़ अलिंदों पर बैठीं छबि देख रही ललनाएँ;
स्वागत गा पुष्पों की वर्षा लाज सहित महिलाएँ,
चन्द्रगुप्त के सज्जित रथ पर करती दाहिने बाएँ;
कनक रजत की अनुपम आभा, मणि के ज्योति-निकर-शर,
नहीं ठहरने देते दृग हैं, चकाचौंध उपजाकर;
मेघ वरण सुंदर हय, रथ के, चंचल विद्युत गामी,
साज बाज से बाँध, चपलता जिनकी रोकी थामी;
कड़ी रास में खिंचे हुए से, विवश लगाम चबाते,
आभूषण रुनझुन में टापों की टपटपी डुबाते,
तौल तौल पर पग रखते हैं गर्दन भरी हिलाते,
चतुर सारथी के कौशल पर लोग दंग रह जाते;
वर बाजों के ग्रीव कवच के छल्लों की झिलमिल से,
केसर[1] चमक रहा है सुंदर गर्दन पर हिल हिल के;
भल्ल लिये असि धनुष बाण से सज्जित सब सेना दल,
इक समुद्र सा उमड़ा आता हर्ष लहर में चंचल;
कितने मैदानों के योद्धा बिहँस नयन शर खाते,
पुष्प अक्षतों की वर्षा से छिपने को झुक जाते;
राजकीय रथ के ऊपर सम्राट चन्द्र सेनानी,
काय विशाल, बलिष्ट, गौर वर, टेकी, कुल अभिमानी,
अभिवादन के उत्तर देता, शीश झुका मुस्काकर,
दृष्टि विहँसती हुई डालता गर्दन भरी घुमाकर;

१–घोड़े के गर्दन के बाल, अयाल।

समर विजेता सुमन वृष्टि से, हार मान घबड़ाया,
प्रभा पूर्ण मुख मंडल उसका रक्तवर्ण हो आया,
जब सुंदरियों ने ऊपर से दृग के तीर चलाये,
लाज छोड़ निज हृदय कमल पुलकित हो भेंट चढ़ाये;
झुक से गये नयन विजयी के रुक रुक शीश नवाता,
कौतुक ही में दृग से उत्तर, देता बढ़ता जाता;
वायुवेग से उष्णीष[१] की कलँगी है फहराती,
अलक मेघमाला में कुंडल छबि चपला दर्शाती;
रत्न जटित असि, स्वर्णमूठ की, कटि से लटक रही है,
वामस्कंध वर्म[२] पर धनु प्रत्यंचा अटक रही है;
निरख रूप लावण्य गईं बिक सुकुमारियाँ विचारी,
संयम खो बैठीं क्षणभर को सतियाँ दृढ़-व्रतधारी;
रीझ रूप पर कुल बधुयें कुछ सोच लगीं सकुचाने,
देव दासियों के दृग लख नव देव लगे ललचाने;
अपनी लगन छिपा औरों की लड़ती देख निगाहें,
ईर्षा से जल, रसिक रमणियां, छिप भर लेती आहें;
वह कुमारियों का वर नायक कुल वधुओं का सपना,
जिसे हृदय से सब ललनायें समझ रही थीं अपना,
जय ध्वनि संग बढ़ा जाता है, स्यंदन पर मुस्काता,
द्रव्य लुटाता, निज दर्शन दे सबको सफल बनाता;
गजदल, हयदल, रथ पदाति, सेनायें बाँध कतारें,
अस्त्र-शस्त्र से सज्जित सहतीं पंच-वाण की मारें,
सधे चाल से पग रखती हैं, गर्वित, शंख बजातीं,
अभिनंदन पर मुग्ध बनी सी गरुड़ध्वजा फहरातीं;
पीछे रथ के चलता जाता, राजकर्मचारी दल,
रक्षा उचित प्रबंध कर रहा, आगे इधर उधर चल;
राजमहल के सिंहद्वार पर आई अतः सवारी,
जहाँ पहुँचते ही ललनाओं ने आरती उतारी;

२—मुकुट। ३—कवच, लोहे का वस्त्र।

अंतःपुर आलिंद के ऊपर चमक गई चपला सी,
ध्रुवदेवी नव पुष्प हार ले उदित हुई कमला सी;
दृग उठ गये चन्द्र के बरबस हुई चार फिर आखें,
लगा मनाने दे देता विधि, हमको भी दो पाखें;
चन्द्रगुप्त ने संभल लाज से आँखें करलीं नीची,
देख आँख भर छककर युवती ने भी आँखें मीची;
अपने में आ, बचा निगाहें, फिर अवलोक सँभल के,
लाज सहित वह पुष्प लगी बरसाने हलके हलके;
रथ से उतर महल के भीतर पहुँचा राजदुलारा,
जहाँ राजउत्सव हित अद्भुत मंडप रहा सँवारा;
स्वर्णाम्बर के तने चँदोवे सहस झाड़ से जगमग,
चामीकर चर्चित सोपानों पर सतर्क रखता पग,
आसन पर बैठा, सम्पादित हुई सभा कुल रीतें,
गाने लगीं सुमुखि बनितायें, नाच, सुमंगल गीतें।

३१

वीरसेन—पीत पराग विविध पुष्पों का, चुपके उड़ा प्रभंजन,
कंजों-से अरुणिम अधरों को, करता रहता रंजन;
पुष्पभार से धरा चूमती है प्रियङ्गु[१] की अवली,
मलयानिल पेगों से दोलित लोध[२] सहित हैं लवली[३];
'नगण[४]' वृक्ष को खगण रंगीले, रागमयी कर देते,
शुभ्र शिंशुपा[५] हरित दलों में, ताम्र रंग भर लेते;
सिंदुवार[६]—केतक[७]—अशोक[८]—अतिमुक्त—पुष्प—शर ताने,
मदन, रसाल[९]-मंजरी में छिप लगा सुमन बरसाने;
चलदल[१०], दे दे ताल थिरक कर पवन संग नचता है,
भू के कुसुमित वदन चूमने को कदम्ब[११] लचता है;
स्वर्ण बैजंती आभा भरती, कलिका-घूँघट खोले,
'फुलसुंघी' पुष्पासव लेती उड़ती है पर तोले;

१—११ वृक्ष विशेष।

तिनके जोड़ जोड़ के खगकुल नवल नीड़ है रचता,
उर्म्मिरास पर मंजुल वंजुल[1] अंगहार कर नचता;
वकुल[2], कदम्ब[3], शिरीष[4], श्रेयसी[5], लकुच[6], पनस[7] आमलकी[8],
झूम रहे हैं मलय संग में पी कुछ हलकी हलकी;
उपवन में किलोल करते हैं विपुल केकियों के दल,
कूज कूज उठते चकोर हैं राका से हो चंचल;
ऐसी ही वसंत शोभा रहती षटऋतु में वगरी,
बनी राजधानी है सुंदर पूत 'अयोध्या' नगरी;
है विस्तार विशाल नगर का योजन बीस चतुर्दिक,
कोट बने चारो सीमा पर जिनमें रहते सैनिक;
अवधपुरी के चरण परसती सरयू बही उदीची,
मुख्य नगर है बसा नदी के प्राची और प्रतीची;
वीर विक्रमादित्य भागवत जाति देश उद्धारक,
चंद्रगुप्त सम्राट यहाँ के हैं शकारि भट्टारक;
पूरब, पश्चिम, दक्षिण, सागर जिसका विरुद सुनाता,
'गौरीशंकर' ध्वजा दंड हो गरुड़-केतु फहराता;
यवन नारियाँ पति विछोह में आँसू नदी बहातीं,
बाह्लीक क्षेत्रों को ऊसर, दृग से सींच बनातीं;
जय उपलक्ष, किया सरयूतट अश्वमेध मख भारी,
यूपकटक[9], कुम्बा[10], चत्वर[11], वेदिका अरणि[12] नव झारीं,
एकत्रित हैं, सामग्री सँग, घृत का बहता सोता,
ऋषिमंडली मंत्र पढ़ती है यज्ञ हवन है होता;
हविष-सुगंध निकल त्रेता[13] से उठी मेघ माला सी,
शमन[14] उपाकृत[15] हुआ, है स्वाहाध्वनि, प्रणीत[16] ज्वाला भी;

१—८ वृक्ष विशेष। ९—यूप-यज्ञ में वह खंभा जिसमें बलि-पशु बांधा जाता है—कटक—खंभे के ऊपर का कंकणाकार काष्ट।

१०—यज्ञ में परदे की टट्टी। ११—यज्ञ का चबूतरा। १२—अरणि-लकड़ी जिसको मथ के अग्नि निकालते हैं।

१३-यज्ञाग्नियां। १४-यज्ञ पशु का मारा जाना। १५-यज्ञ पशु। १६-संस्कारित अग्नि।

वास्तु कला की पराकाष्टा नागरिकों के वर घर हैं,
पग पग पर मंदिर देवालय गगन-विचुम्बि शिखर हैं;
अंतर, गृह गृह में देने को, वीथिमाल पहिराई,
चतुष्पथों पर जलयंत्रों युत है वाटिका लगाई;
राजमार्ग है कूर्म-पृष्ट सा ढालू इधर उधर से,
बनी छोर पर हैं प्रणालियां जल लेतीं घर घर से;
पद्मराग मरकत मणियों के लता पुष्प कोरे हैं,
रंगमहल में रंग बरसता रस में सब बोरे हैं;
कनक विनिर्मित राजसदन मंडप की छबि है न्यारी,
अंत:पुर प्रमोद वन में रति काम हुये वपुधारी;
शासन केन्द्र 'अयोध्या', उज्जयिनी उपनगर बनाकर,
हो निश्चित महाराजा रहते पूजा में तत्पर;
कभी कीर्तन मंदिर में करते होकर के तन्मय,
शंखध्वनि संग होती रहती सियाराम की जय जय;
विपुल दान दे, ग्राम ग्राम में देवालय बनवाये,
खुदवाये सर कूप बावड़ी सदाव्रत चलवाये;
धन्वन्[1] किया उर्वरा, लेजा, कुल्या[2] द्वारा पानी,
नहीं देश में कहीं चोर डाकू की नाम निशानी;
प्राण दंड की प्रथा नहीं है अर्थ दंड है केवल,
सब स्वधर्म पालन करते हैं संमार्गों ही पर चल;
पुनरुद्धार जीर्ण का करके, नये मार्ग खुलवाये,
प्रत्यंतो से ग्राम नगर को मार्ग खोल मिलवाये;
घण्टा-पथ[3]—पद्धति[4]—दुकूल पर तरु—राजी छबि पाती,
चिकित्सालयों, में नि:शुल्क ओषधि हैं बाटी जाती;
हर 'गव्यूति[5]', पांथशाला रच, भोजन की सुविधा की,
पोतों से सागर मथ लाये टोली सिंधु-सुता की;
प्रजा सदाचारी विदुषी है सब सम्पन्न सुखी हैं,
धन कुबेर व्यापारी बाले दीपक चतुष्मुखी हैं;

१—मरु, ऊसर। २—नहर। ३—सड़क। ४—पथ।
५—दो कोश का अंतर।

हुई वाङ्मय संस्कृत सारे राष्ट्रमात्र की भाषा,
उड़ा दिया आदित्य उदय ने सब अज्ञान कुहासा;
नवरत्नों का हार देशने राजकंठ में डाला,
तरल महामणि 'कालिदास' से है हृदेश उजाला;
सैनिक सब वेतन पाते हैं घर घर बरसा सोना,
कौड़ी मोल खाद्य मिलती है नहीं पेट का रोना;
ज्योतिष, आयुर्वेद, विशारद, वैज्ञानिक पंडित गण,
साहितज्ञ, कवि, कलाकार, ऋषि, श्रमण, वीर सैनिक जन,
अलंकार हैं चन्द्र सभा के, नक्षत्रों की माला,
विश्व व्योम में अमर ज्योति से उग कर रही उजाला;
विकट तपस्वी निकट निकट अटवी में निज आश्रम कर,
याग, योग, श्रुति पाठ, ध्यान में रहते मग्न निरंतर;
बन आश्रम हैं मूल सरोवर, विद्याओं के उद्गगम,
जिनसे अगणित श्रोत निकल कर बहते रहते निर्मम;
क्षात्रों के क्षेत्रों को ये धाराएँ जल हैं देतीं,
गई लहलहा देश देश में ज्ञान धर्म की खेती;
हो उत्तीर्ण द्वारपालक की प्रथम प्रवेश परीक्षा,
उपनयन उपरांत क्षात्र, आचार्यों से ले दीक्षा;
बटु दल अन्तेवासिन बनकर गुरु गेह में रहकर,
विद्याध्ययन किया करते हैं कष्ट अनेकों सहकर;
भूमशयन, पदत्राण रहित भिक्षान्न ग्रहण करते हैं,
संध्योपासन, अग्निहोत्रकर पाठ मनन करते हैं;
वेद, व्याकरण, छंद, कल्प, शिक्षा निरुक्त, ज्योतिष, निधि,
दर्शन, आयुर्वेद, कलाएँ पढ़ औ सीख भली विधि;
आशीर्वाद, समावर्तन, उपरांत दक्षिणा देकर,
राजकुमार, दीनजन, पंडित बन, जाते अपने घर;
उन्हीं आश्रमों ने वसुधा में विद्या ज्योति जगाई,
ज्ञान धर्म की धारा इन ऋषियों ने यहां बहाई;
नय–पय कला सलिल में आकर मिली सरस्वति धारा,
वाणी ने वीणा निज छेड़ी पाकर 'चन्द्र' सहारा;

इस संगम में देश देश के यात्री पहुँच नहाये,
चरणोदक पी इसी देश का और सभ्य कहलाये;

४०

विशद प्रशस्त सभा मंदिर है जिसमें निज निपुणाई,
विशेषज्ञ औ कला विशारद जन ने है दिखलाई;
चित्रों से अंकित दीवारें, मणियों की गच ढाली,
रजत खंभ पर स्वर्ण लताओं की है छटा निराली;
विकसित अधोमुखी, कमलों के हैं 'गलकुम्भ'[1] मनोहर,
हैं उत्कीर्ण फलक[2] फलका[3] पर हंस चार तोले पर;
अर्धासन में पीठ मिलाये चतुर्सिंह के ऊपर,
गरुड़ मूर्ति 'बोधिक[4]' शोभित है तक्षित परम मनोहर;

१–स्तंभ के सिरे पर (Capital) का निचला भाग जो प्रायः अधोमुखी कमल के आकार का होता है।

२–चित्र का पटल या पट्टी।

३–स्तंभ के सिरे का मध्यम भाग (Abacus)।

४–स्तंभ के सिरे का सबसे अंतिम भाग (Crown) जिस पर किसी प्रकार की मूर्ति रक्खी जाती है।

अधो भाग है अष्ट पहल का पाद पीठि चौकोरी,
कमल कली चारों कोनों पर उभर रही हैं कोरी;
स्तम्भों के ऊपर नीचे कोरों पर हैं गहरी—
रत्नों के पच्चीकारी की पान फूल की लहरी;
जीवित सी प्रतीत होती हैं मणि निरमित प्रतिमायें,
जो प्रदीप ले खड़ी हुई हैं मग के दहिने बायें;
वस्त्र पारदर्शक शरीर के अंग अंग झलकाते,
व्यावर्त्तन[1] चढ़ते पानी में हलकोरे उपजाते;
भाव व्यंजना भव्यभूर्ति की है मुद्रा में छापी;
अंगों की अनुपात क्रिया है तालमान[2] में मापी;
चारो ओर प्रकोष्ट अलिंदों पर गवाक्ष की जाली,
कीर्तिमुखी टोडों के ऊपर देती छटा निराली;
वेदिकाओं की पटरी पर अंकित सुन्दर आकृतियाँ,
दीवारों पर भिन्न भिन्न आकारों की ज्यामितियाँ;
कहीं कुमारी के 'दोहद[3]' से है अशोक वन फूला,
यक्ष एक प्रेयसि को अपने झुला रहा है झूला;
कूर्म वाहिनी यमुना हैं तो मकर वाहिनी गंगा,
अलंकरण प्रकार में वरण भरा है रङ्गबिरंगा;
रजत कनक का वस्तु वस्तु पर गहरा पानी फेरा,
चित्र हो गया स्वयं विविध रंगों में डूब चितेरा;
श्याम स्वेत प्रस्तर की चौसर बिछी हुई है भू पर,
रंग विरंगा कनक विनिर्मित झाड़ टँगा है ऊपर;

१—(Folds in drapery) सिकुड़न ।

२—ताल—मूर्ति निर्माण का एक माप जो हथेली के एक सिरे से दूसरे तक की सूचक है और जो बारह अंगुल का माना जाता है । मान=माप अतः तालमान मूर्ति निर्माण का एक विशिष्ट माप जिसके अनुसार मूर्तिकार मूर्ति के विविध अङ्गों को प्रमाणित अनुपात बनाता है विशेषकर वराह-मिहिर की वृहत्संहिता में उल्लिखित तालमान का प्रचार है ।

३—दोहद—एक प्राचीन विश्वास, जिस के अनुसार सुंदर स्त्री के चरणाघात से अशोक फूल उठता है ।

बत्तिस पुत्तुलिकायें सुन्दर यन्त्र तंत्र से बाँधी,
जो है अंगों के छूते ही स्वर करने पर साधी,
लिये खड़ी हैं अपने कर पर शीश झुकाये सादर,
विश्व विदित अति दिव्य अलौकिक मणि भूषित आसन वर;
सिंहासन वह, तेज प्रभा से जिसके रवि झुक जाता,
सप्त द्वीप, निधि अपनी ला ला, जिस को भेंट चढ़ाता;
पंचविंश बैतालिक जिसका सुयश निरंतर गाता;
उस पर शोभित हैं किरीट युत परम भागवत दानी,
वीर विक्रमादित्य महाराजा, उनकी पटरानी;
प्रतिनर्तक[1] ने विरद सुनाया वैतालिक ने गाया,
पंडित जन ने स्वस्तिवाच कर पुष्प लाज बर्षाया;

१—गुण गान करने वाला चारण (भाट)।

४१

वीरसेन—तुम कौन ! किसी मद भरी आँख सी ठिठक ठिठक हो रही ताक ?
तुम कौन ! सेंध पर धरे चोर सी मुझको देख हुई आवाक ?
तुम कौन ! हृदय की धड़कन सी यों फूँक फूँक पग धरती हो ?
अंत:पुर के प्रमोद-वन में शकवाले ! कहाँ विचरती हो ?

वीणा—विश्वासघात है किया उसी का न्याय कराने हूँ आयी,
सम्राट 'चन्द्र' को ढूँढ़ रही हूँ जो है विश्व-विदित न्यायी,

वीरसेन—यों राजमहल की सीमा में यों किसी विदेशी का विचरण,
चोरों सा ऐसे घुस आना, बे आज्ञा, बिना दिये विवरण;
अभियोग बड़ा ही भारी है, है राजदंड इसका कठोर,
बस आगे पैर नहीं रखना वंदिनी हुई तुम ढीठ चोर;

वीणा—कविजी तुम मुझसे परिचित हो फिर यह कैसा व्यवहार व्यर्थ,
दो महाराज से मिला मुझे, मत रोक मुझे करना अनर्थ;

वीरसेन—हाँ ठीक कहा, तुमने भी मुझको प्राणदंड दे, छोड़ा था,
मैं भी हूँ तुम्हें मुक्त करता उपकार नहीं वह थोड़ा था;

जब से तुमको था देख लिया आँखें व्याकुल थीं दर्शन को,
रह रह कर ध्यान मुझे आता मिलने की इच्छा थी मन को;
सौभाग्य बड़ा ही था मेरा तुम स्वयं आ मिली उपवन में,
कुछ देर चलो मन बहला लें तब पड़ो न्याय के उलझन में;
यह उदासीनता रख जग से कबतक विराग ले बिचरोगी,
तुम अपने एक पुजारी को क्या नहीं विहँस अपना लोगी;
यदि हाँ है तो मत लज्जा को रोड़े पथ में अटकाने दो,
हो किया हृदय में घर तेरे तो मुझको भी अपनाने दो;
हूँ संधि और विग्रह मंत्री विग्रह कर तुम पछताओगी,
तुम करके संधि सुखी होगी निज जीवन सफल बनाओगी;
तुम नहीं चाँद को पकड़ो अब तुम कभी न उसको पाओगी,
कुछ नहीं तुम्हें दुर्लभ होगा यदि मुझको तुम अपनाओगी;

वीणा—हाँ तुमसे बहुत प्रभावित हूँ, हो हँसमुख, मस्त, रसिक पंडित,
उस कठिन समय के बक्रचाल ने मेरा स्वप्न किया खंडित;
अब इसी देश में रहने की मैंने तो मन में है ठानी,
फिर संग तुम्हारे रहने में होगी मेरी सब मनमानी;

चन्द्र—यह कौन विदेशी ललना सँग उपवन में कर हो बात रहे,
आश्चर्य मुझे है राज नियम तुमको भी यों अज्ञात रहे;

वीरसेन—मैं क्षमा चाहता हूँ भगवन ! यह शकबाला उपवन में आ,
बे रोक टोक थी घूम रही पड़ गया इधर उलझन में, आ;
था बंदी कभी बना इसका, कर इसे बंदिनी लाता था,
था इसने जो उपकार किया उससे थोड़ा घबड़ाता था;
यह न्याय कराने आई थी है न्याय-मूर्ति की मची धूम,
इसका अब कोई रहा नहीं, अब हो अनाथ है रही घूम;
था श्रीमन् ने यह बचन दिया, मिलना जब अवसर आयेगा,
जब भाग्यचक्र इस सैनिक को भारत सम्राट बनायेगा;
वह समय आज शुभ आया है यह चली बधाई थी देने,
दे भेंट एकाकी जीवन का उपहार चली थी यह लेने;
है किया उलंघन राज्य नियम चोरों सा घुस अंतःपुर में,
बस इसी नगर में बसने की है लिये वासना यह उर में;

यदि आज्ञा हो तो बंदी कर आजन्म इसे दे दूँ कारा,
यदि रुचि हो इसे मुक्त कर दूँ यह जाय बजावे एकतारा;
दासी यदि इसे बनाना हो तो राजमहल में प्रेषित कर,
महलों में रख सम्राज्ञी के सेवा करने का दूँ अवसर;
चन्द्र—इस प्यारी राजकुमारी ने मेरे हित सब कुछ त्याग किया,
अपना सब खेल बिगाड़ कार्य में मेरे पूरा भाग लिया;
उपकारों से हूँ दबा हुआ मैं प्रति उपकार न कर पाया,
इसका ऋण मेरे ऊपर है मैं उसे न अबतक भर पाया;
यह अतिथि हमारी हुई आज, आई तो क्या, घर इसका है,
दो योग हमारे उत्सव में हे देवी अब डर किसका है;
तुम भूल कभी भी मंत्री जी मत कुछ अनुचित व्यवहार करो,
वीणा तो राज्य पाहुनी है इसका आदर सत्कार करो;
उपहार मिलेगा मुँह माँगा इसका मैं हूँ अति आभारी,
इतना दो डुबा इसे रस में यह भूल जाय चिंता सारी;
वीरसेन—रख दिया दाँव पर था सब कुछ मैं साथी एक जुआरी हूँ,
कुछ उपहारों के पाने का राजन मैं भी अधिकारी हूँ;
इस वर्षा में मैं ही सूखा रह जाऊँ बड़ा अभागा हूँ,
जब चली जा रही है सपने की सम्पति भी तब जागा हूँ;
चन्द्र—क्यों मांग नहीं तुम भी लेते कब देने से इनकार किया,
मैं बचन तुम्हें फिर देता हूं जो मांगो, सब लो, अभी दिया;
वीणा—उपहार कुछ न चाहिये मुझे मैं तो दर्शन की प्यासी थी,
जी बहलाने को निकल पड़ी जीवन में बड़ी उदासी थी;
मैं नहीं धर्म संकट में बरबस महाराज को डालूँगी,
कीजिये धर्मपालन अपना मैं अपना धर्म निभा लूँगी;
बस चन्द्र मुझे पथ दिखलावे, दे विमल ज्योति जीवन मग में,
संसार स्वार्थ का है केवल है कौन हुआ किसका जग में;
क्यों छाया के पीछे दौड़ूँ वह नहीं पकड़ में आने की,
उद्योग व्यर्थ है, जाने पर प्रिय के पद-चिन्ह उठाने की;
जब आप न मेरे हो पाये जब साथ आप का गया छूट,
जब एक सुंदरी ने आकर मेरी पूँजी को लिया लूट;

तब क्या अधिकार मुझे राजन तुमको अपना कह सकने का,
मन के बहकावे में पड़कर यों पथ से मुझे बहकने का;
जिसका कर तुमने पकड़ा है उसके सँग पूर्ण बिहार करो,
रोगी को भगवत पर छोड़ो उसका मत अब उपचार करो;
बस फिरने दो मुझको स्वतंत्र मुझको मत चक्कर में डालो,
जो उपहारों हित मरते हैं उनको मुँह माँगा दे डालो;

वीरसेन—यह देवी है जग से विरक्त है नहीं राज कामना इसे,
करना पड़ गया विरागी मेरे ऐसे का, सामना इसे;
है इच्छा हम दोनों मिलकर अब धूनी कहीं जमा लेते,
इसकी स्वीकृति तो चुप्पी है राजन की अनुमति पा लेते;
'वीणा' मुझको उपहार मिले बस है मेरी यह तुच्छ मांग,
मै तो भारी संतोषी हूं, फैलावे लम्बी कौन टांग;
मेरी भी सब से प्यारी निधि घरणी 'चपला' है तुच्छ भेंट,
अपनी भाभी को अपना कर दीजिये हमारा कष्ट मेंट;
कींजिय भेंट स्वीकार, मुझे, उपहार दीजिये मन चाहा,
है बचन दे दिया पहिले ही करना मत आशाएँ स्वाहा;
प्यारी वीणा मिल जाय मुझे इससे सुर मिला हमारा है,
हम इसको, तुम उसको, ले ले कैसा अच्छा बँटवारा है;

चन्द्र—मुझको आपत्ति नहीं कोई वीणा की स्वीकृति पाता हूँ,
मैं बड़े हर्ष से दोनों का परिणाय में हाथ मिलाता हूं;
देता हूं 'शौरसैन' तुमको शासक बन वहां बिहार करो,
'वीणा' तो अतिथि हमारी है इसका आदर सत्कार करो;
भाभी से जाकर इस लीला का सब रहस्य बतलाता हूँ,
वीणा से सुर जो मिला रहे हो गत पूरी बनवाता हूँ;
हैं उतरे तार, ऐंठ खूँटी, तारों को छेड़ मिलायेगी,
वह ठोंक ठोंक कसकर तबला तुम पर ही ताल बजायेगी;

ज्यों सीपीं के सुखद अंक में सोती मोती-छटा अशेष,
पर्वत श्रेणी के अंचल में विलसित एक मनोरम देश;

खेल रहा है लिपट लिपट कर बन की घन हरियाली से,
मलय समीरण रस लेता है कुसुमित डाली डाली से;
विटपों कीं शाखाएँ झुक कर आमंत्रण का इंगित कर,
चकित अचंभित परदेसी का हर लेतीं मन मोहित कर;
रजकण उठ उठ आदर करता पाँव पकड़ लेती है धूल,
हरीघास भी बिछा पाँवड़े मग में बरसा देती फूल;
ज्यों दुकूल के शासन के प्रतिकूल उठा कर अपना सर,
अल्हड़ यौवन, बना निरंकुश उधर झाँक लेता क्षण भर;
वैसे ही तरंगनी चंचल तरुओं के घूँघट से झाँक,
कुछ लख कर विमुग्धता अपनी, पद्मों के पत्रों से ढाँक,
चाहा तट का बाँध पार कर पथिक पंथ में बिछ जाना,
बुदबुदमय तरंगमाला को उसके उर में पहिनाना;
हुए चार दृग दबक रह गया लाज ओट में मन का चोर,
केवल तट ही से टकरा कर पीछे लौटी हर्ष-हिलोर;
रुक सी गयी थाम हिय अपना, व्याकुलता जीवन में भर,
प्रिय दर्शन की अकथ कहानी अंकित करती लहर लहर;
प्रकृति लखा करती है अब भी उसका तट से टकराना,
किसी स्वप्न के सुखद भाव भँवरों में पड़ कर चकराना;
कभी लहरियों सा उठ उठ कर पक्षी-पंथी लख लेना,
कलिका-ग्रंथि नहीं खुलने पर हाथ हृदय पर रख लेना;

४२

तरु की कोरी रेखाओं में, माधव ने अपना रंग भरा,
साधों की दुनियाँ लिये हुये यौवन में नई उमंग भरा;
जो थे रसाल वे बौराये, जब मुकुलों से मकरन्द झरा,
मंजरियों में अलि डूब गये, रस फूट चला, आनन्द भरा;
पी पी कर फूलों की मदिरा कोरे नव कुसुम कटोरों में,
अल्हड़पन दोनों पर झूला, जा छिपा नयन के कोरों में;
भोलापन ढूँढ रहा उसको मकरंद सुरभि के चोरों में,
बंदी कर नयनों ने रक्खा, पट बाँध आँख के डोरों में;
अंकुरित यौवना हुई मही, नव कुसुम खिले अलि मँड़राये,
मधुमास मदन अपनी अवनी सेनायें लेकर चढ़ आये;
सौन्दर्य सरोवर में विकसीं दो कलियाँ नव उन्माद भरी,
झोकों से प्रवल कामनाओं के डगमग होती तरुण तरीं,
तरु से लतिका है लिपट रही हैं चन्द्र प्रिये को अंक भरे;
कंधे पर शीश धरे रमणी भी, है निज पति का लंक धरे;

रतनारी मदमाती आँखों से, प्रिय को लख लख, देह तोड़,
एक गुप्त पीर से व्याकुल हो झुक गई अंक में देह तोड़;
नयनों में रूपसिंधु भर कर नव रसिक चन्द्र ने पुलकित हो,
रमणी के युगुल कपोलों पर दे डाले प्रेम अंक दो दो;
नव कुसुगों से मकरंद झरा साहस संयम का छूट चला,
मनमथ ने पंच बाण साधे, प्रतिबन्ध लाज का टूट चला;

कानों में शोभित है 'शिरीष'[1] उर 'कर्णिकार'[2] की सुमन माल,
गेंदुल मारे कचनागों के चूडा पर 'कुरवक'[3] कुसुम जाल;
उपवन की क्रीड़ा सरसी से इक नाल दण्डयुत तोड़ कमल,
अरविंद बदन पर मँड़राते अलि दल ललना करनी चंचल;
भय से नवजात मीन छिपते उस अधो वस्त्र की झालर में,
उपजा, फुहारयुत उर्मिजाल जब जल क्रीड़ा करती सर में;
केशरयुत पीत पराग पूर्ण अरविंदों से झूमर निकाल,
पहने सुंदर ये कर्णफूल, कुछ उलझे बालों को सँभाल;
मुक्ता से माथे को सँवार मल लाल होंठ पर 'लोध्र'[4] धूल,
रच दिये 'विशेषक'[5] के कपोल पर रंग रंग के पत्र फूल;
अनुपात पूर्ण अंगों का क्रम उमड़ा पानी लहरें लेता,
जाले सा झीना अंशुक[6] वर रस में डूबा झलका देता;
निशि की क्रीड़ा में रंग उड़े लिपटे दुकूल की हद उछाल,
रक्तांशुक[7] में चित्रित हंसों में भी देती है प्राण डाल;
अलियों से लजा-लजा कुछ-कुछ, सकुचाती मुकुलों पर अलि लख,
कहती रहस्य कीं बात नहीं, बहकाती करके नीचे चख;

१-४-पुष्प विशेष।
५-पत्रलेखा, स्त्रियों के श्रृङ्गार की एक प्रसाधन विधि जिसमें अगर गोरोचन कुंकुम आदि से कपोलों पर बिंदुओं द्वारा पत्र पुष्पादि के चित्र विविध रङ्गों में आलेखित किये जाते थे।
६-रेशमी ओढ़नी।
७-रक्त वर्ण साड़ी।

रानी ध्रुवदेवी है प्रमोद बन में सखियों सँग रही घूम,
मनसिज वाहन[1] को पढ़ा नाम प्रिय का लेती मुख चूम चूम;

१-तोता।

४३

नृत्य वाद्य उपरांत लगा संगीत सरस फिर होने,
अर्पण किये भेंट राजों ने, दूतों, सामंतों ने;
चिरपरिचित उस युगल मूर्ति के–'कालिदास' ने आकर,
चार पुस्तकें सरस काव्य की अर्पण कीं झुक सादर;
'ग्रंथों के' रूपक अपने पर घटता लख मुस्काये,
राजा रानी की आँखों ने गुप्त भाव दर्शाये;
प्रेम, वियोग, मिलन की गाथा दोनो ही की न्यारी,
व्याज रूप से अंकित लख वे हुये बहुत आभारी;
'शकुन्तला' पढ़ दोनो रस में डूब डूब उतराये,
वे अपनी अपनी भूलों पर हँस हँस कर पछताये;
'मेघदूत' में अंकित देखी अपनी वही कहानी,
यथा 'रामगिरि' से विरही ने वारिद को दी वाणी;
श्लेषरूप, दिग्विजय दृश्य, संग्राम, मिलन, वर शासन,
युग-प्रतिनिधि बन कवि ने कैसा किया यथार्थ प्रकाशन;

पढ़ 'रघुवंश' दृश्य आँखों के सम्मुख उनके छाया,
उषाकाल का स्वर्ण समय फिर उन्हें याद हो आया;
रसक्रीड़ा, श्रृंगार, प्रणय, निज जीवन झाँकी प्यारी,
चित्रों में 'कुमारसंभव' के देख सजीव उतारी,
पुलकित हो विशेष आसन दे कवि को कर सम्मानित,
कवि-कुल-चूड़ामणि उपाधि दे किया चन्द्र ने भूषित;
इतने ही में एक सुंदरी सकुचाती सी आई,
युगल मूर्तियाँ रही देखती कुछ क्षण तक घबड़ाई;
अभिवादन कर अनुशासन पा लगा शीश में रोली,
सुमन सहित इक चित्र भेंटकर महाराज से बोली;
परिचित एक अनाथा की यह पत्र पुष्प की डाली,
कर स्वीकार कृतार्थ कीजिये हे मेरे बनमाली;

४४

चन्द्र—बड़े आतुरता से लख चित्र सिहर सा उठा दृश्य कर याद,
भाव, आंतरिक विचारों का देख पट पर सच्चा अनुवाद;
यही कापालिक है वह दुष्ट भयंकर सा कृतांत अवतार,
रक्तमय दयाहीन कटु नयन कर रहे हैं बीभत्स विकार;
बाल में धूप छाँह खिचड़ी विकट झाड़ी सी दाढ़ी बढ़ी,
अधर पर झुकी मूंज सी मुच्छ, दशन पानी पर काई चढ़ी;
पीत होठों के विलग करार, गिरे दाँतों की विकट दरार,
दिखा देते रसना की गति-ऐंठता विषधर हो खा मार;
मुखाकृति गोल, न्यून माथा, उँगुलियाँ मोटी, पीले नख,
खिची सी भौंह, चढ़ी आँखें, भयानक जमे घूरते चख;
हैं व्यंजन करते मनोविकार अधम लक्षण ये आकृति के,
यथोचित भरे विविध हैं रंग अंग हैं भरे हुए गति से;

२१

बुझे रंगों[1] में निशि का दृश्य, दृश्यक्रम[2], क्रमशः तम में लीन,
अनल ने, कर-खप्पड़ में जग रूप रँग लिया तभी से छीन;
है आँखों में फिर जाता चित्र, है अंकन ऐसा हुआ सजीव,
है अनुपम वनदेवी की मूर्ति खड़ी भयभीत झुकाये ग्रीव;
अचंभित लज्जा में सिकुड़ी भूल सी गई वस्त्र सम्भार,
लटकता हुआ उत्तरीय छोर सरक कर करता भूमि विहार;
सहारा तरु का लिये सुबेलि खुरचती नख से दुर्वा मूल,
सोच में डूबीं नत आँखें, विकल चिंतित सकुचित दृग फूल;
खींचकर रेखा की डोरी, दिखाया दृश्य, उठा दृग पट,
ठवन, चितवन, मुद्रा अँगक्षेप, बोल करते हैं भाव प्रकट;
सप्तगुन[3] आनन से है मधुर प्रफुल्लित भरा अंगना अंग,
तोल में भरी सुंदरी गति प्रमाणित नियमित वर्णका भंग[4];
दिखाया है मुझको भयभीत यही अनुचित है तुमने किया,
टपकता नहीं नेत्र से रोष, है मुख का उड़ता रँग क्यों दिया ?
है प्रेक्षित दृग से भय का भाव, दोष अभिव्यक्ति न हो पाया[5],
और खिल उठते अवयव गठन कहीं होती हलकी छाया;
चित्र है श्रेष्ठ, कला रस पूर्ण चेतना की बहती सुस्फूर्ति,
तूलिका की यह अनुपम सृष्टि चमत्कारिक सजीव यह मूर्ति;
बधाई ! चूम अंगुलियाँ लूँ, यवनिका उठा दिखा अभिनय,
मेरे जीवन का कोरा अंग रंग भर बना दिया रस मय;
उऋण जीवन भर नहिं हो सकूँ न भर पाऊँ तेरा उपकार,
तुझे क्या पुरस्कार दे सकूँ सकल साम्राज्य तुच्छ उपहार;
वनदेवी—देव का पा करके आशीष समीक्षा पूर्ण प्रशंसक बाच,
सफल श्रम हुई गर्व है मुझे हर्ष से हृदय उठा है नाच;

१—Dull Colour चुहचुहाते हुए नहीं। २—चित्रों में सम्बन्धित दूरी तथा आकार। ३—माधुर्य में अंगना अंग आनन से सात गुना मधुर है अथवा वात्स्यायन के कामसूत्र में उल्लिखित चित्रकला के सिद्धान्त के अनुसार स्त्री का सारा शरीर उसकी चेहरे की नाप से सतगुना होना चाहिये अधिक नहीं। ४—रंगों का हिसाब। ५—Light Shade.

आपकी हूँ मैं बड़ी कृतज्ञ चाहिए मुझे नहीं संसार,
वार दूँ माया लोक प्रलोक देव का पाकर अनुपम प्यार;
सदा जोड़ी यह फूले फले, रहे लाली, उन्नत हो भाल,
बहन ध्रुवदेवी ! तुमको भेंट यही कटिबंध सहित करवाल;
यही थी एकमात्र बस चिन्ह किसी कल्पित सुहाग की आह,
स्वप्न में इस प्रतीक के संग कभी था हुआ हमारा ब्याह;
भेंट वह तुमको ही देकर, क्षीण आशा का धागा तोड़,
मुक्त इस बंधन से होकर रही हूं सबका नाता छोड़;
ध्रुवदेवी—बहुत ही धन्यवाद है देवि, भेंट यह करती हूँ स्वीकार,
खोज कर तेरा खोया पति तुझे मैं देती हूँ उपहार;
विलोको नहीं चकित होकर, गई इसका रहस्य सब जान,
शाप वश 'शकुंतला' को नहीं सका 'दुष्यंत' आज पहचान;
उठो प्रिय देव ! न हिचको अब, स्वपत्नी को, आ अपना लो,
न सकुचो तुम 'कुबेरनागा' तुरत तुम जयमाला डालो;
दूर कर देती हूं संदेह, खड्ग पहिचानो भली प्रकार,
तुम्हारी ही है यह करवाल है अंकित इसमें 'चंद्रकुमार';
इसी के द्वारा हुआ विवाह, गई थी यह प्रतिनिधि बनकर,
नहीं जा सके किसी कारण, छिड़ा था दोनों ओर समर;
गुप्त रक्खा दोनों ने भेद, कोई कैसे रहस्य जाने,
नहीं जब देखी सूरत थी कभी तब कैसे पहिचाने;
उठ गया अंधकार का पट मिल गये दोनों बिछुड़े फिर,
भाग्य रवि उदय हो गया अब हटी जो घटा गई थी घिर;
देखकर बार बार करवाल खुदा था जिसमें उसका नाम,
'चन्द्र' को हुआ बड़ा परिताप ध्यान क्यों गया न अब तक राम!
याद कर तद्सम्बन्धी कथा यथा विधि हुआ व्याह संस्कार,
विगत घटनाओं का सब चक्र, बदलते अपने मनोविकार;
घोर अपना प्रमाद अज्ञान भुलाया जिसने पाणी-गृहीत,
वियोगिनि विरह व्यथा बिपदा, सोच कर हुआ बहुत भयभीत;
सोच में डूबी आँख उठा देख एक टक पत्नी की छबि,
कमल से दोनों ही खिल गये उदय हो गया पूर्व जब रवि;

खो गई पा निज खोई निधि 'कुबेरनागा मानें इक क्षण,
सुधा रस पीती आंखों से सहज ही टपक पड़े दो कण;
छेड़कर ध्रुवदेवी ने जब, दिया उसके कर में जयमाल,
वड़े संकोच सकुच के साथ दिया निज पति के उर में डाल;
गले से इसको लिया लगा चन्द्र ने भी तत्क्षण बढ़ कर,
कक्ष में अर्ध सिंहासन पर लिया उसको बैठा, कर धर;
पुष्प की वर्षा हुई अटूट नाटय के साथ छिड़ा संगीत,
हृदय में हुए बहुत संग्राम अंत में हुई प्रेम की जीत;

भावोदरेक से हो चंचल जब उखडे पैर हिमानी के,
जब सुप्तवासना, लगे जगाने, मिल मिल, सोते पानी के;
गल, विरह वेदना आतप से, लज्जा से हो पानी पानी,
अपना निजत्व खो, भक्ति बनी, प्रियतम से मिलने की ठानी;
प्रियतम में खोई हुयी चली, अनुरक्ति नदी बन, इठलाती,
मिलने की गहरी प्यास लिये, सुख स्वप्नों से चंचल छाती;
तल्लीन मिलन की आशा में, प्रिय दर्शन में लवलीन हुई,
होगयी साधना पूर्ण, प्रीतिसागर में समा विलीन हुई।

——०——

इति

❀ परिशिष्ट ❀

"काव्यकथा के पुरातात्विक आधार"

देश दशा, शासन प्रणाली, राज्य व्यवस्था, आर्थिक अवस्था, सामाजिक तथा भौतिक जीवन की रूप रेखाओं का अंकन और चित्रण जो इस काव्य में किया गया है उसके पुष्टीकरण के प्रमाण पर मथुरा का स्तंभ लेख, ई० सं० ३८०, उदयगिरि गुहा-लेख, साँची का लेख, मेहरौली का लोहस्तंभ-लेख, चंद्रगुप्त की राजकुमारी प्रभावती गुप्ता (वाकाटक) का दानपत्र लेख, दामोदर ताम्रपत्र, वैशाली की मुद्राएँ, घनैदह ताम्रपत्र, वैगराम ताम्रपत्र, बसाढ़ की मुहर, संजनप्लेट, भीटा की मुहर, गुप्त नरेशों की मुद्राएँ, फाहियान की यात्रा विवरण आदि पुरातत्व सामग्रियाँ, पूरा पूरा प्रकाश डालती हैं।

बारहवीं सदी का एक इतिहास ग्रंथ मुजमलुत्वारीख़ है जिसमें रामगुप्त (रब्वाल) और शकों की लड़ाई का तथा विक्रमादित्य (वरकमारास) और ध्रुवदेवी के संबंध का अपनी भाषा में इस प्रकार साहित्यकार ने वर्णन दिया है—

राजा रब्वाल तथा वरकमारीस दो भाई थे। रब्वाल के शासन काल में स्वयंवर में वरकमारीस को एक राजकुमारी मिली। राजकुमारी के साथ घर लौटने पर रब्वाल उस पर मोहित हो गया तथा राजकुमारी से स्वयं विवाह कर लिया। वरकमारीस तदनंतर विद्याभ्यास में लग गया और एक सुप्रसिद्ध विद्वान हुआ। रब्वाल के पिता के शत्रु ने उस पर आक्रमण किया। पराजित होने पर राजा अपने भ्राता तथा समस्त सरदारों को लेकर पर्वत की चोटी पर गया जहाँ एक दुर्ग था। उस स्थान पर रब्वाल ने संधि के लिये प्रार्थना की। संधि स्वरूप रब्वाल ने अपनी स्त्री तथा सरदारों की पुत्रियों को शत्रुओं को समर्पण करने का बचन

दिया। इस वृत्तांत को सुनकर वरकमारीस ने आज्ञा माँगी कि मुझे तथा समस्त सर्दार पुत्रों को कुमारियों का स्वाँग बनाकर तथा एक अस्त्र के साथ शत्रु राजा के पास भेजा जाय। ऐसा वेष बनाने पर राजा वरकमारीस को अपने पास रख लेगा तथा दूसरों को अपने सरदारों में बाँट देगा। उसने सोचा कि जब राजा मुझे एकांत में ले जायँगे तो मैं अस्त्र से शत्रु को मार डालूँगा। शत्रु की मृत्यु के साथ भेरी बजेगी और उसे सुनकर समस्त नवयुवक शत्रुओं पर टूट पड़ेंगे। वरकमारीस की आवाज को सुनते ही सैनिक शत्रु सेना पर धावा करेंगे जिसमें ख्वाल की विजय होगी।

इस युक्ति के सफल होने पर ख्वाल विजयी हुआ। इस उपाय करने पर भी वजीर ने वरकमारीस के प्रति ख्वाल के दिल में संदेह पैदा कर दिया। इस कारण वह पागल हो गया और शहर में उन्मत्त की तरह घूमने लगा। संयोगवश इसी वेष में वरकमारीस एक दिन राजा महल में प्रवेश कर गया। वहाँ कुछ साधारण कार्य के पश्चात उसने धोखे से राजा को मार डाला। वरकमारीस ने ख्वाल के मृत शरीर को सिंहासन से नीचे गिरा दिया। तदनंतर वह वजीर तथा जनता के सम्मुख राजसिंहासन पर बैठा और रानी से बिवाह कर लिया। वरकमारीस का प्रताप दूर तक फैला और समस्त भारत उसके अधिकार में हो गया।

उपरोक्त कथानक का मूल आधार 'देवीचंद्रगुप्त' नाटक ही समझा जाता है जो कि एक प्राचीन संस्कृत ग्रंथ है जिसमें रामगुप्त संबंधी जीवन घटनाओं का सबसे पहिले बर्णन आया है। इसके रचयिता छठी शताब्दी के विशाखदत्त माने जाते हैं। पूर्ण नाटक अप्राप्य है परंतु इसके निम्नलिखित उद्धरण रामचन्द्र तथा गणचंद्रकृतनाट्य दर्पण में मिलते हैं—

(१) यथा देवीचंद्रगुप्ते द्वितीयेऽङ्के प्रकृतीनामाश्वासनाय शकस्य ध्रुवदेवी-संप्रदाने अभ्युपगते राज्ञा रामगुप्ते नारिवधनार्थं यियासुः प्रतिपन्नध्रुवदेवीनेपथ्यः कुमारचंद्रगुप्तो विज्ञपयन्नुच्यते—एतत्स्त्री-वेषधारि चंद्रगुप्तबोधनार्थमभिहितमपि विशेषणसाम्येन ध्रुवदेव्या स्त्रीविषयं प्रतिपन्नम्, इति।

(२) आर्तिः खेदो व्यसनमिष्टाद्विरोधः यथा देवीचंद्रगुप्ते राजा चंद्रगुप्तमाह—अत्र स्त्रीवेषनिह्नुते चन्द्रगुप्ते प्रियवचनैः स्त्री-प्रत्ययाद्ध्रुवदेव्या गुरुमनुसंतापरूपस्य व्यसनस्य संप्राप्तिः ।

(३) इयमुन्मत्तस्य चंद्रगुप्तस्य मदनविकारगोपनपरस्य मनोज-शत्रुभीतस्य राजकुलगमनार्थं निष्क्रमसूचिकेति ।

(४) यथा देवीचंद्रगुप्ते चन्द्रगुप्तो ध्रुवदेवीं दृष्ट्वा स्वगतमाह—इयमपि सा देवी तिष्ठति । यैषा

रम्यां चारतिकारिणीं च करुणाशोकेन नीतां दशाम्
तत्कालोपगतेन राहुशिरसा गुप्तेव चान्द्रीकला ।
पत्युः क्लीबजनोचितेन चरितेनानेव पुंसः सतः
लज्जाकोपविषादभीत्यरतिभिः क्षेत्रीकृता ताम्यते ।
अत्र ध्रुवदेव्यभिप्रायस्य चंद्रगुप्तेन निश्चयः ।

सातवीं शताब्दी के बाणकृत 'हर्षचरित' में भी उस शक और रामगुप्त युद्ध की ओर संकेत किया है जो इस प्रकार है—

'अरिपुरे च परकलत्रं कामुकं कामिनीवेषगुप्तः चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत् ।'

इसकी निम्नलिखित व्याख्या इसकी नवीं शताब्दी के टीका-कार शंकराचार्य ने करके भाव और स्पष्ट कर दिया है

'शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन व्यापादितः ।'

ग्यारहवीं शताब्दी में धार के राजा भोज के शृङ्गारप्रकाश में भी उद्धृत वाक्य मिलते हैं—

'स्त्रीवेषनिह्नुतः चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमलिपुरं शकपति-वधायागमत् ।'

यथा देवीचन्द्रगुप्ते शकपतिना परं कृच्छ्रमापादितं रामगुप्तस्क-न्धावाराम् अनुजिघृक्षुरुपायान्तराऽगोचरे प्रतिकारे निशि वेताल-साधनम् । अध्यवस्यन् कुमार चन्द्रगुप्त आत्रेयेण विदूषकेन उक्तः ।

जिस पर्वत की चोटी पर शकराज और रामगुप्त में युद्ध होने का का उल्लेख मुजमलुत्तवारीख में आया है उस स्थान का स्पष्टीकरण काव्यमीमांसा में राजेश्वर ने यों किया है—

रामगुप्त—शक युद्ध-स्थान

दत्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवी ध्रुवस्वामिनीम् ।
यस्मात् खण्डितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः ।
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणत्क्वणत्किन्नरे ।
गीयंते तव कार्तिकेयनगर स्त्रीणां गणैः कार्तयः ॥

अतः यह कार्तिकेयनगर गोमतीनदी के घाटी के उत्तर में हिमालयपर्वत में स्थित अलमोड़ा जिले के बैजनाथ ग्राम के समीप था जहां एक राजा का यश स्त्रियां गीतों द्वारा वर्णन करती हैं अब यह स्थान कार्तिकेयपुर के नाम से विख्यात है ।

[दिग्विजयसूचक लौह स्तम्भलेख मेहरौली]

यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्
वङ्गेष्वाहववर्त्तिनोभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे ॥
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंधोर्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिः वीर्यानिलैर्दक्षिणः ॥ १ ॥
खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्म्म जितावनी गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ ॥
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्ना—
द्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोः यत्नस्य शेषः क्षितिम् ॥ २ ॥
प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाध्यराज्यं क्षितौ,
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता ॥
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णौ मतिम्
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः ॥ ३ ॥

दिल्ली के समीप मेहरौली स्थान स्थित चंद्रगुप्त के लौहस्तम्भ का उपर्युक्त लेख तथा चंद्र के मंत्री कवि वीरसेन का 'कृत्स्न पृथ्वी-ज्यार्थेन राज्ञैवेह सहागतः' उदयगिरि का गुहालेख चन्द्रगुप्त के बाह्लीक प्रांत तक जाकर दिग्विजय करने के अकाट्य प्रमाण हैं ।

[वीरसेन का परिचय सूचक उदयगिरि गुहालेख]

अन्वयप्राप्तसाचिव्यो व्यापृतसन्धिविग्रहः
कौत्सशाव इति ख्यातो वीरसेनः कुलाख्यया ॥
शब्दार्थन्यायलोकज्ञः कविः पाटलिपुत्रकः ।

तथा 'कृत्स्नपृथ्वीजयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः' दूसरा गुप्तलेख जिससे उसका चन्द्रगुप्त के साथ दिग्विजय यात्रा में साथ जाना सिद्ध होता है।

[अभ्रकार्दव] चन्द्रगुप्त का सेनापति था जिसने अनेक युद्धों में विजयी होकर यश प्राप्त किया था 'अनेक समरावाप्तविजययशस-पताकः'—गुप्तलेख नं० ५।

[शिखरस्वामी मंत्री] श्रीचन्द्रगुप्तस्य मंत्री कुमाराम्य शिखर-स्वाम्यभूतस्य पुत्रः पृथिवीषेणो महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तस्य मंत्री कुमारामत्यो—कर्मदण्डा की प्रशस्ति।

[चंद्रगुप्त के उत्कृष्ट तथा सफल शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालनेवाले कुछ गुप्तकालीन लेखों तथा चीनी फाहियान की यात्रा विवरण का मार्मिक सारांश]

प्रजा वैभव संपन्न तथा सुखी है, जनता आदर्श नागरिक तथा आतिथ्य सत्कार में अद्वितीय है; लोग सच्चे और ईमानदार हैं व्यवहार लेन देन आदि की लिखा पढ़ी नहीं होती, अपराध नहीं के बराबर है तथा प्राणदंड अथवा शारीरिकदंड नहीं दिया जाता; राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी हैं। देशमें अपार संपत्ति है तथा सर्वत्र पूर्ण शांति का राज्य है। शासन की उत्त-मता से चोर डाकुओं का नहीं नाम नहीं है। राजा का ध्यान प्रजा के हित तथा सार्वजनिक कार्य में पूर्णतः रहता है। निर्धनों के अन्न वस्त्र तथा रोगियों को औषधि निःशुल्क दी जाती है। अनाथों के लिए सदावर्त का प्रबंध है। शिक्षा का प्रबंध अनिवार्य है। विहार और मंदिर शिक्षा के केंद्र हैं जिनके विद्यापीठ और विश्वविद्यालयों में सहस्रों विद्यार्थी दूर दूर प्रांतों और प्रदेशों के शिक्षा पाते और विद्याध्ययन करते हैं जिनकी सहायता राजा

अग्रहार दान देकर तथा आर्थिक सहायता देकर करता है। विस्तृत सड़कें, देश के नगरों को नाथे हुए हैं जिनके दोनों ओर वृक्षों की अवली छा रही है स्थान स्थान पर पाठशालाएँ तथा कूप हैं। खेती की सिंचाई के लिए नहरें खुदवाई गई हैं व्यापार के लिए बड़े बड़े जहाजी बेड़े बनाए गए हैं जो पूरब में चीन तथा पच्छिम में अफ्रीका और योरोप तक भारतीय व्यापार की सामग्री ले जाते हैं और रोम आदि विदेशों से सोना भर भर लाते हैं।

पात्र-परिचय

नैपाल नरेश की कन्या राजकुमारी ध्रुवदेवी अद्वितीय सुंदरी थी। इसके स्वयंवर में देश देश के भूपति आये। इसके अपूर्व सौंदर्य की ख्याति सम्राट चंद्रगुप्त को भी स्वयंवर में खींच लाई महाराज उसका रूप लवराय देखकर उन्मत्त से हो गये। राज्य सेना के सर्दार बलाधिकृत चंद्रगुप्त भी अपने अग्रज के साथ गये। स्वयंवर का समय हुआ। राज-कुमारी सखियों सहित मंडप में पधारी। उसकी रूप माधुरी पर मोहित हो भूपसमुदाय जयमाल पाने के हेतु अपने अपने देवता पितृ मनाने लगा। राजकुमारी ने बड़े ध्यान से एक एक को देखा, उनका पूर्ण परिचय सुना, परंतु वे गर्दन झुकाए रह गए, माला किसी के गले में नहीं पड़ी। सम्राट लालायित हो आगे बढ़े राजकुमारी ने जयमाल उठाई परंतु मुस्कराती हुई सम्राट के गले में न डालकर उनके पार्श्व में बैठे उनके अनुज चंद्रगुप्त के गले में मधूक माला डाल दी। सखियोँ ने इनपर फूल बरसाये। मंगलगान किये। नृपमंडली का रंग फीका पड़ गया। सब रोष और निराशा से तिलमिला उठे। सम्राट का मोह भंग हो गया इस धृष्टता के आघात को वह सहन नहीं कर सके। उनके होते हुए एक अनुचर के गले में उनके एक सामंत की कन्या जयमाल डाल दे यह अपमान उनको असह्य हो गया। बहुत बिगड़े बने। अंत में अपना अधिकार प्रयोग कर महाराज ने बरबस राजकुमारी के पिता को अपनी कन्या सम्राट के साथ ही विवाह देने पर वाध्य किया। होनी होकर रही। विवश ध्रुवदेवी को रामगुप्त की पत्नी बनना पड़ा। नवयुवक चंद्र ने इस कांड को कोई महत्ता नहीं दी। वह इस नवीन पट परिवर्तन को उपेक्षा की द्रष्टि से देखते रहे। ध्रुवदेवी तो लुट गई। उसका स्वप्न भंग हो गया। उसका संसार उजड़ गया। परंतु करती क्या? हिंदू रमणी थी, मन मसोस कर रह गई, आँसू पी गई, विद्रोही मन को मनाने लगी,

ध्रुवदेवी

गुप्त वेदना को सुलाने लगी। रामगुप्त के इस बलात्कार से तथा चंद्रगुप्त की उदासीनता से वह बहुत खिन्न हो उठी। परंतु रोगी के लिए अब कोई उपचार नहीं रह गया था। उसे कलेजे पर पत्थर रख सम्राज्ञी बनना पड़ा, गाय को मानो बधिक के साथ जाना पड़ा। अपने को संभालकर ध्रुवदेवी पत्नीधर्म का पालन करती रही। परंतु उसके हृदय में दो समस्यायें उत्पात मचाये थीं। एक तो मन में बसे हुए आराध्यदेव की स्मृति जिसको वह बहुत चाहने पर भी भुला नहीं सकी, दूसरे सम्राज्ञी पद के उत्तरदायित्व का भार, अभाग्यवश उसको कायर, रोगी, सिद्धांत-रहित, अक्रिय पति मिला जिसने उसकी चिंताओं को और भी बढ़ा दिया। उधर प्रजा के हितों की रक्षा का ध्यान, इधर साम्राज्य की विकट परिस्थितियों का संसार, एक ओर अपनी तथा सम्राट की मर्यादा बचाने का संकल्प दूसरी ओर अरियों तथा विद्रोहियों के सर कुचलने की तत्परता। अतः इन्हीं झंझटों तथा राजनीति के उलझनों में वह अपने को भूल गई। रामगुप्त के शासन के अल्पकाल ही में बहुत से सामंत स्वतंत्र हो गए। वंग विद्रोही हो गया। दूर के प्रांत केंद्रीय शासन के सत्ता की अवहेलना करने लगे। राज्य-प्रबंध में शिथिलता आ गई। साम्राज्य में अशांति फैल गई। प्रजा पीड़ित और दुखी हो गई। घबड़ाकर महाराज ने महादेवी को शासन भार सौंप दिया। विवश हो, ध्रुवदेवी ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। सम्राट के हस्तक्षेप तथा उनकी निष्क्रियता ने, उसे आगे नहीं चलने दिया। चंद्रगुप्त में साहस, बल, योग्यता थी। उसे परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान था। अतः साम्रज्य के बचाने के लिए, बिगड़ी देश का दशा सुधारने के लिए, तथा अकेले न उठने वाले बोझ को सँभालने के लिए, महारानी ने चंद्रगुप्त से उसका सहयोग माँगा, राज्य नौका का कर्णधार बनाना चाहा। परंतु चंद्रगुप्त ने हामी नहीं भरी। वह उसके इस संकेत की गूढ़ता को न समझ सका। वह संदेह, भय, भ्रम, चक्कर में पड़कर अपना पथ निश्चित नहीं कर सका। अस्थिरता, द्विधा तथा मन की चंचलता उसके जीवन के सफलता की, बाधक बनी। समय निकल गया, वह सोचता ही रह गया।

अवसर चूक गया। जहाँ कोमलता का काम था, वहाँ कठोरता दिखाई। प्रेम की भेंट को निष्ठुरता से ठुकरा दिया। वही हुआ जो होना था। प्रतिक्रिया मानव हृदय के लिए स्वाभाविक है। विशेष कर अधिकार तथा पद होने पर। सीधे वह नहीं समझा। महारानी ने, बुरा मान, टेढ़ी अंगुली ही से घी निकालना चाहा। उसे रास्ते पर लाने का उद्योग किया। परंतु कबूतर जब एक बार जाल तोड़कर भाग निकला फिर कितना ही दाना पानी दिखाया गया पुनः वह छतरी पर नहीं बैठा। चंद्रगुप्त को देश छोड़ना पड़ा। अपनी इस भूल पर महारानी को पश्चाताप हुआ, उसने अपने निर्वासित प्रिय को बुलाने का भीष्म प्रयत्न किया किंतु विफल रही। वह अपने धुन की पक्की थी, लगन लगाये रही। धैर्य को नहीं छोड़ा। उसे आत्म सम्मान, प्राणों से भी अधिक प्रिय था। पतित रामगुप्त के कायरता दिखलाने पर भी, उसने उसकी मर्यादा पर आक्षेप का साहस करनेवाले, धर्म नष्ट करने का उद्योग करने वाले, नीच क्षत्रप को, युक्ति से मार कर ही छोड़ा। वह सच्ची प्रेम की पुजारिन थी, अपने निर्मोहित प्रेमी की उदासीनता भी उसे हताश न कर पाई, वह राज-पाठ छोड़ उसी के ध्यान में मग्न हो अपने आराध्य में तन्मय हो गई। उसकी जीवन कथा मीरा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। देश-प्रेम उसके नस-नस में भरा था। वह रामगुप्त की पत्नी बन, उसको, तथा साम्राज्य को संभाले रही। वह चंद्रगुप्त के पीछे पड़ उसका पथ प्रदर्शक बनी और अपना सहयोग दे उसे संसार का विख्यात विजेता बना, उसे एक महान साम्राज्य का संस्थापक बना दिया। वह साहसी वीरांगना थी। डर का नाम नहीं जानती थी। प्राण हथेली पर लिए फिरती थी। करवाल म्यान के बाहर ही रखती थी। अरिगण तथा विद्रोही उसके नाम से थर थर काँपते थे। वह नीति निपुणा थी। उसने भारत की छिन्न-भिन्न शक्तियों को एकत्रित कर विदेशियों को परास्त कराया। उसने पद-पद पर अपने त्याग का परिचय दिया। ऐसी त्याग मूर्ति राष्ट्रनिर्माता, भावुक, प्रेम-लवलीन, वीरांगना, आदर्श हिंदू नारी, तथा न्याय निपुण साम्राज्ञी का पटतर संसार में कहीं मिलना कठिन है।

कुमारगुप्त, गोविंदगुप्त तथा घटोत्कचगुप्त ये तीन पुत्र ध्रुवदेवी के, चंद्रगुप्त से हुए जिनमें कुमारगुप्त चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी बन ४१३-१४ सन ईसवी के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ।

कुबेरनागा

कुबेरनागा नागकुल उत्पन्न शौरसेन नरेश की कन्या थी। शकों के आक्रमण के कारण जिन्होंने इसके पिता को मारकर, राज्य अपने अधिकृत कर लिया था तथा वंगदेश में चंद्र को विद्रोह दबाने में व्यस्त हो जाने के कारण, पूर्ण ब्याह संस्कार यथा विधि चंद्रगुप्त के साथ नहीं हो सका था उस कठिन परिस्थिति में चंद्रगुप्त ने प्रतिनिधि स्वरूप खड्ग भेजकर इसके साथ ब्याह की रीति रस्म नाममात्र को संपादित तो कर दी परंतु उन्हें एक दूसरे को देखने की नौबत नहीं आई, इस समय कोई ऐसा अवसर ही न मिल पाया। हाँ नियति ने इन्हें, अपरिचित, निर्वासित, अनाथों के रूप में अकस्मात, नदी तट, बन में मिला दिया। दोनों ने अपना पूर्ण परिचय एक दूसरे को कभी नहीं दिया परंतु दो दुखियों की समान अवस्था ने एक दूसरे के प्रति सहानुभूति तथा स्नेह उत्पन्न कर दिया। बहुत समय तक दोनों प्रकृति के सौंदर्य में मुग्ध नैसर्गिक सुख लूटते हुए, आनंद से बन-बिहार करते रहे। सच्चरित्रता के अवतार, सद्भाव तथा स्नेह से ओत प्रोत हो दोनों पात्र नायक-नायिका बन बनोवास की अवधि तक अपनी लीला सफलता से करते रहे। अंत में रहस्य खुलने पर कल्पित पात्रों से वे दोनों अनाथ सचमुच के राजा रानी हो गए। चंद्र यदि तक्षण कला में निपुण था तो कुबेरनागा चित्र-कला, संगीत तथा अभिनय में परम प्रवीण थी। सरल स्वभाव रखते हुए भी वह बड़ी भावुक थी। आत्मगौरव, मान तथा कुल-मान उसको प्राणों से भी प्यारे थे। वह इनकी रक्षा के लिए नदी में कूद पड़ी। सैनिक भूधर, भय, प्रीति तथा लोभ दिखाकर उसे अपने ध्येय से डिगा न सका। वह दृढ़व्रत तथा संयमी थी। उसने अपने दुख की कहानी भी अपने प्रिय साथी से कभी न कही। अपना परिचय राजकुमारी होने तक का भी नहीं दिया। एक पुरुष के साथ रहते हुए भी अनेक प्रलोभनों के विचारों को दबाती रही तथा स्वाभाविक मानवी निर्बलताओं पर अपनी दृढ़ता

तथा निष्ठा से विजय पाती रही। साथी के बंधन में रहते हुए उसने मुक्ति का प्रस्ताव ठुकरा दिया। अपने साथी के सम्राट होने की सूचना पाकर भी वह मोह माया के जाल में नहीं फँसी। अपितु निर्लेप की भांति अपना मन बटोर कर भावी सम्राट चंद्रगुप्त को चकित छोड़, बनवासिनी बनना श्रेष्ठ समझा। विवाह सूत्र में बँधे हुए, दो हृदयों के स्वाभाविक आत्मिक आकर्षण ने अंत में दोनों प्रेमियों को मिला ही दिया। दोनों की साधना सफल हुई।

कुबेरनागा के केवल एक पुत्री थी जिसका नाम प्रभावतीगुप्ता था, जिसका विवाह दक्षिण भारत के विख्यात वाकाटक वंश के प्रतापी राजा प्रवरसेन के प्रपौत्र रुद्रसेन द्वितीय से हुआ था। चंद्र ने ४०० ई० के लगभग मालवा तथा सौराष्ट्र के शकों को जीतकर उनका राज्य गुप्त साम्राज्य में मिला लिया था। उसके रक्षार्थ इस बैबाहिक संबंध का बड़ा राजनैतिक महत्व था।

चन्द्रगुप्त

सहनशीलता का अवतार, गंभीरता का पुतला, मोह और प्रलोभनों की धारा में सुदृढ़ चट्टान सा अटल, चन्द्रगुप्त एक सफल सैनिक था जिसमें राजसी सभी गुण विद्यमान थे। सैनिक Discipline में उसका विश्वास था। प्रेम उसे कर्तव्य पथ से डिगा नहीं सका। किसी रमणी पर उसका धार्मिक अधिकार भी, अपने भाई और सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने पर, उसे उत्तेजित नहीं कर सका। निर्भीक होते हुए भी वह भाई के अन्यायपूर्ण अधिकार पर भी हस्तक्षेप करना अपने धर्म के विरुद्ध समझता रहा। साम्राज्य के कुशल की चिंता और ध्रुवदेवी की प्रेरणा इसके मन पर प्रभाव डालती थी परंतु वह मर्यादा के प्रतिकूल कोई कार्य करने को अपने को समझा नहीं सका। इसी नीति के कारण निर्वासित हुआ। बरसों परदेस में ठोकरें खाईं परंतु यही समय उसके जीवन का अमूल्यतम भाग था जिसने देश के सारे चित्रपट से और मानव जीवन के विषमताओं से उसे भिज्ञ करा दिया और यही विशाल अनुभव अंत में उसे विक्रमादित्य पद के उपयुक्त

बनाने में सहायक हुए, उसमें साहस और बल था राजलिप्सा और पदलोलुपता नहीं थी। स्वार्थ और महत्वाकांक्षा से विरक्तता ही उसके जीवन की एकमात्र त्रुटि और उसकी निर्बलता थी। इसी उदासीनता को हटाकर उसे कर्मपथ पर अग्रसर कर साम्राज्य निर्माण के मार्ग में लाने का श्रेय ध्रुवदेवी को है। उसी ने उसे आगे ढकेल जीवन संग्राम में डाल दिया। धनुष से छूटने की देर थी फिर तो वह तीर की भांति लक्ष पर पहुँचा। विजयश्री उसकी थी।

उसने सन ३८० से ४१२ ई० तक ३२ वर्ष एकच्छत्र राज्य किया। उसका राज्यकाल रामराज्य सा आदर्श और हिन्दुसंस्कृति और आर्यसभ्यता के चरम उन्नति का स्वर्ण युग था।

वीरसेन

हास्यरस जिसका प्राण था, विनोद जिसके नस नस में भरा था, कविता जिसकी घुट्टी में पड़ी थी, वह था कवि वीरसेन, सम्राट चन्द्रगुप्त का संधि-विग्राहिक मंत्री और सम्राज्ञी ध्रुवदेवी का एकमात्र विश्वासपात्र चर। वह प्रेम का पुजारी और सैांदर्य का उपासक था। आनंद सहित जीवन बिताना ही उसके जीवन का ध्येय था। वह गुलाब के कांटों से बहुत घबड़ाता था। उसके सुंदर भार्या का कटु स्वभाव उसके स्वतंत्र विचरण में बड़ा बाधक था। व्यवहार चातुरी और वाकपटुता से परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल कर कार्य संभालना उसकी विशेषता थी। वह चन्द्रगुप्त के दिग्विजय यात्रा में सम्राट के साथ था। यह उसके उदयगिरिगुहा-लेख से प्रमाणित होता है। महान् रसिक, अद्भुत कला प्रेमी वह सम्राट के रत्नों में से था।

रामगुप्त

यद्यपि गुप्त लेखों के अनुसार समुद्रगुप्त के बाद द्वितीय चन्द्र-गुप्त ही सिंहासनारूढ़ हुआ तथापि नवीन अन्वेषणों से यह पूर्ण रूपसे प्रमाणित हो चुका है कि समुद्रगुप्त के निधन के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त उसका उत्तराधिकारी हुआ यद्यपि इसका शासनकाल बहुत अल्प था जो प्रायः सन ३७५ से ३८० ई० के बीच माना जाता है। इसकी एक मुद्रा भी मिली है जिसमें अंकित 'राम' को गुप्तकालीन लिपिकी

विचित्रता के कारण किसी किसी विद्वान ने 'राम' की जगह 'काच' पढ़कर उसे 'काचवाली मुद्रा' के नाम से विख्यात कर दिया। रामगुप्त के अस्तित्व और उसके सम्राट होने के अकाट्य प्रमाण १२वीं शताब्दी की 'मुजमलत्तवारीख' में वर्णित ऐतिहासिक कथानक, 'नाट्यदर्पण' में उद्धृत 'देवीचन्द्रगुप्तम' की राम सम्बन्धी घटना, 'हर्षचरित', 'शृङ्गारप्रकाश' तथा संजन प्लेट आदि हैं जिनमें इसकी जीवन सम्बन्धी घटनाएँ तथा राजशेखरकृत काव्यमीमांसा से हिमगिरि के पर्वतीय प्रदेश में कार्तिकेयनगर के समीप रामगुप्त और शकों में युद्ध के विवरण का संकेत मिलता है। रामगुप्त अस्वस्थ, विलासी, भीरुहृदय सम्राट था जिसने अपनी कायरता का परिचय अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को, भयभीत होकर शक क्षत्रप को समर्पण करने का वचन दे दिया था। उसमें साम्राज्य के संभालने का बल था न अरियों के दबाने की क्षमता। वह शासन भार समझता था जिसे ध्रुवदेवी को सौंप, अपना जीवन शांति से भोगविलास में बिताना उचित समझता था। वह बड़ा कोमल हृदय, शिष्ट और रस का उपासक था। दुर्बलता का दोषी होते हुए भी वह बड़ा विद्वान और कलाविद था।

वीणा

स्वामी रुद्रसिंह शक क्षत्रप की एक मात्र संतान 'वीणा' बड़ी भावुक, सहज प्रकृतिवाली और सरलहृदया थी। प्रपंच और बनावट उससे कोसों दूर थे। एक वनविहगी सा स्वतंत्र विचरण, आनंद विभोरता में कलकूजन ही उसका जीवन था। एक अल्हड़ बालिका सी प्रथम मिलन में ही वह चन्द्रगुप्त पर मोहित हो गयी और अपने भोलेपन में प्रेम बावली हो अपने पिता का सर्वनाश कराने में अनजान सहायक बनी। रहस्य खुल जाने पर भी वह अपने पितृघातक प्रेमी के पाने की भावना अंत तक लिये रही जो कभी पूर्ण न हो सकी। क्या क्या आशाएं लेकर वह सम्राट चन्द्रगुप्त से मिलने गयी थी परंतु अपने आराध्यदेव को दो सुंदरियों के बंधन में पा उसके कोमल सरस हृदय को जो आघात पहुँचा वह पीड़ा चन्द्रगुप्त से उसकी अंतिम वार्ता प्रगट करती है जिसके वाक्य एक विक्षिप्त निराश प्रेमिका के टूटे हृदय के उद्गार हैं।

स्वामी रुद्रसिंह

महाक्षत्रप रुद्रदामन् का वंशज रुद्रसिंह मालवा और सौराष्ट्र का अधिपति था। वह बड़ा कूटनीतिज्ञ और अपना साम्राज्य बढ़ाने का इच्छुक था। इसकी नीति शनैः शनैः छोटे राज्यों को हड़पकर गुप्त राज्य पर भी धावा बोलने की थी। षड्यंत्र रच उसने सम्राट रामगुप्त को जीत ही लिया था परंतु ध्रुवदेवी की दृढ़ता तथा चंद्रगुप्त की तत्परता ने उसे विफल बना दिया और दोनों के संकल्प ने शकों की जड़ ही भारत से सदा के लिये उखाड़ कर ही छोड़ी।

